

गिरिराज हिमालयकी कन्या पार्वती थी या समुद्र-तनया लक्ष्मी। इन्द्र या यमराजकी पत्नी भी ऐसी सुन्दरी नहीं दिखायी देतीं। उसके शील, सज्जाव, गुण तथा रूप जैसे दीख पड़ते थे, वैसे अन्य दिव्याङ्गनाओंमें नहीं दृष्टिगोचर होते। शिलाके ऊपर बैठी हुई वह कन्या किसी भारी दुःखसे व्याकुल थी और फूट-फूटकर रो रही थी और कोई स्वजन-सम्बन्धी उसके पास नहीं थे। नेत्रोंसे गिरते हुए निर्मल अश्रुबिन्दु मोतीके दाने-जैसे चमक रहे थे। वे सब-के-सब गङ्गाजीके स्नोतमें ही गिरते और सुन्दर कमल-पुष्पके रूपमें परिणत हो जाते थे। इस प्रकार अगणित सुन्दर पुष्प गङ्गाजीके जलमें पड़े थे और पानीके वेगके साथ बह रहे थे।

पिताजी ! इस प्रकार मैंने यह अपूर्व बात देखी है। आप वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं; यदि इसका कारण जानते हों तो मुझपर कृपा करके बतायें। गङ्गाके मुहानेपर जो सुन्दरी रुक्षी रो रही थी, जिसके नेत्रोंसे गिरे हुए आँसू सुन्दर कमलके फूल बन जाते थे, वह कौन थी ? यदि मैं आपका प्रिय हूँ तो मुझे यह सारा रहस्य बताइये।

कुञ्जल बोला—बेटा ! बता रहा हूँ, सुनो। यह देवताओंका रचा हुआ वृत्तान्त है। इसमें महात्मा श्रीविष्णुके चरित्रका वर्णन है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। एक समयकी बात है, राजा नहुषने संग्राममें महापराक्रमी हुंड नामक दैत्यको मार डाला। उस दैत्यके पुत्रका नाम विहुण्ड था, वह भी बड़ा पराक्रमी और तपस्वी था। उसने जब सुना कि राजा नहुषने उसके पिताका मन्त्री तथा सेनासहित वध किया है, तब उसे बड़ा क्रोध हुआ और वह देवताओंका विनाश करनेके लिये उद्यत होकर तपस्या करने लगा। तपसे बढ़े हुए उस दुष्ट दैत्यका पुरुषार्थ सम्पूर्ण देवताओंको विदित था। वे जानते थे कि समरभूमिमें विहुण्डके वेगको सहन करना अत्यन्त कठिन है। उधर, विहुण्डके मनमें त्रिलोकीका नाश कर डालनेकी इच्छा हुई। उसने निश्चय किया, मैं मनुष्यों और देवताओंको मारकर पिताके वैरका बदला लूँगा। इस प्रकार अत्याचारके लिये उद्यत हो देवताओं और ब्राह्मणोंके

लिये कण्टकरूप उस पापी दैत्यने उपद्रव मचाना आरम्भ किया। समस्त प्रजाको पीड़ा देने लगा। उसके तेजसे संतप्त होकर इन्द्र आदि देवता परम तेजस्वी देवाधिदेव भगवान् श्रीविष्णुकी शरणमें गये और बोले—‘भगवन् ! विहुण्डके महान् भयसे आप हमारी रक्षा करें।’

भगवान् विष्णु बोले—पापी विहुण्ड देवताओंके लिये कण्टकरूप है, मैं अवश्य उसका नाश करूँगा।

देवताओंसे यों कहकर भगवान् श्रीविष्णुने मायाको प्रेरित किया। सम्पूर्ण विश्वको मोहित करनेवाली महाभागा विष्णुमायाने विहुण्डका वध करनेके लिये रूप और लावण्यसे सुशोभित तरुणी रुक्षीका रूप धारण किया। वह नन्दनवनमें आकर तपस्या करने लगी। इसी समय दैत्यराज विहुण्ड देवताओंका वध करनेके लिये दिव्य मार्गसे चला। नन्दनवनमें पहुँचनेपर उसकी दृष्टि तपस्विनी मायापर पड़ी। वह इस बातको नहीं जान सका कि यह मेरा ही नाश करनेके लिये उत्पन्न हुई है। यह सुन्दरी रुक्षी कालरूपा है, यह बात उसकी समझमें नहीं आयी। मायाका शरीर तपाये हुए सुवर्णके समान दमक रहा था। रूपका वैभव उसकी शोभा बढ़ा रहा था। पापात्मा विहुण्ड उस सुन्दरी युवतीको देखते ही लुभा गया और बोला—‘भद्रे ! तुम कौन हो ? कौन हो ? तुम्हरे शरीरका मध्यभाग बड़ा सुन्दर है, तुम मेरे चित्तको मथे डालती हो। सुमुखि ! मुझे संगम प्रदान करो और कामजनित वेदनासे मेरी रक्षा करो। देवेश्वरि ! अपने समागमके बदले इस समय तुम जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करो, वह सब तुम्हें देनेको तैयार हूँ।’

माया बोली—दानव ! यदि तुम मेरा ही उपभोग करना चाहते हो, तो सात करोड़ कमलके फूलोंसे भगवान् शङ्करकी पूजा करो। वे फूल कामोदसे उत्पन्न, दिव्य, सुगन्धित और देवदुर्लभ होने चाहिये। उन्हीं फूलोंकी सुन्दर माला बनाकर मेरे कण्ठमें भी पहनाओ। तभी मैं तुम्हारी प्रिय भार्या बनूँगी।

विहुण्डने कहा—देवि ! मैं ऐसा ही करूँगा। तुम्हारा माँगा हुआ वर तुम्हें दे रहा हूँ।

यह कहकर दैत्यराज विहुण्ड जितने भी दिव्य एवं



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!





COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



पवित्र बन थे, उनमें विचरण करने लगा। उसके चित्तपर कामका आवेश छा रहा था। बहुत खोजनेपर भी उसे कामोद नामक वृक्ष कहीं नहीं दिखायी दिया। वह स्वयं इधर-उधर जाकर पूछ-ताछ करता रहा; किन्तु सर्वत्र लोगोंके मुँहसे उसे यही उत्तर मिलता था कि 'यहाँ कामोद वृक्ष नहीं है।' दुष्टात्मा विहुण्ड उस वृक्षका पता लगाता हुआ शुक्राचार्यके पास गया और भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर पूछने लगा—'ब्रह्मन्! मुझे फूलोंसे लदे सुन्दर कामोद वृक्षका पता बताइये।'

शुक्राचार्य बोले—दानव ! कामोद नामका कोई वृक्ष नहीं है। कामोदा तो एक स्त्रीका नाम है। वह जब किसी प्रसङ्गसे अत्यन्त हर्षमें भरकर हँसती है, तब उसके मनोहर हास्यसे सुगन्धित, श्रेष्ठ तथा दिव्य कामोद पुष्ट उत्पन्न होते हैं। उनका रंग अत्यन्त पीला होता है तथा वे दिव्य गन्धसे युक्त होते हैं। उनमेंसे एक फूलके द्वारा भी जो भगवान् शङ्करकी पूजा करता है, उसकी बड़ी-से-बड़ी कामनाको भी भगवान् शिव पूर्ण कर देते हैं। कामोदाके रोदनसे भी वैसे ही सुन्दर फूल उत्पन्न होते हैं; किन्तु उनमें सुगन्ध नहीं होती। अतः उनका स्वर्ण नहीं करना चाहिये।

शुक्राचार्यकी यह बात सुनकर विहुण्डने पूछा—'भृगुनन्दन ! कामोदा कहाँ रहती है ?'

शुक्राचार्य बोले—सम्पूर्ण पातकोंका शोधन करनेवाले परम पावन गङ्गाद्वार (हरिद्वार) नामक तीर्थके पास कामोद नामक पुर है, जिसे विश्वकर्मने बनाया था। उस कामोद नगरमें दिव्य भोगोंसे विभूषित एक सुन्दरी स्त्री रहती है, जो सम्पूर्ण देवताओंसे पूजित है। वह भाँति-भाँतिके आभूषणोंसे अत्यन्त सुशोभित जान पड़ती है। तुम वहीं चले जाओ और उस युवतीकी पूजा करो। साथ ही किसी पवित्र उपायका अवलम्बन करके उसे हँसाओ।

यह कहकर शुक्राचार्य चुप हो गये और वह महातेजस्ती दानव अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये उद्यत हुआ।

कपिलस्त्रलने पूछा—पिताजी ! कामोदाके हास्यसे

जो पवित्र, दिव्यगन्धसे युक्त और देवता तथा दानवोंके लिये दुर्लभ सुन्दर फूल उत्पन्न होते हैं, उन्हें सम्पूर्ण देवता क्यों चाहते हैं ? उन हास्यजनित फूलोंसे पूजित होनेपर भगवान् शङ्कर क्यों सन्तुष्ट होते हैं ? उस फूलका क्या गुण है ? कामोदा कौन है और वह किसकी पुत्री है ?

कुञ्जल बोला—पूर्वकालकी बात है, देवताओं और बड़े-बड़े दैत्योंने अमृतके लिये परस्पर उत्तम सौहार्द स्थापित करके उद्यमपूर्वक क्षीरसागरका मन्थन किया। देवताओं और दैत्योंके मथनेसे चार कन्याएँ प्रकट हुईं। फिर कलशमें रखा हुआ पुण्यमय अमृत दिखायी पड़ा। उपर्युक्त कन्याओंमेंसे एकका नाम लक्ष्मी था, दूसरी वारुणी नामसे प्रसिद्ध थी, तीसरीका नाम कामोदा और चौथीका ज्येष्ठा था। कामोदा अमृतकी लहरसे प्रकट हुई थी। वह भविष्यमें भगवान् श्रीविष्णुकी प्रसन्नताके लिये वृक्षरूप धारण करेगी और सदा ही श्रीविष्णुको आनन्द देनेवाली होगी। वृक्षरूपमें वह परम पवित्र तुलसीके नामसे विख्यात होगी। उसके साथ भगवान् जगत्राथ सदा ही रमण करेंगे। जो तुलसीका एक पत्ता भी ले जाकर श्रीकृष्णभगवान्को समर्पित करेगा, उसका भगवान् बड़ा उपकार मानेंगे और 'मैं इसे क्या दे डालूँ ?' यह सोचते हुए वे उसके ऊपर बहुत प्रसन्न होंगे।

इस प्रकार पूर्वोक्त चार कन्याओंमेंसे जो कामोदा नामसे प्रसिद्ध देवी है, वह जब हर्षसे गद्दद होकर बोलती और हँसती है, तब उसके मुखसे सुनहरे रंगके सुगन्धित फूल झड़ते हैं। वे फूल बड़े सुन्दर होते हैं। कभी कुम्हलाते नहीं हैं। जो उन फूलोंका यलपूर्वक संग्रह करके उनके द्वारा भगवान् शङ्कर, ब्रह्मा तथा विष्णुकी पूजा करता है, उसके ऊपर सब देवता संतुष्ट होते हैं और वह जो-जो चाहता है, वही-वही उसे अर्पण करते हैं। इसी प्रकार जब कामोदा किसी दुःखसे दुःखी होकर रोने लगती है, तब उसकी आँखोंके आँसुओंसे भी फूल पैदा होते और झड़ते हैं। महाभाग ! वे फूल भी देखनेमें बड़े मनोहर होते हैं; किन्तु उनमें सुगन्ध नहीं होती। वैसे फूलोंसे जो शङ्करका पूजन करता है, उसे

दुःख और संताप होता है। जो पापात्मा एक बार भी उस तरहके फूलोंसे देवताओंकी पूजा करता है, उसे वे निश्चय ही दुःख देते हैं।

भगवान् श्रीविष्णुने पापी विहुण्डके पराक्रम और दुःसाहसपर दृष्टि डालकर देवर्षि नारदको उसके पास भेजा। उस समय वह दुरात्मा दानव कामोदाके पास जा रहा था। नारदजी उसके समीप जाकर हँसते हुए बोले— 'दैत्यराज ! कहाँ जा रहे हो ? इस समय तुम बड़े उतावले और व्यग्र जान पड़ते हो।' विहुण्डने ब्रह्मकुमार नारदजीको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा— 'द्विजश्रेष्ठ ! मैं कामोद पुष्पके लिये चला हूँ।' यह सुनकर नारदजीने कहा— 'दैत्य ! तुम कामोद नामक श्रेष्ठ नगरमें कदापि न जाना; क्योंकि वहाँ सम्पूर्ण देवताओंको विजय दिलानेवाले परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीविष्णु रहते हैं। दानव ! जिस उपायसे कामोद नामक फूल तुम्हरे हाथ लग सकते हैं, वह मैं बता रहा हूँ। वे दिव्य पुष्प गङ्गाजीके जलमें गिरेंगे और प्रवाहके पावन जलके साथ बहते हुए तुम्हरे पास आ जायेंगे। वे देखनेमें बड़े सुन्दर होंगे। तुम उन्हें पानीसे निकाल लाना। इस प्रकार उन फूलोंका संग्रह करके अपना मनोरथ सिद्ध करो।'

दानवश्रेष्ठ विहुण्डसे यह कहकर धर्मात्मा नारदजी कामोद नगरकी ओर चल दिये। जाते-जाते उन्हें वह दिव्य नगर दिखायी दिया। उस नगरमें प्रवेश करके वे कामोदाके घर गये और उससे मिले। कामोदाने स्वागत आदिके द्वारा मुनिको प्रसन्न किया और मीठे वचनोंमें कुशलसमाचार पूछा। द्विजश्रेष्ठ नारदजीने कामोदाके दिये हुए दिव्य सिंहासनपर बैठकर उससे पूछा— 'भगवान् श्रीविष्णुके तेजसे प्रकट हुई कल्याणमयी देवी ! तुम यहाँ सुखसे रहती हो न ? किसी तरहका कष्ट तो नहीं है ?'

कामोदा बोली—महाभाग ! मैं आप-जैसे महात्माओं तथा भगवान् श्रीविष्णुकी कृपासे सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रही हूँ। इस समय आपसे कुछ प्रश्नोत्तर करनेका कारण उपस्थित हुआ है; आप मेरे

प्रश्नका समाधान कीजिये। मुझे ! सोते समय मैंने एक दारुण स्वप्न देखा है, मानो किसीने मेरे सामने आकर कहा है— 'अव्यत्कर्त्तव्यरूप भगवान् हृषीकेश संसारमें जायेंगे—वहाँ जन्म ग्रहण करेंगे।' महामते ! ऐसा स्वप्न देखनेका क्या कारण है ? आप ज्ञानवानोंमें श्रेष्ठ हैं, कृपया बताइये।

नारदजीने कहा—भद्रे ! मनुष्य जो स्वप्न देखते हैं, वह तीन प्रकारका होता है—वातिक (वातज), पैतिक (पित्तज) और कफज। सुन्दरी ! देवताओंको न नींद आती है न स्वप्न। मनुष्य शुभ और अशुभ नाना प्रकारके स्वप्न देखता है। वे सभी स्वप्न कर्मसे प्रेरित होकर दृष्टिपथमें आते हैं। पर्वत तथा ऊँचे-नीचे नाना प्रकारके दुर्गम स्थानोंका दर्शन होना वातिक स्वप्न है। अब कफाधिक्यके कारण दिखायी देनेवाले स्वप्न बता रहा हूँ। जल, नदी, तालाब तथा पानीके विभिन्न स्थान—ये सब कफज स्वप्नके अन्तर्गत हैं। देवि ! अग्रि तथा बहुत-से उत्तम सुवर्णका जो दर्शन होता है, उसे पैतिक स्वप्न समझो। अब मैं भावी (भविष्यमें तुरंत फल देनेवाले) स्वप्नका वर्णन करता हूँ—प्रातःकाल जो कर्मप्रेरित शुभ या अशुभ स्वप्न दिखायी देता है, वह क्रमशः लाभ और हानिको व्यक्त करनेवाला है। सुन्दरी ! इस प्रकार मैंने तुमसे स्वप्नकी अवस्थाएँ बतायीं। भगवान् श्रीविष्णुके सम्बन्धमें यह बात अवश्य होनेवाली है, इसी कारण तुम्हें दुःस्वप्न दिखायी दिया है।

कामोदा बोली—नारदजी ! सम्पूर्ण देवता भी जिनका अन्त नहीं जानते, उन्हें भी जिनके स्वरूपका ज्ञान नहीं है, जिनमें सम्पूर्ण विश्वका लय होता है, जिन्हें विश्वात्मा कहते हैं और सारा संसार जिनकी मायासे मुग्ध हो रहा है, वे मेरे स्वामी जगदीश्वर श्रीविष्णु संसारमें क्यों जन्म ले रहे हैं ?

नारदजीने कहा—देवि ! इसका कारण सुनो; महर्षि भृगुके शापसे भगवान् संसारमें अवतार लेनेवाले हैं। [यही बात बतानेके लिये उन्होंने मुझे तुम्हरे पास भेजा है।] इसीलिये तुम्हें दुःस्वप्नका दर्शन हुआ है।

बेटा ! यों कहकर नारदजी ब्रह्मलोकको चले गये।

उस समय कामोदा भगवान्‌के दुःखसे दुःखी हो गयी और गङ्गाजीके तटपर जलके समीप बैठकर बारंबार हाहाकार करती हुई करुण स्वरसे विलाप करने लगी। वह अपने नेत्रोंसे जो दुःखके आँसू बहाती थी, वे ही गङ्गाजीके जलमें गिरते थे। पानीमें पड़ते ही वे पुनः पद्म-पुष्पके रूपमें प्रकट होते और धाराके साथ बह जाते थे। दानवश्रेष्ठ विहृण्ड भगवान् श्रीविष्णुकी मायासे मोहित था। उसने उन फूलोंको देखा; किन्तु महर्षि शुक्राचार्यके बतानेपर भी वह इस बातको न जान सका कि ये दुःखके आँसुओंसे उत्पन्न फूल हैं। उन्हें देखकर वह असुर बड़े हर्षमें भर गया और उन सबको जलसे निकाल लाया। फिर वह उन खिले हुए पद्म-पुष्पोंसे गिरिजापतिकी पूजा करने लगा। विष्णुकी मायाने उसके मनको हर लिया था; अतः विवेकशून्य होकर उस दैत्यराजने सात करोड़ फूलोंसे भगवान् शिवका पूजन किया। यह देख जगन्माता पार्वतीको बड़ा क्रोध हुआ; उन्होंने शङ्करजीसे कहा—‘नाथ ! इस दुर्बुद्धि दानवका कुकर्म तो देखिये—यह शोकसे उत्पन्न फूलोंद्वारा आपका पूजन कर रहा है, इसे दुःख और संताप ही मिलेगा; यह सुख पानेका अधिकारी नहीं है।’

भगवान् शिव बोले— भद्रे ! तुम सच कहती हो, इस पापीने सत्यपूर्ण उद्योगको पहलेसे ही छोड़ रखा है। इसकी चेतना कामसे आकुल है; अतः यह दुष्टात्मा गङ्गाजीके जलमें पड़े हुए शोकजनित फूलोंको ग्रहण करता है तथा उनसे मेरा पूजन भी करता है। दुःख और शोकसे उत्पन्न ये फूल तो शोक और संताप ही देनेवाले हैं; इनके द्वारा किसीका कल्याण कैसे हो सकता है। देवि ! मैं तो समझता हूँ यह ध्यानहीन है; क्योंकि अब पापाचारी हो गया है। अतः तुम इसे अपने ही तेजसे मर डालो।

भगवान् शङ्करके ये वचन सुनकर भगवती पार्वतीने कहा—‘नाथ ! मैं आपकी आज्ञासे इसका अवश्य संहार करूँगी।’ यो कहकर देवी वहाँ गयीं और विहृण्डके वधका उपाय सोचने लगीं। वे एक महात्मा ब्राह्मणका मायामय रूप बनाकर पारिजातके सुन्दर

फूलोंसे अपने स्वामी शङ्करजीकी पूजा करने लगीं। इतनेमें ही उस पापी दानवने आकर देवीकी दिव्य पूजाको नष्ट कर दिया। वह दुष्टात्मा कालके वशीभूत हो चुका था। उसने पार्वतीद्वारा पारिजातके फूलोंसे की हुई पूजाको मिटा दिया और स्वयं लोभवश शोकजनित पुष्पोंसे शङ्करजीका पूजन करने लंगा। उस समय उस दुष्टके नेत्रोंसे आँसूकी अविरल बूँदें निकलकर शिवलिङ्गके मस्तकपर पड़ रही थीं। यह देखकर देवीने ब्राह्मणके रूपमें ही पूछा—आप कौन हैं, जो शोकाकुल चित्तसे भगवान् शिवकी पूजा कर रहे हैं ? ये शोकजनित अपवित्र आँसू भगवान्‌के मस्तकपर पड़ रहे हैं। आप ऐसा क्यों करते हैं ? मुझे इसका कारण बताइये।

विहृण्ड बोला— ब्रह्मन् ! कुछ दिन हुए मैंने एक सुन्दरी स्त्री देखी, जो सब प्रकारकी सौभाग्य-सम्पदासे युक्त और समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थी। देखनेमें वह कामदेवका विशाल निकेतन जान पड़ती थी। उसके मोहसे मैं संतप्त हो उठा, कामसे मेरा चित्त व्याकुल हो गया। जब मैंने उससे समागमकी प्रार्थना की, तब वह बोली—‘कामोदके फूलोंसे भगवान् शङ्करकी पूजा करो तथा उन्हीं फूलोंको माला बनाकर मेरे कण्ठमें पहनाओ। सात करोड़ पुष्पोंसे महेश्वरका पूजन करो।’ उस स्त्रीको पानेके लिये ही मैं पूजा करता हूँ; क्योंकि भगवान् शिव अभीष्ट फलके दाता हैं।

देवीने कहा— अरे ! कहाँ तेरा भाव है, कहाँ ध्यान है और कहाँ तुझ दुरात्माका ज्ञान है ? [तू कामोद पुष्पोंसे पूजा कर रहा है न ?] अच्छा, बता, कामोदका सुन्दर रूप कैसा है ? तूने उसके हास्यसे उत्पन्न सुन्दर फूल कहाँ पाये हैं ?

विहृण्ड बोला— ब्रह्मन् ! मैं भाव और ध्यान कुछ नहीं जानता। कामोदको मैंने कभी देखा भी नहीं है। गङ्गाजीके जलमें जो फूल बहकर आते हैं, उन्हींका मैं प्रतिदिन संग्रह करता हूँ और उन्हींसे एकमात्र शङ्करजीका पूजन करता हूँ। महात्मा शुक्राचार्यने मेरे सामने इस फूलका परिचय दिया था। मैं उन्हींकी आज्ञासे नित्यप्रति पूजा करता हूँ।

देवीने कहा—पापी ! ये फूल कामोदाके रोदनसे उत्पन्न हुए हैं। इनकी उत्पत्ति दुःखसे हुई है। इन्होंसे तू पापपूर्ण भावना लेकर, प्रतिदिन भगवान्‌की पूजा करता है, किन्तु दिव्य पूजा नष्ट करके तू शोकजनित पुष्पोंसे पूजन कर रहा है—यह आज तेरे द्वारा भयंकर अपराध हुआ है; इसके लिये मैं तुझे दण्ड दूँगा।

यह सुनकर कालके वशीभूत हुआ दानव विहृण्ड बोला—‘रे दुष्ट ! रे अनाचारी ! तू मेरे कर्मकी निन्दा करता है ? तुझे अभी इस तलवारसे मौतके घाट उतारता हूँ।’ यों कहकर वह ब्राह्मणको मारनेके लिये तीखी तलवार ले उसकी ओर झटपटा। यह देख ब्राह्मणरूपमें

खड़ी हुई भगवती परमेश्वरी कुपित हो उठीं और ज्यों ही वह दैत्य उनके पास पहुँचा त्यों ही उन्होंने अपने मुँहसे ‘हुंकार’ का उच्चारण किया। हुंकारकी ध्वनि होते ही वह अधम दानव निश्चेष्ट होकर गिर पड़ा, मानो वज्रके आघातसे पर्वत फट पड़ा हो। उस लोक-संहारक दानवके मारे जानेपर सम्पूर्ण जगत् स्वस्थ हो गया, सबके दुःख और सन्ताप दूर हो गये। बेटा ! गङ्गाजीके तीरपर दुःखसे व्याकुलचित्त होकर बैठी हुई जो सुन्दरी खी रो रही थी, [वह कामोदा ही थी;] उसके रोनेका यही कारण था। यह सारा रहस्य जो तुमने पूछा था, मैंने कह सुनाया।



कुञ्जलका च्यवनको अपने पूर्व-जीवनका वृत्तान्त बताकर सिद्ध पुरुषके कहे हुए ज्ञानका उपदेश करना, राजा वेनका यज्ञ आदि करके विष्णुधाममें जाना तथा पद्मपुराण और भूमिखण्डका माहात्म्य

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—राजन् ! धर्मात्मा पक्षी महाप्राज्ञ कुञ्जल अपने पुत्रोंसे यों कहकर चुप हो गया। तब वटके नीचे बैठे हुए द्विजश्रेष्ठ च्यवनने उस महाशुकसे कहा—‘महात्मन् ! आप कौन हैं, जो पक्षीके रूपसे धर्मका उपदेश कर रहे हैं ? आप देवता, गन्धर्व अथवा विद्याधर तो नहीं हैं ? किसके शापसे आपको यह तोतेकी योनि प्राप्त हुई है ? यह अतीन्द्रिय ज्ञान आपको किससे प्राप्त हुआ है ?’

कुञ्जल बोला—सिद्धपुरुष ! मैं आपको जानता हूँ; आपके कुल, उत्तम गोत्र, विद्या, तप और प्रभावसे भी परिचित हूँ तथा आप जिस उद्देश्यसे पृथ्वीपर विचरण करते हैं, उसका भी मुझे ज्ञान है। श्रेष्ठ व्रतका पालन करनेवाले ब्राह्मण ! आपका स्वागत है। मैं आपकी पूछी हुई सब बातें बताऊँगा। इस पवित्र आसनपर बैठकर शीतल छायाका आश्रय लीजिये। अव्यक्त परमात्मासे ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव हुआ। उनसे प्रजापति भृगु प्रकट हुए, जो ब्रह्माजीके समान गुणोंसे युक्त हैं। भृगुसे भार्गव (शुक्राचार्य) का जन्म हुआ, जो सम्पूर्ण धर्म और अर्थशास्त्रके तत्त्वज्ञ हैं। उन्हींके वंशमें

आपने जन्म ग्रहण किया है। पृथ्वीपर आप च्यवनके नामसे विख्यात हैं। [अब मेरा परिचय सुनिये—] मैं देवता, गन्धर्व या विद्याधर नहीं हूँ। पूर्वजन्ममें कश्यपजीके कुलमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्पन्न हुए थे। उन्हें वेद-वेदाङ्गोंके तत्त्वका ज्ञान था। वे सब धर्मोंको प्रकाशित करनेवाले थे। उनका नाम विद्याधर था; वे कुल, शील और गुण—सबसे युक्त थे। विप्रवर विद्याधर अपनी तपस्याके प्रभावसे सदा शोभायमान दिखायी देते थे। उनके तीन पुत्र हुए—वसुशर्मा, नामशर्मा और धर्मशर्मा। उनमें धर्मशर्मा मैं ही था, अवस्थामें सबसे छोटा और गुणोंसे हीन। मेरे बड़े भाई वसुशर्मा वेद-शास्त्रोंके पारगामी विद्वान् थे। विद्या आदि सद्गुणोंके साथ उनमें सदाचार भी था। नामशर्मा भी उन्हींकी भाँति महान् पण्डित थे। केवल मैं ही महामूर्ख निकला। विप्रवर ! मैं विद्याके उत्तम भाव और शुभ अर्थको कभी नहीं सुनता था और गुरुके घर भी कभी नहीं जाता था।

यह देख मेरे पिता मेरे लिये बहुत चिन्तित रहने लगे। वे सोचते—‘मेरा यह पुत्र धर्मशर्मा कहलाता है,

पर इसके लिये यह नाम व्यर्थ है। इस पृथ्वीपर न तो यह विद्वान् हुआ और न गुणोंका आधार ही।' यह विचारकर मेरे धर्मात्मा पिताको बड़ा दुःख हुआ। वे मुझसे बोले—'बेटा ! गुरुके घर जाओ और विद्या सीखो।' उनका यह कल्याणमय वचन सुनकर मैंने उत्तर दिया—'पिताजी ! गुरुके घरपर बड़ा कष्ट होता है। वहाँ प्रतिदिन मार खानी पड़ती है, धमकाया जाता है। नींद लेनेकी भी फुरसत नहीं मिलती। इन असुविधाओंके कारण मैं गुरुके मन्दिरपर नहीं जाना चाहता, मैं तो आपकी कृपासे यहीं स्वच्छन्दतापूर्वक खेलूँगा, खाऊँगा और सोऊँगा।'

धर्मात्मा पिता मुझे मूर्ख समझकर बहुत दुःखी हुए और बोले—'बेटा ! ऐसा दुःसाहस न करो। विद्या सीखनेका प्रयत्न करो। विद्यासे सुख मिलता है, यश और अतुलित कीर्ति प्राप्त होती है तथा ज्ञान, स्वर्ग और उत्तम मोक्ष मिलता है; अतः विद्या सीखो*। विद्या पहले तो दुःखका मूल जान पड़ती है, किन्तु पीछे वह बड़ी सुखदायिनी होती है। इसलिये तुम गुरुके घर जाओ और विद्या सीखो।' पिताके इतना समझानेपर भी मैं उनकी बात नहीं मानता और प्रतिदिन इधर-उधर घूम-फिरकर अपनी हानि किया करता था। विप्रवर ! मेरा बर्ताव देखकर लोगोंने मेरा बड़ा उपहास किया, मेरी बड़ी निन्दा हुई। इससे मैं बहुत लज्जित हुआ। जान पड़ा यह लज्जा मेरे प्राण लेकर रहेगी। तब मैं विद्या पढ़नेको तैयार हुआ। [अवस्था अधिक हो चुकी थी,] सोचने लगा—'किस गुरुके पास चलकर पढ़ानेके लिये प्रार्थना करूँ ?' इस चिन्तामें पड़कर मैं दुःख-शोकसे व्याकुल हो उठा। 'कैसे मुझे विद्या प्राप्त हो ? किस प्रकार मैं गुणोंका उपार्जन करूँ ? कैसे मुझे स्वर्ग मिले और किस तरह मैं मोक्ष प्राप्त करूँ ?' यही सब सोचते-विचारते मेरा बुद्धापा आ गया।

एक दिनकी बात है, मैं बहुत दुःखी होकर एक देवालयमें बैठा था; वहाँ अकस्मात् कोई सिद्ध महात्मा

आ पहुँचे। मानो मेरे भाग्यने ही उन्हें भेज दिया था। उनका कहीं आश्रय नहीं था, वे निराहार रहते थे। भद्र आनन्दमें मग्न और निःस्पृह थे। प्रायः एकान्तमें ही रहा करते थे। बड़े दयालु और जितेन्द्रिय थे। परब्रह्ममें लीन, ज्ञानी, ध्यानी और समाधिनिष्ठ थे। मैं उन परम बुद्धिमान् ज्ञान-स्वरूप महात्माकी शरणमें गया और भक्तिसे मस्तक झुका उन्हें प्रणाम करके सामने खड़ा हो गया। मैं दीनताकी साक्षात् मूर्ति और मन्दभागी था। महात्माने मुझसे पूछा—'ब्रह्म ! तुम इतने शोकमग्न कैसे हो रहे हो ? किस अभिप्रायसे इतना दुःख भोगते हो ?' मैंने अपनी मूर्खताका सारा पूर्व-वृत्तान्त उनसे कह सुनाया और निवेदन किया—'मुझे सर्वज्ञता कैसे प्राप्त हो ? इसीके लिये मैं दुःखी हूँ। अब आप ही मुझे आश्रय देनेवाले हैं।'

सिद्ध महात्माने कहा—ब्रह्म ! सुनो, मैं तुम्हारे सामने ज्ञानके स्वरूपका वर्णन करता हूँ। ज्ञानका कोई आकार नहीं है [ज्ञान परमात्माका स्वरूप है]। वह सदा सबको जानता है, इसलिये सर्वज्ञ है। मायामोहित मूढ़ पुरुष उसे नहीं प्राप्त कर सकते। ज्ञान भगवत्तत्त्वके चिन्तनसे उद्दीप्त होता है, उसकी कहीं भी तुलना नहीं है। ज्ञानसे ही परमात्माके स्वरूपका साक्षात्कार होता है। चन्द्रमा और सूर्य आदिके प्रकाशसे उसका दर्शन नहीं किया जा सकता। ज्ञानके न हाथ हैं न पैर; न नेत्र हैं न कान। फिर भी वह सर्वत्र गतिशील है। सबको ग्रहण करता और देखता है। सब कुछ सूँघता तथा सबकी बातें सुनता है। स्वर्ग, भूमि और पाताल—तीनों लोकोंमें प्रत्येक स्थानपर वह व्यापक देखा जाता है। जिनकी बुद्धि दूषित है, वे उसे नहीं जानते। ज्ञान सदा प्राणियोंके हृदयमें स्थित होकर काम आदि महाभोगों तथा महामोह आदि सब दोषोंको विवेककी आगसे दग्ध करता रहता है। अतः पूर्ण शान्तिमय होकर इन्द्रियोंके विषयोंका मर्दन—उनकी आसक्तिका नाश करना चाहिये। इससे समस्त तात्त्विक अर्थोंका साक्षात्कार करनेवाला ज्ञान

* विद्या प्राप्ते सौख्यं यशः कीर्तिस्तथातुला ॥ ज्ञान स्वर्गः सुमोक्षश तस्माद्विद्यां प्रसाधय । (१२२ । २५-२६)

प्रकट होता है। यह शान्तिमूलक ज्ञान निर्मल तथा पापनाशक है। इसलिये तुम शान्ति धारण करो; वह सब प्रकारके सुखोंको बढ़ानेवाली है। शत्रु और मित्रमें समान भाव रखो। तुम अपने प्रति जैसा भाव रखते हो, वैसा ही दूसरोंके प्रति भी बनाये रहो। सदा नियमपूर्वक रहकर आहारपर विजय प्राप्त करो, इन्द्रियोंको जीतो। किसीसे मित्रता न जोड़ो; वैरका भी दूरसे ही त्याग करो। निसंग और निःसृह होकर एकान्त स्थानमें रहो। इससे तुम सबको प्रकाश देनेवाले ज्ञानी, सर्वदर्शी बन जाओगे। बेटा! उस स्थितिमें पहुँचनेपर तुम मेरी कृपासे एक ही स्थानपर बैठे-बैठे तीनों लोकोंमें होनेवाली बातोंको जान लोगे—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

कुञ्जल कहता है—विप्रवर! उन सिद्ध महात्माने ही मेरे सामने ज्ञानका रूप प्रकाशित किया था। उनकी आज्ञामें स्थित होकर मैं पूर्वोक्त भावनाका ही चिन्तन करने लगा। इससे सद्गुरुकी कृपा हुई, जिससे एक ही स्थानमें रहकर मैं त्रिभुवनमें जो कुछ हो रहा है, सबको जानता हूँ।

च्यवनने पूछा—खगश्रेष्ठ! आप तो ज्ञानवानोंमें श्रेष्ठ हैं, फिर आपको यह तोतेकी योनि कैसे प्राप्त हुई?

कुञ्जलने कहा—ब्रह्मन्! संसर्गसे पाप और संसर्गसे पुण्य भी होता है। अतः शुद्ध आचार-विचारवाले: कल्याणमय पुरुषको कुसङ्गका त्याग कर देना चाहिये। एक दिन कोई पापी व्याध एक तोतेके बच्चेको बाँधकर उसे बेचनेके लिये आया। वह बच्चा देखनेमें बड़ा सुन्दर और मीठी बोली बोलनेवाला था। एक ब्राह्मणने उसे खरीद लिया और मेरी प्रसन्नताके लिये उसको मुझे दे दिया। मैं प्रतिदिन ज्ञान और ध्यानमें स्थित रहता था। उस समय वह तोतेका बच्चा बाल-स्वभावके कारण कौतूहलवश मेरे हाथपर आ बैठता और बोलने लगता—‘तात! मेरे पास आओ, बैठो; ज्ञानके लिये जाओ और अब देवताओंका पूजन करो।’ इस तरहकी मीठी-मीठी बातें वह मुझसे कहा करता था। उसके

वग्निनोदमें पड़कर मेरा सारा उत्तम ज्ञान चला गया।

एक दिन मैं फूल और फल लानेके लिये वनमें गया था। इसी बीचमें एक बिलाव आकर तोतेको उठा ले गया। यह दुर्घटना मुझे केवल दुःख देनेका कारण हुई। बिलाव उस पक्षीको मारकर खा गया। इस प्रकार उस तोतेकी मृत्यु सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। असह्य शोकके कारण अत्यन्त पीड़ा होने लगी। मैं महान् मोह-जालमें बँधकर उसके लिये प्रलाप करने लगा। सिद्ध महात्माने जिस ज्ञानका उपदेश दिया था, उसकी याद जाती रही। तब तो मीठे वचन बोलनेवाले उस तोतेको तथा उसके ज्ञानको याद करके मैं ‘हा वत्स! हा वत्स!’ कहकर प्रतिदिन विलाप करने लगा।

इस प्रकार विलाप करता हुआ मैं शोकसे अत्यन्त पीड़ित हो गया। अन्ततोगत्वा उसी दुःखसे मेरी मृत्यु हो गयी। उसीकी भावनासे मोहित होकर मुझे प्राण त्यागना पड़ा। द्विजश्रेष्ठ! मृत्युके समय मेरा जैसा भाव था, जैसी बुद्धि थी, उसी भाव और बुद्धिके अनुसार मेरा तोतेकी योनिमें जन्म हुआ है। परन्तु मुझे जो गर्भवास प्राप्त हुआ, वह मेरे ज्ञान और स्मरण-शक्तिको जाग्रत् करनेवाला था। गर्भमें स्वयं ही मुझे अपने पूर्वकर्मका स्मरण हो आया। मैंने सोचा—‘ओह! मुझ मूर्ख, अजितेन्द्रिय तथा पापीने यह क्या कर डाला।’ फिर गुरुदेवके अनुग्रहसे मुझे उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ। उनके वाक्यरूपी सच्छ जलसे मेरे शरीरके भीतर और बाहरका सारा मल धुल गया। मेरा अन्तःकरण निर्मल हो गया। पूर्वजन्ममें मृत्युकाल उपस्थित होनेपर मैंने तोतेका ही चिन्तन किया और उसीकी भावनासे भावित होकर मैं मृत्युको प्राप्त हुआ। यही कारण है कि मुझे पृथ्वीपर तोतेके रूपमें पुनः जन्म लेना पड़ा। मृत्युके समय प्राणियोंका जैसा भाव रहता है, वे वैसे ही जीवके रूपमें उत्पन्न होते हैं। उनका शरीर, पराक्रम, गुण और स्वरूप—सब उसी तरहके होते हैं। वे भाव-स्वरूप होकर ही जन्म लेते हैं।*

* मरणे यादृशो भावः प्राणिनां परिजायते ॥

तादृशाः स्युरु सत्त्वास्ते तद्वापास्तत्परापाश्च भावभूता भवन्ति हि ॥ (१२३। ४६-४७)

महामते ! इस तोतेके शरीरमें मुझे अतुलित ज्ञान प्राप्त शरीरमें आ मिलोगे ।

हुआ है, जिसके प्रभावसे मैं भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंको प्रत्यक्ष देखता हूँ । यहाँ रहकर भी उसी ज्ञानके प्रभावसे मुझे सब कुछ ज्ञात हो जाता है । विप्रवर ! संसारमें भटकनेवाले मनुष्योंको तारनेके लिये गुरुके समान बन्धन-नाशकं तीर्थ दूसरा कोई नहीं है । * भूतलपर प्रकट हुए जलसे बाहरका ही सारा मल नष्ट होता है; किन्तु गुरुरूपी तीर्थ जन्म-जन्मान्तरके पापोंका भी नाश कर डालता है । संसारमें जीवोंका उद्धार करनेके लिये गुरु चलता-फिरता उत्तम तीर्थ है । †

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—नृपश्रेष्ठ ! वह परम ज्ञानी शुक महात्मा व्यवनको इस प्रकार तत्त्वज्ञानका उपदेश देकर चुप हो गया । यह सब परम उत्तम जड्जम तीर्थकी महिमाका वर्णन किया गया । राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो ! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसे वरके रूपमें माँग लो ।

वेनने कहा—जनार्दन ! मुझे राज्य पानेकी अभिलाषा नहीं है । मैं दूसरी कोई वस्तु भी नहीं चाहता । केवल आपके शरीरमें प्रवेश करना चाहता हूँ ।

भगवान् श्रीविष्णु बोले—राजन् ! तुम अश्वमेध और राजसूय यज्ञोंके द्वारा मेरा यज्ञन करो । गौ, भूमि, सुवर्ण, अन्न और जलका दान दो । महामते ! दानसे ब्रह्महत्या आदि घोर पाप भी नष्ट हो जाते हैं । दानसे चारों पुरुषार्थोंकी भी सिद्धि होती है, इसलिये मेरे उद्देश्यसे दान अवश्य करना चाहिये । जो जिस भावसे मेरे लिये दान देता है, उसके उस भावको मैं सत्य कर देता हूँ । ‡ ऋषियोंके दर्शन और स्पर्शसे तुम्हारी पापराशि नष्ट हो चुकी है । यज्ञोंके अन्तमें तुम निश्चय ही मेरे

वेनसे यों कहकर श्रीहरि अन्तर्धनि हो गये । उनके अदृश्य हो जानेपर नृपश्रेष्ठ वेन बड़े हृष्टके साथ घर आये और कुछ सोच-विचारकर अपने पुत्र पृथुको निकट बुला मधुर वाणीमें बोले—‘बेटा ! तुम वास्तवमें पुत्र हो । तुमने इस भूलोकमें बहुत बड़े पातकसे मेरा उद्धार कर दिया । मेरे वंशको उज्ज्वल बना दिया । मैंने अपने दोषोंसे इस कुलका नाश कर दिया था, किन्तु तुमने फिर इसे चमका दिया है । अब मैं अश्वमेध यज्ञके द्वारा भगवान्‌का यज्ञन करूँगा और नाना प्रकारके दान दूँगा । फिर भगवान् विष्णुकी कृपासे उनके उत्तम धामको जाऊँगा । अतः महाभाग ! अब तुम यज्ञकी उत्तम सामग्रियोंको जुटाओ और वेदोंके पारगामी विद्वान् ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करो ।’

सूतजी कहते हैं—वेनकी आज्ञा पाकर परम धर्मात्मा राजकुमार पृथुने नाना प्रकारकी पवित्र सामग्रियाँ एकत्रित कीं तथा नाना देशोंमें उत्पन्न हुए समस्त ब्राह्मणोंको नियन्त्रित किया । तदनन्तर राजा वेनने अश्वमेध यज्ञ किया और ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके दान दिये । इसके बाद वे भगवान् विष्णुके धामको चले गये । महर्षियो ! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे राजा पृथुके समस्त चरित्रका वर्णन किया । यह सब पापोंकी शान्ति और सम्पूर्ण दुःखोंका विनाश करनेवाला है । धर्मात्मा राजा पृथुने इस प्रकार पृथ्वीका राज्य किया और तीनों लोकोंसहित भूमण्डलकी रक्षा की । उन्होंने पुण्य-धर्ममय कर्मोंके द्वारा समस्त प्रजाका मनोरञ्जन किया ।

यह मैंने आपलोगोंसे परम उत्तम भूमिखण्डका वर्णन किया है । पहला सृष्टिखण्ड है और दूसरा

* तारणाय मनुष्याणां संसारे परिवर्तताम् । नास्ति तीर्थं गुरुसं बन्धच्छेदकरं द्विज ॥ (१२३ । ५०)

† स्यलजाद्वोदकात् सर्वं बाह्यं मलं प्रणश्यति । जन्मान्तरकृतान्पापान् गुरुतीर्थं प्रणाशयेत् ॥

‡ यादृशेनापि भावेन मामुदिश्य ददति यः ॥

वादृशं तस्य वै भावं सत्यमेव करोम्यहम् । (१२३ । ५८-५९)

भूमिखण्ड । अब भूमिखण्डके माहात्म्यका वर्णन आरम्भ करता हूँ । जो श्रेष्ठ मनुष्य इस खण्डके एक इलोकका भी श्रवण करता है, उसके एक दिनका पाप नष्ट हो जाता है । जो श्रेष्ठ बुद्धिसे युक्त पुरुष इसके एक अध्यायको सुनता है, उसे पर्वके अवसरपर ब्राह्मणोंको एक हजार गोदान देनेका फल मिलता है । साथ ही उसपर भगवान् श्रीविष्णु भी प्रसन्न होते हैं । जो इस पद्मपुराणका प्रतिदिन पाठ करता है, उसपर कलियुगमें कभी विघ्नोंका आक्रमण नहीं होगा । ब्राह्मणो ! अश्वमेध यज्ञका जो फल बतलाया जाता है, इस पद्मपुराणके पाठसे उसी फलकी प्राप्ति होती है । पुण्यमय अश्वमेध यज्ञ कलियुगमें नहीं होता, अतः उस समय यह पुराण ही अश्वमेधके समान फल देनेवाला है । कलियुगमें मनुष्य प्रायः पापी होते हैं, अतः उन्हें नरकके समुद्रमें गिरना पड़ता है; इसलिये उनको चाहिये कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंके

साधक इस पुण्यमय पुराणका श्रवण करें । जिसने पुण्यके साधनभूत इस पद्मपुराणका श्रवण किया, उसने चतुर्वर्गके समस्त साधनोंको सिद्ध कर लिया । इसका श्रवण करनेवाले मनुष्यके ऊपर कभी भारी विघ्नका आक्रमण नहीं होता । धर्मपरायण पुरुषोंको पूरी पुराणसंहिताका श्रवण करना चाहिये । इससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी भी सिद्धि होती है । भूमिखण्डका श्रवण करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा रोग, दुःख और शत्रुओंके भयसे भी छुटकारा पाकर सदा सुखका अनुभव करता है । पद्मपुराणमें पहला सृष्टिखण्ड, दूसरा भूमिखण्ड, तीसरा स्वर्गखण्ड, चौथा पातालखण्ड और पाँचवाँ सब पापोंका नाश करनेवाला उत्तरखण्ड है । * ब्राह्मणो ! इन पाँचों खण्डोंको सुननेका अवसर बड़े भाग्यसे प्राप्त होता है । सुननेपर ये मोक्ष प्रदान करते हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ।



॥ भूमिखण्ड समाप्त ॥



* प्रथमं सृष्टिखण्डं हि भूमिखण्डं द्वितीयकम् । तृतीयं स्वर्गखण्डं च पातालं च चतुर्थकम् ॥
पञ्चमं चोत्तरं खण्डं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ (१२५।४८-४९)

संक्षिप्त पद्मपुराण

— ★ —

स्वर्ग-खण्ड

— ★ —

आदि सृष्टिके क्रमका वर्णन

— ★ —

नमामि गोविन्दपदारविन्दं सदेन्दिरानन्दनमुत्तमाद्यम् ।

जगज्जनानां हहि संनिविष्टं महाजनैकायनमुत्तमोत्तमम् ॥*

ऋषि बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले रोमहर्षणजी^१ ! आप पुराणोंके विद्वान् तथा परम बुद्धिमान् हैं। आजसे पहले हमलोग आपके मुँहसे पुराणोंकी अनेकों परम पावन कथाएँ सुन चुके हैं तथा इस समय भी भगवान्‌की कथा-वार्तामें ही लगे हैं। जीवोंके लिये सबसे महान् धर्म वही है, जिससे उनकी भगवान्‌में भक्ति हो। अतः सूतजी ! आप फिर हमें श्रीहरिकी कथा सुनाइये; क्योंकि भगवच्चर्चाके अतिरिक्त दूसरी कोई बातचीत श्मशानभूमिके समान मानी गयी है। हमने सुना है तीर्थोंके रूपमें स्वयं भगवान् विष्णु ही। इस भूतलपर विराजमान हैं; इसलिये आप पुण्य प्रदान करनेवाले तीर्थोंके नाम बताइये। साथ ही यह भी कहनेकी कृपा कीजिये कि यह चराचर जगत् किससे उत्पन्न हुआ है, किसके द्वारा इसका पालन होता है तथा ग्रलयके समय किसमें यह लीन होता है। जगत्‌में कौन-कौन-से पुण्यक्षेत्र हैं? किन-किन पर्वतोंके प्रति शून्यभाव रखना चाहिये? और मनुष्योंके पाप दूर करनेवाली परम पवित्र नदियाँ कौन-कौन-सी हैं? महाभाग ! इन सबका आप क्रमशः वर्णन कीजिये।

सूतजीने कहा—द्विजवरो ! पहले मैं आदि संघर्षत्र वर्णन करता हूँ, जिसके द्वारा षड्विध ऐश्वर्यसे जप्तम सनातन परमात्माका ज्ञान होता है। प्रलयकालके

पश्चात् इस सृष्टिकी कोई भी वस्तु शेष नहीं रह गयी थी। उस समय केवल ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म ही शेष था, जो सबको उत्पन्न करनेवाला है। वह ब्रह्म नित्य, निरञ्जन, शान्त, निर्गुण, सदा ही निर्मल, आनन्दधाम और शुद्ध-स्वरूप है। संसार-बन्धनसे मुक्त होनेकी अभिलाषा रखनेवाले साधु पुरुष उसीको जाननेकी इच्छा करते हैं। वह ज्ञानस्वरूप होनेके कारण सर्वज्ञ, अनन्त, अजन्मा, अविकारी, अविनाशी, नित्यशुद्ध, अच्युत, व्यापक तथा सबसे महान् है। सृष्टिका समय आनेपर उस ब्रह्मने वैकारिक जगत्‌को अपनेमें लीन जानकर पुनः उसे उत्पन्न करनेका विचार किया। तब ब्रह्मसे प्रधान (मूल प्रकृति) प्रकट हुआ। प्रधानसे महत्तत्त्वकी उत्पत्ति हुई, जो सात्त्विक, राजस और तामस भेदसे तीन प्रकारका है। यह महत्तत्त्व प्रधानके द्वारा सब ओरसे आवृत है। फिर महत्तत्त्वसे वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) और भूतादिरूप तामस—तीन प्रकारका अहंकार उत्पन्न हुआ। जिस प्रकार प्रधानसे महत्तत्त्व आवृत है, उसी प्रकार महत्तत्त्वसे अहंकार भी आवृत है। तत्पश्चात् भूतादि नामक तामस अहंकारने विकृत होकर भूत और तन्मात्राओंकी सृष्टि की।

इन्द्रियाँ तैजस कहलाती हैं—वे राजस अहंकारसे प्रकट हुई हैं। इन्द्रियोंके अधिष्ठाता दस देवता वैकारिक कहे गये हैं— उनकी उत्पत्ति सात्त्विक अहंकारसे हुई है। तत्त्वका विचार करनेवाले विद्वानोंने मनको ग्यारहवीं

* मैं परमात्मा विष्णुके उन चरण-कमलोंको [भक्तिपूर्वक] प्रणाम करता हूँ, जो भगवती लक्ष्मीजीको सदा ही आनन्द प्रदान करता है। उत्तम शोभासे सम्पन्न है, जिनका संसारके प्रलयके जीवके हृदयमें निवास है तथा जो महापुरुषोंके एकमात्र आश्रय और अपाप्त विमुक्ति का स्रोत है।

अपाप्त विमुक्ति का स्रोत है। ये महर्षणजीका सुनाया हुआ है। इसके पहलेका भाग इनके पुत्रने सुनाया था।

इन्द्रिय बताया है। विप्रगण ! आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये क्रमशः शब्दादि उत्तरोत्तर गुणोंसे युक्त हैं। ये पाँचों भूत पृथक्-पृथक् नाना प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न हैं, किन्तु परस्पर संघटित हुए बिना वे प्रजाकी सृष्टि करनेमें समर्थ न हुए। इसलिये महत्तत्वसे लेकर पञ्चभूतपर्यन्त सभी तत्त्व परम पुरुष परमात्माद्वारा अधिष्ठित और प्रधानद्वारा अनुगृहीत होनेके कारण पूर्णरूपसे एकत्वको प्राप्त हुए। इस प्रकार एक-दूसरेसे संयुक्त होकर परस्परका आश्रय ले उठनेने अण्डकी उत्पत्ति की। महाप्राज्ञ महर्षियो ! इस तरह भूतोंसे प्रकट हो क्रमशः वृद्धिको प्राप्त हुआ वह विशाल अण्ड पानीके बुलबुलेकी तरह सब ओरसे समान—गोलाकार दिखायी देने लगा। वह पानीके ऊपर स्थित होकर ब्रह्मा (हिरण्यगर्भ) के रूपमें प्रकट हुए भगवान् विष्णुका उत्तम स्थान बन गया। सम्पूर्ण विश्वके स्वामी अव्यक्त-स्वरूप भगवान् विष्णु स्वयं ही ब्रह्माजीका रूप धारण

कर उस अण्डके भीतर विराजमान हुए।

उस समय मेरु पर्वतने उन महात्मा हिरण्यगर्भके लिये गर्भको ढकनेवाली झिल्लीका काम दिया, अन्य पर्वत जरायु—जेरके स्थानमें थे और समुद्र उसके भीतरका जल था। उस अण्डमें ही पर्वत और द्वीप आदिके सहित समुद्र, ग्रहों और ताराओंके साथ सम्पूर्ण लोक तथा देवता, असुर और मनुष्योंसहित सारी सृष्टि प्रकट हुई। आदि-अन्तरहित सनातन भगवान् विष्णुकी नाभिसे जो कमल प्रकट हुआ था, वही उनकी इच्छासे सुवर्णमय अण्ड हो गया। परमपुरुष भगवान् श्रीहरि स्वयं ही रजोगुणका आश्रय ले ब्रह्माजीके रूपमें प्रकट होकर संसारकी सृष्टिमें प्रवृत्त होते हैं। वे परमात्मा नारायणदेव ही सृष्टिके समय ब्रह्मा होकर समस्त जगत्की रचना करते हैं, वे ही पालनकी इच्छासे श्रीराम आदिके रूपमें प्रकट हो इसकी रक्षामें तत्पर रहते हैं तथा अन्तमें वे ही इस जगत्का संहार करनेके लिये रुद्रके रूपमें प्रकट हुए हैं।



भारतवर्षका वर्णन और वसिष्ठजीके द्वारा पुष्कर-तीर्थकी महिमाका बखान

सूतजी कहते हैं—महर्षिगण ! अब मैं आपलोगोंसे परम उत्तम भारतवर्षका वर्णन करूँगा। राजा प्रियमित्र, देव, वैवस्वत मनु, पृथु, इक्ष्वाकु, ययाति, अम्बरीष, मान्धाता, नहुष, मुचुकुन्द, कुबेर, उशीनर, ऋषभ, पुरुरवा, राजा नृग, राजर्षि कुशिक, गाधि, सोम तथा राजर्षि दिलीपको, अन्यान्य बलिष्ठ क्षत्रिय राजाओंको एवं सम्पूर्ण भूतोंको ही यह उत्तम देश भारतवर्ष बहुत ही प्रिय रहा। इस देशमें महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षवान्, विन्ध्य तथा पारियात्र—ये सात कुल-पर्वत हैं। इनके आसपास और भी हजारों पर्वत हैं। भारतवर्षके लोग जिन विशाल नदियोंका जल पीते हैं, उनके नाम ये हैं—गङ्गा, सिंधु, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, बाहुदा, शतद्व (सतलज), चन्द्रभागा, यमुना, दृष्टद्वती, विपाशा (व्यास), वेन्नवती (बेतवा), कृष्णा, वेणी, इरावती, (इरावदी), वितस्ता (झेलम), पयोष्णी, देविका, वेदस्मृति, वेदशिय, त्रिदिवा,

सिंधुलाकृमि, करीषिणी, चित्रवहा, त्रिसेना, गोमती, चन्दना, कौशिकी (कोसी), हृद्या, नाचिता, रोहितारणी, रहस्या, शतकुम्भा, सरयू, चर्मण्वती, हस्तिसोमा, दिशा, शरावती, भीमरथी, कावेरी, बालुका, तापी (तासी), नीवारा, महिता, सुप्रयोगा, पवित्रा, कृष्णाला, वाजिनी, पुरुमालिनी, पूर्वाभिरामा, वीरा, मालावती, पापहरिणी, पलाशिनी, महेन्द्रा, पाटलावती, असिन्नी, कुशवीरा, मरुत्वा, प्रवरा, मेना, होरा, धृतवती, अनाकती, अनुष्णी, सेव्या, कापी, सदावीरा, अधृष्णा, कुशचीरा, रथचित्रा, ज्योतिरथा, विश्वामित्रा, कपिञ्जला, उपेन्द्रा, बहुला, कुवीरा, वैनन्दी, पिञ्जला, वेणा, तुङ्गवेणा, महानदी, विदिशा, कृष्णवेणा, ताम्रा, कपिला, धेनु, सकामा, वेदस्वा, हविःस्त्रावा, महापथा, क्षित्रा (सित्रा), पिच्छला, भारद्वाजी, कौर्णिकी, शोणा (सोन), चन्द्रमा, अन्तःशिला, ब्रह्ममेध्या, परोक्षा, रोही, जम्बूनदी (जम्मू), सुनासा, तपसा, दासी, सामान्या, वरुणा, असी, नीला, धृतिकरी,

पण्डिता, मानवी, वृषभा तथा भाषा। द्विजवरो ! ये तथा और भी बहुत-सी बड़ी-बड़ी नदियाँ हैं।

अब जनपदोंका वर्णन करता हूँ सुनिये। कुरु, पाञ्चाल, शाल्व, मात्रेय, जाङ्गल, शूरसेन (मथुराके आसपासका प्रान्त), पुलिन्द, बौध, माल, सौगन्ध्य, चेदि, मत्थ्य (जयपुरके आसपासका भूखण्ड), करुष, भोज, सिंधु (सिंध), उत्तम, दशार्ण, मेकल, उत्कल, कोशल, नैकपृष्ठ, युगंधर, मद्र, कलिङ्ग, काशि, अपरकाशि, जठर, कुकुर, कुत्ति, अवन्ति (उज्जैनके आसपासका देश), अपरकुन्ति; गोमन्त, मल्लक, पुण्ड्र, नृपवाहिक, अश्मक, उत्तर, गोपराष्ट्र, अधिराज्य, कुशाङ्ग, मल्लराष्ट्र, माल्व (मालवा), उपवास्य, वक्रा, वक्रातप, मागध, सद्य, मल्ज, विदेह (तिरहुत), विजय, अङ्ग (भागलपुरके आसपासका प्रान्त), बङ्ग (बंगाल), यकृल्लोमा, मल्ल, सुदेष्ण, प्रह्लाद, महिष, शशक, बाहिक (बलख), वाटधान, आभीर, कालतोयक, अपरान्त, परान्त, पङ्क्तल, चर्मचण्डक, अटवीशेखर, मेरुभूत, उपावृत्त, अनुपावृत्त, सुराष्ट्र (सूरतके आसपासका देश), (केकय, कुट्ट, माहेय, कक्ष, सामुद्र, निष्कुट, अन्ध, बहु, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, मल्द, सत्पत्र, प्रावृष्टेय, भार्ग, भार्गव, भासुर, शक, निषाद, निषध, आनर्त (द्वारकाके आसपासका देश), नैऋत, पूर्णल, पूर्तिमत्थ्य, कुन्तल, कुशक, तीरग्रह, ईंजिक, कल्पकारण, तिलभाग, मसार, मधुमत्त, ककुन्दक काश्मीर, सिंधुसौवीर, गान्धार (कंधार), दर्शक, अभीसार, कुद्रुत, सौरिल, दर्वी, दर्वावात, जामरथ, उरग, बलरुद्ध, सुदामा, सुमल्लिक, बन्ध, करीकष, कुलिन्द, गन्धिक, वानायु, दश, पार्श्वरोमा, कुशबिन्दु, कच्छ, गोपालकच्छ, कुरुवर्ण, किरात, बर्बर, सिद्ध, ताप्रलिपिक, औइम्लेच्छ, सैरिन्द्र और पर्वतीय। ये सब उत्तर भारतके जनपद बताये गये हैं।

मुनिवरो ! अब दक्षिण भारतके जनपदोंका वर्णन किया जाता है। द्रविड (तमिलनाड), केरल (मलवार), ग्राच्य, मूषिक, बालमूषिक, कर्णाटक, महिषक किकिञ्च, झल्लिक, कुन्तल, सौहद,

नलकानन, कोकुट्टक, चोल, कोण, मणिवाल्व, सभङ्ग, कनङ्ग, कुकुर, अङ्गार, मारिष, ध्वजिनी, उत्सव, संकेत, त्रिगर्भ, माल्यसेनि, व्यूढक, कोरक, प्रोष्ठ, सङ्घवेगधर, विन्द्य, रुलिक, बल्वल, मलर, अपरवर्तक, काल्द, चण्डक, कुरट, मुशल, तनवाल, सतीर्थ, पूति, सृज्जय, अनिदाय, शिवाट, तपान, सूतप, ऋषिक, विर्भ (बरार), तङ्गण और परतङ्गण। अब उत्तर एवं अन्य दिशाओंमें रहनेवाले म्लेच्छोंके स्थान बताये जाते हैं—यवन (यूनानी) और काम्बोज—ये बड़े क्रूर म्लेच्छ हैं। कृघृह, पुलट्य, हूण, पारसिक (ईरान) तथा दशमानिक इत्यादि अनेकों जनपद हैं। इनके सिवा क्षत्रियोंके भी कई उपनिवेश हैं। वैश्यों और शूद्रोंके भी स्थान हैं। शूरवीर आभीर, दरद तथा काश्मीर जातिके लोग पशुओंके साथ रहते हैं। खाण्डीक, तुषार, पद्माव, गिरिगहर, आत्रेय, भारद्वाज, स्तनपोषक, द्रोषक और कलिङ्ग—ये किरातोंकी जातियाँ हैं [और इनके नामसे भिन्न-भिन्न जनपद हुए हैं]। तोमर, हन्यमान और करभञ्जक आदि अन्य बहुत-से जनपद हैं। यह पूर्व और उत्तरके जनपदोंका वर्णन हुआ। ब्राह्मणो ! इस प्रकार संक्षेपसे ही मैंने सब देशोंका परिचय दिया है। इस अध्यायका पाठ और श्रवण त्रिवर्ग, (धर्म, अर्थ और काम) रूप महान् फलको देनेवाला है।

द्विजवरो ! प्राचीन कालमें राजा युधिष्ठिरके साथ जो देवर्षि नारदका संवाद हुआ था, उसका वर्णन करता हूँ: आपलोग श्रवण करें। महारथी पाण्डवोंके राज्यका अपहरण हो चुका था। वे द्रौपदीके साथ वनमें निवास करते थे। एक दिन उन्हें परम महात्मा देवर्षि नारदजीने दर्शन दिया। पाण्डवोंने उनका स्वागत-सत्कार किया। नारदजी उनकी की हुई पूजा स्वीकार करके युधिष्ठिरसे बोले—‘धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ ! तुम क्या चाहते हो ?’ यह सुनकर धर्मनन्दन राजा युधिष्ठिरने भाइयोंसहित हाथ जोड़ देवतुल्य नारदजीको प्रणाम किया और कहा—‘महाभाग ! आप सम्पूर्ण लोकोंद्वारा पूजित हैं। आपके संतुष्ट हो जानेपर मैं अपनेको कृतार्थ मानता हूँ—मुझे किसी बातकी आवश्यकता नहीं है। मुनिश्रेष्ठ ! जो

तीर्थयात्रामें प्रवृत्त होकर समूची पृथ्वीकी परिक्रमा करता है, उसको क्या फल मिलता है? ब्रह्मन्! इस बातको आप पूर्णरूपसे बतानेकी कृपा करें।'

नारदजी बोले—राजन्! पहलेकी बात है, राजाओंमें श्रेष्ठ दिलीप धर्मानुकूल ब्रतका नियम लेकर गङ्गाजीके तटपर मुनियोंकी भाँति निवास करते थे। कुछ कालके बाद एक दिन जब महामना दिलीप जप कर रहे थे, उसी समय उन्हें ऋषियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीका दर्शन हुआ। महर्षिको उपस्थित देख राजाने उनका विधिवृत् पूजन किया और कहा—'उत्तम ब्रतका पालन करनेवाले मुनिश्रेष्ठ! मैं आपका दास दिलीप हूँ। आज आपका दर्शन पाकर मैं सब पापोंसे मुक्त हो गया।'

वसिष्ठजीने कहा—महाभाग! तुम धर्मके ज्ञाता हो। तुम्हारे विनय, इन्द्रियसंयम तथा सत्य आदि गुणोंसे मैं सर्वथा संतुष्ट हूँ। बोलो, तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ?

दिलीप बोले—मुने! आप प्रसन्न हैं, इतनेसे ही मैं अपनेको कृतकृत्य समझता हूँ। तपोधन! जो (तीर्थयात्राके उद्देश्यसे) सारी पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करता है, उसको क्या फल मिलता है? यह मुझे बताइये।

वसिष्ठजीने कहा—तात! तीर्थोंका सेवन करनेसे जो फल मिलता है, उसे एकाग्रचित्त होकर सुनो। तीर्थ ऋषियोंके परम आश्रय हैं। मैं उनका वर्णन करता हूँ। वास्तवमें तीर्थसेवनका फल उसे ही मिलता है जिसके हाथ, पैर और मन अच्छी तरह अपने वशमें हों; जो विद्वान्, तपस्वी और कीर्तिमान् हों तथा जिसने दान लेना छोड़ दिया हो। जो संतोषी, नियमपरायण, पवित्र, अहंकारशून्य और उपवास (ब्रत) करनेवाला हो; जो अपने आहार और इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर चुका हो, जो सब दोषोंसे मुक्त हो तथा जिसमें क्रोधका अभाव हो। जो सत्यवादी, दृढप्रतिज्ञ तथा सम्पूर्ण भूतोंके प्रति अपने-जैसा भाव रखनेवाला हो, उसीको तीर्थका पूरा फल प्राप्त होता है। राजन्! दरिद्र मनुष्य यज्ञ नहीं कर सकते; क्योंकि उसमें नाना प्रकारके साधन और

सामग्रीकी आवश्यकता होती है। कहीं कोई राजा या धनवान् पुरुष ही यज्ञका अनुष्ठान कर पाते हैं। इसलिये मैं तुम्हें वह शास्त्रोक्त कर्म बतला रहा हूँ, जिसे दरिद्र मनुष्य भी कर सकते हैं तथा जो पुण्यकी दृष्टिसे यज्ञफलोंकी समानता करनेवाला है; उसे ध्यान देकर सुनो। पुष्कर तीर्थमें जाकर मनुष्य देवाधिदेवके समान हो जाता है। महाराज! दिव्यशक्तिसे सम्पन्न देवता, दैत्य तथा ब्रह्मर्षिगण वहाँ तपस्या करके महान् पुण्यके भागी हुए हैं; जो मनीषी पुरुष मनसे भी पुष्कर तीर्थके सेवनकी इच्छा करता है, उसके सब पाप धुल जाते हैं तथा वह खर्गलोकमें पूजित होता है। इस तीर्थमें पितामह ब्रह्माजी सदा प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं। महाभाग! पुष्करमें आकर देवता और ऋषि भी महान् पुण्यसे युक्त हो परमसिद्धिको प्राप्त हुए हैं। जो वहाँ स्नान करके पितरों और देवताओंके पूजनमें प्रवृत्त होता है, उसके लिये मनीषी विद्वान् अश्वमेधसे दसगुने पुण्यकी प्राप्ति बतलाते हैं। जो पुष्करके वनमें जाकर एक ब्राह्मणको भी भोजन करता है, वह उसके पुण्यसे ब्रह्मधाममें स्थित अजित लोकोंको प्राप्त होता है। जो सायंकाल और प्रातःकालमें हाथ जोड़कर पुष्कर तीर्थका चिन्तन करता है, वह सब तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त करता है। पुष्करमें जाने मात्रसे स्त्री या पुरुषके जन्मभरके किये हुए सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। जैसे भगवान् विष्णु सम्पूर्ण देवताओंके आदि हैं, उसी प्रकार पुष्कर भी समस्त तीर्थोंका आदि कहलाता है। पुष्करमें नियम और पवित्रतापूर्वक बारह वर्षतक निवास करके मनुष्य सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्त कर लेता है और अन्तमें ब्रह्मलोकको जाता है। जो पूरे सौ वर्षोंतक अग्निहोत्रका अनुष्ठान करता है अथवा केवल कार्तिककी पूर्णिमाको पुष्करमें निवास करता है, उसके ये दोनों कर्म समान ही हैं। पहले तो पुष्करमें जाना ही कठिन है। जानेपर भी वहाँ तपस्या करना और भी कठिन है। पुष्करमें दान देना उससे भी कठिन है और सदा वहाँ निवास करना तो बहुत ही मुश्किल है।

जम्बूमार्ग आदि तीर्थ, नर्मदा नदी, अमरकण्टक पर्वत तथा कावेरी-सङ्गमकी महिमा

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन् ! पृथ्वीकी परिक्रमा आरम्भ करनेवाले मनुष्यको पहले जम्बूमार्गमें प्रवेश करना चाहिये । वह पितरों, देवताओं तथा ऋषियोंद्वारा पूजित तीर्थ है । जम्बूमार्गमें जाकर मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है और अन्तमें विष्णुलोकको जाता है । जो मनुष्य प्रतिदिन छठे पहरमें एक बार भोजन करते हुए पाँच रातक उस तीर्थमें निवास करता है, उसकी कभी दुर्गति नहीं होती तथा वह परम उत्तम सिद्धिको प्राप्त होता है । जम्बूमार्गसे चलकर तुष्णीलिकाश्रमकी यात्रा करनी चाहिये । वहाँ जानेसे मनुष्य दुर्गतिमें नहीं पड़ता तथा स्वर्गलोकमें उसका सम्मान होता है । राजन् ! जो अगस्त्याश्रममें जाकर देवताओं और पितरोंकी पूजा करता और वहाँ तीन रात उपवास करके रहता है, उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है । तथा जो शाक या फलसे जीवन-निर्वाह करते हुए वहाँ निवास करता है, वह परम उत्तम कार्तिकेयजीके धामको प्राप्त होता है । राजाओंमें श्रेष्ठ दिलीप ! लक्ष्मीसे सेवित तथा समस्त लोकोंद्वारा पूजित कन्याश्रम तीर्थ धर्मारण्यके नामसे प्रसिद्ध है, वह पुण्यदायक और प्रधान क्षेत्र है; वहाँ पहुँचकर उसमें प्रवेश करने मात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । जो नियमानुकूल आहार करके शौच-संतोष आदि नियमोंका पालन करते हुए वहाँ देवता तथा पितरोंका पूजन करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले यज्ञका फल पाता है । उस तीर्थकी परिक्रमा करके ययाति-पतन नामक स्थानको जाना चाहिये । वहाँकी यात्रा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है ।

तदनन्तर, नियमानुकूल आहार और आचारका पालन करते हुए [उज्जैनमें स्थित] महाकाल तीर्थकी यात्रा करे । वहाँ कोटितीर्थमें स्नान करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है । वहाँसे धर्मज्ञ पुरुषको भद्रवट नामक स्थानमें जाना चाहिये, जो भगवान् उमापतिका तीर्थ है । वहाँकी यात्रा करनेसे एक हजार

गोदानका फल मिलता है तथा महादेवजीकी कृपासे शिवगणोंका आधिपत्य प्राप्त होता है । नर्मदा नदीमें जाकर देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करके मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है ।

युधिष्ठिर बोले—द्विजश्रेष्ठ नारदजी ! मैं पुः नर्मदाका माहात्म्य सुनना चाहता हूँ ।

नारदजीने कहा—राजन् ! नर्मदा सब नदियोंमें श्रेष्ठ है । वह समस्त पापोंका नाश करनेवाली तथा स्थावर-जङ्गम सम्पूर्ण भूतोंको तारनेवाली है । सरस्वतीका जल तीन सप्ताहतक स्नान करनेसे, यमुनाका जल एक सप्ताहतक गोता लगानेसे और गङ्गाजीका जल सर्वके समय ही पवित्र करता है; किन्तु नर्मदाका जल दर्शनमात्रसे पवित्र कर देता है । नर्मदा तीनों लोकोंमें रमणीय तथा पावन नदी है । महाराज ! देवता, असुर, गन्धर्व और तपोधन ऋषि—ये नर्मदाके तटपर तपस्या करके परम सिद्धिको प्राप्त हो चुके हैं । युधिष्ठिर ! वहाँ स्नान करके शौच-संतोष आदि नियमोंका पालन करते हुए जो जितेन्द्रियभावसे एक रात भी उसके तटपर निवास करता है, वह अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है । जो मनुष्य जनेश्वर तीर्थमें स्नान करके विधिपूर्वक पिण्डदान देता है, उसके पितर महाप्रलयतक तृप्त रहते हैं । अमरकण्टक पर्वतके चारों ओर कोटि रुद्रोंकी प्रतिष्ठा हुई है; जो वहाँ स्नान करता और चन्दन एवं फूल-माला आदि चढ़ाकर रुद्रकी पूजा करता है, उसपर रुद्रकोटिस्वरूप भगवान् शिव प्रसन्न होते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । पर्वतके पश्चिम भागमें स्वयं भगवान् महेश्वर विराजमान हैं । वहाँ स्नान करके पवित्र हो ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए जितेन्द्रियभावसे शास्त्रीय विधिके अनुसार श्राद्ध करना चाहिये तथा वहीं तिल और जलसे पितरों तथा देवताओंका तर्पण भी करना चाहिये । पाण्डुनन्दन ! जो ऐसा करता है, उसकी सातवीं पीढ़ीतकके सभी लोग स्वर्गमें निवास करते हैं ।

राजा युधिष्ठिर ! सरिताओंमें श्रेष्ठ नर्मदाकी लंबाई

सौ योजनसे कुछ अधिक सुनी जाती है तथा चौड़ाई दो योजनकी है। अमरकण्टक पर्वतके चारों ओर साठ करोड़ और साठ हजार तीर्थ हैं। वहाँ रहनेवाला पुरुष ब्रह्मचर्यका पालन करे, पवित्र रहे, क्रोध और इन्द्रियोंको काबूमें रखे तथा सब प्रकारकी हिसाओंसे दूर रहकर सब प्राणियोंके हित-साधनमें संलग्न रहे। इस प्रकार समस्त सदाचारोंका पालन करते हुए क्षेत्रपालों (तीर्थ-देवताओं) के दर्शनके लिये यात्रा करनी चाहिये। नर्मदाके दक्षिण-भागमें थोड़ी ही दूरपर एक कपिला नामकी बहुत बड़ी नदी है, जो अपने तटपर उगे हुए देवदार एवं अर्जुनके वृक्षोंसे आच्छादित रहती है। वह परम सौभाग्यवती पावन नदी तीनों लोकोंमें विख्यात है। युधिष्ठिर ! उसके तटपर सौ करोड़से अधिक तीर्थ हैं। कपिलाके तीरपर जो वृक्ष कालचक्रके प्रभावसे गिर जाते हैं, वे भी नर्मदाके जलसे संयुक्त होनेपर परम गतिको प्राप्त होते हैं। एक दूसरी भी नदी है, जिसका नाम विशल्यकरणा है। उस शुभ नदीके किनारे स्नान करनेसे मनुष्य तत्काल शल्यरहित—शोकहीन हो जाता है। नर्मदासे मिली हुई विशल्या नामकी नदी सब पापोंका नाश करनेवाली है। राजन् ! जो मनुष्य वहाँ स्नान करके ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए जितेन्द्रियभावसे एक रात निवास करता है, वह अपनी सौ पीढ़ियोंको तार देता है। महाराज ! जो उस तीर्थमें उपवास करता है, वह सब पापोंसे शुद्ध होकर इन्द्रलोकको जाता है। नर्मदामें स्नान करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। अमरकण्टक पर्वतपर जिसकी मृत्यु होती है, वह सौ करोड़ वर्षोंसे अधिक कालतक इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। फेन और लहरोंसे सुरोभित नर्मदाका पावन जल मस्तकपर चढ़ानेयोग्य है; ऐसा करनेसे सब पापोंसे छूटकारा मिल जाता है। नर्मदा सब प्रकारके पुण्य देनेवाली और ब्रह्महत्याका पाप दूर करनेवाली है। जो नर्मदा-तटपर एक दिन और एक रात उपवास करता है, वह ब्रह्महत्यासे छूट जाता है। पाण्डुनन्दन ! इस प्रकार नर्मदा परम पावन एवं रमणीय नदी है। यह महानदी तीनों लोकोंको पवित्र करती है।

महाराज ! अमरकण्टक पर्वत सब ओरसे पुण्यमय है। जो चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहणके अवसरपर अमरकण्टककी यात्रा करता है, उसके लिये मनोषी पुरुष अश्वमेधसे दसगुना पुण्य बताते हैं। वहाँ महेश्वरका दर्शन करनेसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। जो लोग सूर्य-ग्रहणके समय समुदायके साथ अमरकण्टक पर्वतकी यात्रा करते हैं, उन्हें पुण्डरीक यज्ञका सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है। उस पर्वतपर ज्वालेश्वर नामक महादेव हैं, वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं तथा जिनकी वहाँ मृत्यु होती है, वे पुनः जन्म-मरणके बन्धनमें नहीं पड़ते। मनुष्यके हृदयमें सकाम भाव हो या निष्काम, वह नर्मदाके शुभ जलमें स्नान करके सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और अन्तमें रुद्रलोकको जाता है।

सूतजी कहते हैं—युधिष्ठिर आदि सब महात्मा पुरुषोंने नारदजीसे पूछा—‘भगवन् ! सम्पूर्ण लोकोंके हितके उद्देश्यसे तथा हमलोगोंके ज्ञान एवं पुण्यकी वृद्धिके लिये आप [कृपापूर्वक] नर्मदा-कावेरी-संगमकी यथार्थ महिमाका वर्णन कीजिये।’

नारदजीने कहा—राजन् ! लोक-विख्यात कावेरी नदी जहाँ नर्मदामें मिली हैं, उसी स्थानपर पहले कभी सत्यपराक्रमी कुबेर स्नान करके पवित्र हो तपस्या करते थे। उन्होंने सौ दिव्य वर्षोंतक भारी तपस्या की। इससे प्रसन्न होकर महादेवजीने उन्हें उत्तम वर प्रदान किया। वे बोले—‘महान् सत्त्वशाली यक्ष ! तुम इच्छानुसार वर माँगो; तुम्हारे मनमें जो अभीष्ट कार्य हो, उसे बताओ।’

कुबेरने कहा—देवेश्वर ! यदि आप संतुष्ट हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो ऐसी कृपा कीजिये कि मैं सब यक्षोंका स्वामी बनूँ।

कुबेरकी बात सुनकर भगवान् महेश्वर बहुत प्रसन्न हुए, वे ‘एवमस्तु’ कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये। वर पाकर कुबेर यक्षपुरी—अलकापुरीमें गये। वहाँ श्रेष्ठ यक्षोंने उनका बड़ा सम्मान किया और उन्हें ‘राजा’के पदपर अभिषिक्त कर दिया। जहाँ कुबेरने तपस्या की थी,

वहाँ कावेरी-संगमका जल सब पापोंका नाश करनेवाला है। जो लोग उस संगमकी महिमाको नहीं जानते, वे बड़े भारी लाभसे वञ्चित रह जाते हैं। अतः मनुष्यको सर्वथा प्रयत्न करके वहाँ स्नान करना चाहिये। कावेरी और महानदी नर्मदा दोनों ही परम पुण्यदायिनी हैं। महाराज ! वहाँ स्नान करके वृषभध्वज भगवान् शङ्करका पूजन करना चाहिये। ऐसा करनेवाला

पुरुष अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करके रुद्रलोकमें पूजित होता है। गङ्गा और यमुनाके संगममें स्नान करके मनुष्य जिस फलको प्राप्त करता है, वही फल उसे कावेरी-नर्मदा-संगममें स्नान करनेसे भी मिलता है। राजेन्द्र ! इस प्रकार नर्मदा-कावेरी-संगमकी बड़ी महिमा है। वहाँ सब पापोंका नाश करनेवाला महान् भगवान् शङ्करका पूजन होता है।



नर्मदाके तटवर्ती तीर्थोंका वर्णन

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! नर्मदाके उत्तर तटपर 'पत्रेश्वर' नामसे विस्वात एक तीर्थ है, जिसका विस्तार चार कोसका है। वह सब पापोंका नाश करनेवाला उत्तम तीर्थ है। राजन् ! वहाँ स्नान करके मनुष्य देवताओंके साथ आनन्दका अनुभव करता है। वहाँसे 'गर्जन' नामक तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ [रावणका पुत्र] मेघनाद गया था; उसी तीर्थके प्रभावसे उसको 'इन्द्रजित्' नाम प्राप्त हुआ था। वहाँसे 'मेघराव' तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये, जहाँ मेघनादने मेघके समान गर्जना की थी तथा अपने परिकरोंसहित उसने अभीष्ट वर प्राप्त किये थे। राजा युधिष्ठिर ! उस स्थानसे 'ब्रह्मावर्त' नामक तीर्थको जाना चाहिये, जहाँ ब्रह्माजी सदा निवास करते हैं। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

तदनन्तर अङ्गरेश्वर तीर्थमें जाकर नियमित आहार ग्रहण करते हुए नियमपूर्वक रहे। ऐसा करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे शुद्ध हो रुद्रलोकमें जाता है। वहाँसे परम उत्तम कपिला तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्यको गोदानका फल प्राप्त होता है। तत्पश्चात् कुण्डलेश्वर नामक उत्तम तीर्थमें जाय, जहाँ भगवान् शङ्कर पार्वतीजीके साथ निवास करते हैं। राजेन्द्र ! वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य देवताओंके लिये भी अवध्य हो जाता है।

वहाँसे पिप्पलेश्वर तीर्थकी यात्रा करे, वह सब पापोंका नाश करनेवाला तीर्थ है। वहाँ जानेसे रुद्रलोकमें सम्मान-पूर्वक निवास प्राप्त होता है। इसके बाद विमलेश्वर तीर्थमें जाय; वह बड़ा निर्मल तीर्थ है; उस तीर्थमें मृत्यु होनेपर रुद्रलोककी प्राप्ति होती है। तदनन्तर पुष्करिणीमें जाकर स्नान करना चाहिये; वहाँ स्नान करनेमात्रसे मनुष्य इन्द्रके आधे सिंहासनका अधिकारी हो जाता है। नर्मदा समस्त सरिताओंमें श्रेष्ठ है, वह स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणियोंका उद्धार कर देती है। मुनि भी इस श्रेष्ठ नदी नर्मदाका स्तवन करते हैं। यह समस्त लोकोंका हित करनेकी इच्छासे भगवान् रुद्रके शरीरसे निकली है। यह सदा सब पापोंका अपहरण करनेवाली और सब लोगोंके द्वारा अभिवन्दित है। देवता, गन्धर्व और अप्सरा—सभी इसकी सुति करते रहते हैं—‘पुण्यसलिला नर्मदा ! तुम सब नदियोंमें प्रधान हो, तुम्हें नमस्कार है। सागरगामिनी ! तुमको प्रणाम है। ऋषिगणोंसे पूजित तथा भगवान् शङ्करके श्रीविग्रहसे प्रकट हुई नर्मदे ! तुम्हें बारंबार नमस्कार है। सुमुखि ! तुम धर्मको धारण करनेवाली हो, तुम्हें प्रणाम है। देवताओंका समुदाय तुम्हारे चरणोंमें मस्तक झुकाता है, तुम्हें नमस्कार है। देवि ! तुम समस्त पवित्र वस्तुओंको भी परम पावन बनानेवाली हो, सम्पूर्ण संसार तुम्हारी पूजा करता है; तुम्हें बारंबार नमस्कार है।’*

* नमः पुण्यजले आद्य नमः सागरगामिनि । नमोऽस्तु ते ऋषिगणैः शंकरदेहनिःसृते ॥
नमोऽस्तु ते धर्मभूते वरगन्ने नमोऽस्तु ते देवगणैकवन्दिते । नमोऽस्तु ते सर्वपवित्रपावने नमोऽस्तु ते सर्वजगत्स्पूजिते ॥

जो मनुष्य प्रतिदिन शुद्धभावसे इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह ब्राह्मण हो तो वेदका विद्वान् होता है, क्षत्रिय हो तो युद्धमें विजय प्राप्त करता है, वैश्य हो तो [व्यापारमें] लाभ उठाता है और शूद्र हो तो उत्तम गतिको प्राप्त होता है। साक्षात् भगवान् शङ्कर भी नर्मदा नदीका नित्य सेवन करते हैं; अतः इस नदीको परम पावन समझना चाहिये। यह ब्रह्महत्याको भी दूर करनेवाली है।

शूलभद्र नामसे विख्यात एक परम पवित्र तीर्थ है। वहाँ स्नान करके भगवान् शिवका पूजन करना चाहिये। इससे एक हजार गोदानका फल मिलता है। राजन्! जो उस तीर्थमें महादेवजीकी पूजा करते हुए तीन राततक निवास करता है, उसका इस संसारमें फिर जन्म नहीं होता। तदनन्तर क्रमशः भीमेश्वर, परम उत्तम नमदीश्वर तथा महापुण्यमय आदित्येश्वरकी यात्रा करनी चाहिये। आदित्येश्वर तीर्थमें स्नानके पश्चात् धी और मधुसे शिवजीका पूजन करना उचित है। मलिलकेश्वर तीर्थमें जाकर उसकी परिक्रमा करनेसे जन्मका पूर्ण फल प्राप्त हो जाता है। वहाँसे वरुणेश्वरमें तथा वरुणेश्वरसे परम उत्तम नीराजेश्वर तीर्थमें जाना चाहिये। नीराजेश्वरके पञ्चायतन (पञ्चदेवमन्दिर)का दर्शन करनेसे सब तीर्थोंका फल प्राप्त हो जाता है। राजेन्द्र! वहाँसे कोटितीर्थकी यात्रा करनी चाहिये; वह तीर्थ सर्वत्र प्रसिद्ध है। वहाँ भगवान् शिवने करोड़ों दानवोंका वध किया था; इसीलिये उन्हें कोटीश्वर कहा गया है। उस तीर्थका दर्शन करनेसे मनुष्य सशरीर स्वर्गको चला जाता है। वहाँ त्रयोदशीको महादेवजीकी उपासना करके स्नान करने मात्रसे मनुष्यको सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्त हो जाता है। तत्पश्चात् परम शोभायमान और उत्तम तीर्थ अगस्त्येश्वरकी यात्रा करे, वह पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान करके मनुष्यको ब्रह्महत्यासे छुटकारा मिल जाता है। जो कार्तिक मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको उस तीर्थमें इन्द्रियसंयमपूर्वक एकाग्रचित्त हो घृतसे भगवान् शिवको स्नान करता है, वह इक्षीस पीढ़ियोंतक शिव-धामकी प्राप्तिसे वञ्चित नहीं होता। जो

वहाँ सवारी, जूते, छाता, घृतपूर्ण सुवर्णपात्र तथा भोजन-सामग्री ब्राह्मणोंको दान करता है, उसका वह सारा दान कोटिगुना अधिक फल देनेवाला होता है।

राजेन्द्र! अगस्त्येश्वर तीर्थसे चलकर रविस्तव नामक उत्तम तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य राजा होता है। नर्मदाके दक्षिण किनारे एक इन्द्र-तीर्थ है, जो सर्वत्र प्रसिद्ध है; वहाँ एक रात उपवास करके स्नान करना चाहिये। स्नानके पश्चात् विधिपूर्वक भगवान् जनार्दनका पूजन करे। ऐसा करनेसे उसे एक हजार गोदानका फल मिलता है तथा अन्तमें वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है। इसके बाद ऋषितीर्थमें जाना चाहिये; वहाँ स्नान करने मात्रसे मनुष्य शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वहाँ परम कल्याणमय नारदतीर्थ भी है; वहाँ नहाने मात्रसे एक हजार गोदानका फल मिलता है। तदनन्तर देवतीर्थकी यात्रा करे, जिसे पूर्वकालमें साक्षात् ब्रह्माजीने उत्पन्न किया था; वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकमें सम्मानित होता है।

महाराज ! इसके बाद परम उत्तम वामनेश्वर तीर्थमें जाना चाहिये; वहाँके मन्दिरका दर्शन करनेसे ब्रह्महत्याका पाप छूट जाता है। वहाँसे मनुष्यको निश्चय ही ईशानेश्वरकी यात्रा करनी चाहिये। तत्पश्चात् वटेश्वरमें जाकर भगवान् शिवका दर्शन करनेसे जन्म लेनेका सारा फल मिल जाता है। वहाँसे भीमेश्वर तीर्थमें जाना चाहिये, वह सब प्रकारकी व्याधियोंका नाश करनेवाला है। उस तीर्थमें स्नान मात्र करके मनुष्य सब दुःखोंसे छुटकारा पा जाता है। तत्पश्चात् वारणेश्वर नामक उत्तम तीर्थकी यात्रा करे, वहाँ स्नान करनेसे भी सब दुःख छूट जाते हैं। उसके बाद सोमतीर्थमें जाकर चन्द्रमाका दर्शन करना चाहिये; वहाँ परम भक्तिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्य तत्काल दिव्य देह धारण करके शिवलोकको चला जाता है और वहाँ भगवान् शिवकी ही भाँति चिरकालतक आनन्दका अनुभव करता है। शिवलोकमें वह साठ हजार वर्षोंतक सम्मानपूर्वक निवास करता है। वहाँसे परम उत्तम पिङ्गलेश्वर तीर्थको जाय। वहाँ एक दिन-रातके उपवाससे त्रिग्रात्र-ब्रतका फल मिलता है।

राजन् ! जो उस तीर्थमें कपिला गौका दान करता है, वह उस गौके तथा उससे होनेवाले गोवंशके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक रुद्रलोकमें सम्मान-पूर्वक रहता है।

तदनन्तर नन्दि-तीर्थमें जाकर वहाँ स्नान करे; इससे उसपर नन्दीश्वर प्रसन्न होते हैं और वह सोमलोकमें सम्मानपूर्वक निवास करता है। इसके बाद व्यासतीर्थकी यात्रा करे। व्यासतीर्थ एक तपोवनके रूपमें है। पूर्वकालमें वहाँ महानदी नर्मदाको व्यासजीके भयसे लैटना पड़ा था। व्यासजीने हुंकार किया, जिससे नर्मदा उनके स्थानसे दक्षिण दिशाकी ओर होकर बहने लगी। राजन् ! जो उस तीर्थकी परिक्रमा करता है, उसपर व्यासजी संतुष्ट होते और उसे मनोवाञ्छित फल प्रदान करते हैं। जो मनुष्य परम तेजस्वी भगवान् व्यासकी प्रतिमाको वेदीसहित सूत्रसे आवेष्टित करता है, वह शङ्करजीकी भाँति अनन्त कालतक शिवलोकमें विहार करता है। इसके बाद एरण्डीतीर्थकी यात्रा करनी चाहिये, वह एक उत्तम तीर्थ है। वहाँ नर्मदा-एरण्डी-संगमके जलमें स्नान करनेसे मनुष्य सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है। एरण्डी नदी तीनों लोकोंमें विख्यात और सब पापोंका नाश करनेवाली है। आश्विन मासमें शुक्रपक्षकी अष्टमी तिथिको वहाँ पवित्र भावसे स्नान करके उपवास करनेवाला मनुष्य यदि एक ब्राह्मणको भी भोजन करा दे तो उसे एक करोड़ ब्राह्मणोंको भोजन करानेका फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य भक्तिभावसे युक्त होकर नर्मदा-एरण्डी-संगममें स्नान करता है अथवा मस्तकपर नर्मदेश्वरकी मूर्ति रखकर नर्मदाके जलसे मिले हुए एरण्डीके जलमें गोता लगाता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। राजन् ! जो उस तीर्थकी परिक्रमा करता है, उसके द्वारा सात द्वीपोंसे युक्त समूची पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है।

तदनन्तर सुवर्णतिलक नामक तीर्थमें स्नान करके सुवर्ण दान करे। ऐसा करनेवाला पुरुष सोनेके विमानपर बैठकर रुद्रलोकमें जाता और सम्मानपूर्वक वहाँ निवास करता है। उसके बाद नर्मदा और इक्षुनदीके सङ्गममें

जाना चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य गणपति-पदको प्राप्त होता है। तत्पश्चात् स्कन्दतीर्थकी यात्रा करे। वह सब पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान करने मात्रसे जन्मभरका किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है। पुनः वहाँके आङ्गिरस तीर्थमें जाकर स्नान करे, इससे एक हजार गोदानका फल मिलता है तथा रुद्रलोकमें सम्मान प्राप्त होता है। आङ्गिरस तीर्थसे लाङ्गूल तीर्थमें जाना चाहिये। वह भी सब पापोंका नाश करनेवाला है। महाराज ! वहाँ जाकर यदि मनुष्य स्नान करे तो सात जन्मके किये हुए पापोंसे छुटकारा पा जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। वहाँसे वटेश्वर तीर्थ और सर्वतीर्थकी यात्रा करे। सर्वतीर्थ अत्युत्तम तीर्थ है। वहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। उसके बाद सङ्गमेश्वर तीर्थमें जाना चाहिये। वह सब पापोंका अपहरण करनेवाला उत्तम तीर्थ है। वहाँसे भद्रतीर्थमें जाकर जो मनुष्य दान करता है, उसका वह सारा दान कोटिगुना अधिक हो जाता है।

तत्पश्चात् अङ्गरेश्वर तीर्थमें जाकर स्नान करे। वहाँ नहानेमात्रसे मनुष्य रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है, जो अङ्गारक-चतुर्थीको वहाँ स्नान करता है, वह भगवान् विष्णुके शासनमें रहकर अनन्त कालतक आनन्दका अनुभव करता है। अयोनि-सङ्गम-तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य गर्भमें नहीं आता। जो पाप्डवेश्वर तीर्थमें जाकर वहाँ स्नान करता है, वह अनन्त कालतक सुखी तथा देवता और असुरोंके लिये अवध्य होता है। उत्तरायण आनेपर कम्बोजकेश्वर तीर्थमें जाकर स्नान करे। ऐसा करनेसे मनुष्य जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वही उसे प्राप्त हो जाती है। तदनन्तर चन्द्रभागमें जाकर स्नान करे। वहाँ नहानेमात्रसे मनुष्य सोमलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसके बाद शक्रतीर्थकी यात्रा करे। वह सर्वत्र विख्यात, देवराज इन्द्रद्वारा सम्मानित तथा सम्पूर्ण देवताओंसे भी अभिवन्दित है। जो मनुष्य वहाँ स्नान करके सुवर्ण दान करता है अथवा नीले रंगका साँड़ छोड़ता है, वह उस साँड़के तथा उससे उत्पन्न होनेवाले गोवंशके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं; उतने हजार वर्षोंतक

भगवान् शिवके धाममें निवास करता है।

राजेन्द्र ! शक्रतीर्थसे कपिलातीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वह बड़ा ही उत्तम तीर्थ है। जो वहाँ स्नानके पश्चात् कपिला गौका दान करता है, उसे सम्पूर्ण पृथ्वीके द्वानका फल प्राप्त होता है। नर्मदेश्वर नामक तीर्थ सबसे श्रेष्ठ है। ऐसा तीर्थ आजतक न हुआ है न होगा। वहाँ स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है तथा मनुष्य इस पृथ्वीपर सर्वत्र प्रसिद्ध राजाके रूपमें जन्म ग्रहण करता है। वह सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा समस्त व्याधियोंसे रहित होता है। नर्मदाके उत्तर तटपर एक बहुत ही सुन्दर तथा रमणीय तीर्थ है, उसका नाम है—आदित्यायतन। उसे साक्षात् भगवान् शङ्करने प्रकट किया है। वहाँ स्नान करके यथाशक्ति दिया हुआ दान उस तीर्थके प्रभावसे अक्षय हो जाता है। दरिंद्र, रोगी तथा पापी मनुष्य भी वहाँ स्नान करके सब पापोंसे मुक्त होते और भगवान् सूर्यके लोकमें जाते हैं। वहाँसे मासेश्वर तीर्थमें जाकर स्नान करना चाहिये। वहाँके जलमें डुबकी लगाने मात्रसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है तथा जबतक चौदह इन्द्रोंकी आयु व्यतीत नहीं होती, तबतक मनुष्य स्वर्गलोकमें निवास करता है। तदनन्तर मासेश्वर तीर्थके पास ही जो नागेश्वर नामका तपोवन है, उसमें निवास करे और वहाँ एकाग्रचित्त हो स्नान करके पवित्र हो जाय। जो ऐसा करता है, वह अनन्त कालतक नाग-कन्याओंके साथ विहार करता है। तत्पश्चात् कुबेरभवन नामक तीर्थकी यात्रा करे। वहाँसे कालेश्वर नामक उत्तम तीर्थमें जाय, जहाँ महादेवजीने कुबेरको वर देकर संतुष्ट किया था। महाराज ! वहाँ स्नान करनेसे सब प्रकारकी सम्पत्ति प्राप्त होती है। उसके बाद पश्चिम दिशाकी ओर मारुतालय नामक उत्तम तीर्थकी यात्रा करे और वहाँ स्नान करके पवित्र एवं एकाग्रचित्त होकर बुद्धिमान् पुरुष यथाशक्ति सुवर्ण और अन्नका दान करे। ऐसा करनेसे वह पुष्पक विमानके द्वारा वायुलोकमें जाता है। युधिष्ठिर ! माघ मासमें यमतीर्थकी यात्रा करनी

चाहिये। माघकृष्ण चतुर्दशीको जो वहाँ स्नान करता और दिनमें उपवास करके रातमें भोजन करता है, उसे गर्भवासकी पीड़ा नहीं भोगनी पड़ती।

तदनन्तर ! सोमतीर्थमें^१ जाकर स्नान करे। वहाँ गोता लगाने मात्रसे मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। महाराज ! जो उस तीर्थमें चान्द्रायण ब्रत करता है, वह सब पापोंसे शुद्ध होकर सोमलोकमें जाता है। सोमतीर्थसे स्तम्भतीर्थमें जाकर स्नान करे। ऐसा करनेसे मनुष्य सोमलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसके बाद विष्णुतीर्थकी यात्रा करे। वह बहुत ही उत्तम तीर्थ है और योधनीपुरके नामसे विख्यात है। वहाँ भगवान् वासुदेवने करोड़ों असुरोंके साथ युद्ध किया था। युद्धभूमिमें उस तीर्थकी उत्पत्ति हुई है। वहाँ स्नान करनेसे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। जो वहाँ एक दिन-रात उपवास करता है, उसका ब्रह्महत्या-जैसा पाप भी दूर हो जाता है। तत्पश्चात् तापसेश्वर नामक उत्तम तीर्थमें जाना चाहिये; वह अमोहक तीर्थके नामसे विख्यात है। वहाँ पितरोंका तर्पण तथा पूर्णिमा और अमावास्याको विधिपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये। वहाँ स्नानके पश्चात् पितरोंको पिण्डदान करना आवश्यक है। उस तीर्थमें जलके भीतर हाथीके समान आकारवाली बड़ी-बड़ी चट्टानें हैं। उनके ऊपर विशेषतः वैशाख मासमें पिण्डदान करना चाहिये। ऐसा करनेसे जबतक यह पृथ्वी कायम रहती है, तबतक पितरोंको पूर्ण तृप्ति बनी रहती है। महाराज ! वहाँसे सिद्धेश्वर नामक उत्तम तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य गणेशजीके निकट जाता है। उस तीर्थमें जहाँ जनार्दन नामसे प्रसिद्ध लिङ्ग है, वहाँ स्नान करनेसे विष्णुलोकमें प्रतिष्ठा होती है। सिद्धेश्वरमें अन्धोन तीर्थके समीप स्नान, दान, ब्राह्मण-भोजन तथा पिण्डदान करना उचित है। उसके आधे योजनके भीतर जिसकी मृत्यु होती है, उसे मुक्ति प्राप्त होती है। अन्धोनमें विधिपूर्वक पिण्डदान देनेसे पितरोंको तबतक तृप्ति बनी रहती है, जबतक चन्द्रमा और सूर्यकी संता है। उत्तरायण प्राप्त

१. यह सोमतीर्थ दूसरा है। पहले जिसका वर्णन आया है, वह इससे भिन्न है।

होनेपर जो खी या पुरुष वहाँ स्नान करते और पवित्रभावसे भगवान् सिद्धेश्वरके मन्दिरमें रहकर प्रातःकाल उनकी पूजा करते हैं, उन्हें सत्पुरुषोंकी गति प्राप्त होती है। वैसी गति सम्पूर्ण महायज्ञोंके अनुष्ठानसे भी दुर्लभ है।

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! तदनन्तर, भक्तिपूर्वक भार्गवेश्वर तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। पाण्डुनन्दन ! अब शुक्लतीर्थकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग श्रवण करो। एक समयकी बात है, हिमालयके रमणीय शिखरपर भगवान् शङ्कर अपनी पत्नी उमा तथा पार्वदगणोंके साथ बैठे थे। उस समय मार्कण्डेयजीने उनसे पूछा—‘देवदेव महादेव ! मैं संसारके भयसे डरा हुआ हूँ। आप मुझे कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे मुख प्राप्त हो सके। महेश्वर ! जो तीर्थ सम्पूर्ण तीर्थोंमें श्रेष्ठ हो, उसका मुझे परिचय दीजिये।

भगवान् शिव बोले—ब्रह्मन् ! तुम महान् पण्डित और सम्पूर्ण शास्त्रोंमें कुशल हो; मेरी बात सुनो। दिनमें या रातमें—किसी भी समय शुक्लतीर्थका सेवन किया जाय तो वह महान् फलदायक होता है। उसके दर्शन और स्पर्शसे तथा वहाँ स्नान, ध्यान, तपस्या, होम एवं उपवास करनेसे शुक्लतीर्थ महान् फलका साधक होता है। नर्मदा नदीके तटपर स्थित शुक्लतीर्थ महान् पुण्यदायक है। चाणिक्य नामके राजपिंडि वहाँ सिद्धि प्राप्त की थी। यह क्षेत्र चार कोसके धेरेमें प्रकट हुआ है। शुक्लतीर्थ परम पुण्यमय तथा सब पापोंका नाशक है। वहाँके वृक्षोंकी शिखाका भी दर्शन हो जाय तो ब्रह्महत्या दूर हो जाती है। मुनिश्रेष्ठ ! इसीलिये मैं यहाँ निवास करता हूँ। परम निर्मल वैशाख मासके कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीको तो मैं कैलाससे भी निकलकर यहाँ आ जाता हूँ। जैसे धोबीके द्वारा जलसे धोया हुआ वस्त्र सफेद हो जाता है, उसी प्रकार शुक्लतीर्थ भी जन्मभरके सञ्चित पापको दूर कर देता है। मुनिवर मार्कण्डेय ! वहाँका स्नान और दान अत्यन्त पुण्यदायक है। शुक्लतीर्थसे बढ़कर दूसरे कोई तीर्थ न तो हुआ है और न होगा ही।

मनुष्य अपनी पूर्वावस्थामें जो-जो पाप किये होता है, उन्हें वह शुक्लतीर्थमें एक दिन-रातके उपवाससे नष्ट कर डालता है। वहाँ मेरे निमित्त दान देनेसे जो पुण्य होता है, वह सैकड़ों यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी नहीं हो सकता। जो मनुष्य कार्तिक मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको वहाँ उपवास करके घीसे मुझे स्नान कराता है, वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंके साथ मेरे लोकमें रहकर कभी वहाँसे ब्रह्म नहीं होता। शुक्लतीर्थ अत्यन्त श्रेष्ठ है। ऋषि और सिद्धगण उसका सेवन करते हैं। वहाँ स्नान करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता। जिस दिन उत्तरायण या दक्षिणायनका प्रारम्भ हो, चतुर्दशी हो, संक्रान्ति हो अथवा विषुव नामक योग हो, उस दिन स्नान करके उपवासपूर्वक मनको वशमें रखकर समाहितचित्त हो यथाशक्ति वहाँ दान दे तो भगवान् विष्णु तथा हम प्रसन्न होते हैं। शुक्लतीर्थके प्रभावसे वह सब दान अक्षय पुण्यका देनेवाला होता है। जो अनाथ, दुर्दशाग्रस्त अथवा सनाथ ब्राह्मणका भी उस तीर्थमें विवाह कराता है, उस ब्राह्मणके तथा उसकी संतानोंके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक वह मेरे लोकमें प्रतिष्ठित होता है।

नारदजी कहते हैं—राजा युधिष्ठिर ! शुक्लतीर्थसे गोतीर्थमें जाना चाहिये। उसका दर्शन करने मात्रसे मनुष्य पापरहित हो जाता है। वहाँसे कपिलातीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वह एक उत्तम तीर्थ है। राजन् ! वहाँ स्नान करके मानव सहस्र गो-दानका फल प्राप्त करता है। ज्येष्ठ मास आनेपर विशेषतः चतुर्दशी तिथिको उस तीर्थमें उपवास करके जो मनुष्य भक्तिपूर्वक घीका दीपक जलाता; घृतसे भगवान् शङ्करको स्नान कराता, घीसहित श्रीफलका दान करता तथा अन्तमें प्रदक्षिणा करके घण्टा और आभूषणोंके सहित कपिला गौको दानमें देता है, वह साक्षात् भगवान् शिवके समान होता है तथा इस लोकमें पुनः जन्म नहीं लेता।

राजेन्द्र ! वहाँसे परम उत्तम ऋषितीर्थकी यात्रा करे, उस तीर्थके प्रभावसे द्विज पापमुक्त हो जाता है। ऋषितीर्थसे गणेश्वर तीर्थमें जाना चाहिये। वह बहुत

उत्तम तीर्थ है। श्रावण मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको वहाँ स्नान करनेमात्रसे मनुष्य रुद्रलोकमें सम्मानित होता है। वहाँ पितरोंका तर्पण करनेपर तीनों ऋणोंसे छुटकारा मिल जाता है। गयेश्वरके पास ही गङ्गावदन नामक उत्तम तीर्थ है; वहाँ निष्काम या सकामभावसे भी स्नान करनेवाला मानव जन्मभरके पापोंसे मुक्त हो जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। पर्वके दिन वहाँ सदा स्नान करना चाहिये। उस तीर्थमें पितरोंका तर्पण करनेपर मनुष्य तीनों ऋणोंसे मुक्त होता है। उसके पश्चिम और थोड़ी ही दूरपर दशाश्वमेधिक तीर्थ है; वहाँ भादोंके महीनेमें एक रात उपवास करके जो अमावास्याको स्नान करता है, वह भगवान् शङ्करके धामको जाता है। वहाँ भी पर्वके दिनोंमें सदा ही स्नान करना चाहिये। उस तीर्थमें पितरोंका तर्पण करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है।

दशाश्वमेधसे पश्चिम भृगुतीर्थ है, जहाँ ब्राह्मणश्रेष्ठ भृगुने एक हजार दिव्य वर्षोंतक भगवान् शङ्करकी उपासना की थी। तभीसे ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता और किन्नर भृगुतीर्थका सेवन करते हैं। यह वही स्थान है, जहाँ भगवान् महेश्वर भृगुजीपर प्रसन्न हुए थे। उस तीर्थका दर्शन होनेपर तत्काल पापोंसे छुटकारा मिल जाता है। जिन प्राणियोंकी वहाँ मृत्यु होती है, उन्हें गुह्यातिगुह्य गतिकी प्राप्ति होती है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यह क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत तथा सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्गको जाते हैं; तथा जिनकी वहाँ मृत्यु होती है, वे किर संसारमें जन्म नहीं लेते—मुक्त हो जाते हैं। उस तीर्थमें अन्न, सुवर्ण, जूता और यथाशक्ति भोजन देना चाहिये। इसका पुण्य अक्षय होता है। जो सूर्यग्रहणके समय वहाँ स्नान करके इच्छानुसार दान करता है, उसके तीर्थस्नान और दानका पुण्य अक्षय होता है। जो मनुष्य एक बार भृगुतीर्थका माहात्म्य श्रवण कर लेता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर रुद्रलोकमें जाता है। राजेन्द्र ! वहाँसे परम उत्तम गौतमेश्वर तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। जो मनुष्य वहाँ नहाकर उपवास करता है, वह सुवर्णमय विमानपर

बैठकर ब्रह्मलोकमें जाता है। तदनन्तर धौतपाप नामक तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे ब्रह्महत्या दूर होती है। इसके बाद हिरण्यद्वीप नामसे विख्यात तीर्थमें जाय। वह सब पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य धनी तथा रूपवान् होता है। वहाँसे कनकलकी यात्रा करे। वह बहुत बड़ा तीर्थ है। वहाँ गरुड़ने तपस्या की थी। जो मनुष्य वहाँ स्नान करता है, उसकी रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा होती है। तदनन्तर सिद्धजनार्दन तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ परमेश्वर श्रीविष्णु वाराहरूप धारण करके प्रकट हुए थे। इसीलिये उसे वाराहतीर्थ भी कहते हैं। उस तीर्थमें विशेषतः द्वादशीको स्नान करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है।

राजेन्द्र ! तदनन्तर देवतीर्थमें जाना चाहिये, जो सम्पूर्ण देवताओंद्वारा अभिवन्दित है। वहाँ स्नान करके मनुष्य देवताओंके साथ आनन्द भोगता है। तत्पश्चात् शिखितीर्थकी यात्रा करे, वह बहुत ही उत्तम तीर्थ है। वहाँ जो कुछ दान किया जाता है, वह सब-का-सब कोटिगुना अधिक फल देनेवाला होता है। जो कृष्णपक्षमें अमावास्याको वहाँ स्नान करता और एक ब्राह्मणको भी भोजन कराता है, उसे कोटि ब्राह्मणोंके भोजन करनेका फल प्राप्त होता है।

राजा युधिष्ठिर ! तदनन्तर, नर्मदेश्वर तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वह भी उत्तम तीर्थ है। वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसके बाद पितामह-तीर्थमें जाना चाहिये, जिसे पूर्वकालमें साक्षात् ब्रह्माजीने उत्पन्न किया था। मनुष्यको उचित है कि वहाँ स्नान करके भक्तिपूर्वक पितरोंको पिण्डदान दे तथा तिल और कुशमिश्रित जलसे पितरोंका तर्पण करे। उस तीर्थके प्रभावसे वह सब कुछ अक्षय हो जाता है। जो सावित्री-तीर्थमें जाकर स्नान करता है, वह सब पापोंको धोकर ब्रह्मलोकमें सम्मानित होता है। वहाँसे मानस नामक उत्तम तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् क्रतुतीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वह बहुत ही उत्तम, तीनों लोकोंमें विख्यात और सम्पूर्ण पापोंका नाश

करनेवाला तीर्थ है। इसके बाद स्वर्गबिन्दु नामसे प्रसिद्ध तीर्थमें जाना उचित है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्यको कभी दुर्गति नहीं देखनी पड़ती। वहाँसे भारभूत नामक तीर्थकी यात्रा करे और वहाँ पहुँचकर उपवासपूर्वक भगवान् विरूपाक्षकी पूजा करे। ऐसा करनेसे वह रुद्रलोकमें सम्मानित होता है। राजन् ! जो उस तीर्थमें उपवास करता है, वह पुनः गर्भमें नहीं आता। वहाँसे परम उत्तम अटवी तीर्थमें जाय। वहाँ स्नान करके मनुष्य इन्द्रका आधा सिंहासन प्राप्त करता है। तदनन्तर, सब पापोंका नाश करनेवाले शूद्रतीर्थकी यात्रा करे। वहाँ स्नान करनेमात्रसे निश्चय ही गणेशपदकी प्राप्ति होती है। पश्चिम-समुद्रके साथ जो नर्मदाका सङ्घम है, वह तो मुक्तिका दरवाजा ही खोल देता है। वहाँ देवता, गर्भवा, ऋषि, सिद्ध और चारण तीनों सन्ध्याओंके समय उपस्थित होकर देवताओंके स्वामी भगवान् विमलेश्वरकी आराधना करते हैं। विमलेश्वरसे बढ़कर दूसरा कोई तीर्थ न हुआ है न होगा। जो लोग वहाँ उपवास करके विमलेश्वरका दर्शन करते हैं, वे सब पापोंसे शुद्ध हो रुद्रलोकमें जाते हैं।

राजेन्द्र ! वहाँसे परम उत्तम केशिनी-तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। जो मनुष्य वहाँ स्नान करके एक रात उपवास करता है तथा मन और इन्द्रियोंको वशमें करके

आहारपर भी संयम रखता है, वह उस तीर्थके प्रभावसे ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है। जो सागरेश्वरका दर्शन करता है, उसे समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेका फल मिल जाता है। केशिनी-तीर्थसे एक योजनके भीतर समुद्रके भौंकरमें साक्षात् भगवान् शिव विराजमान है। उनको देखनेसे सब तीर्थोंके दर्शनका फल प्राप्त हो जाता है तथा दर्शन करनेवाला पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो रुद्रलोकमें जाता है। महाराज ! अमरकण्टकसे लेकर नर्मदा और समुद्रके सङ्घमतक जितनी दूरी है, उसके भीतर दस करोड़ तीर्थ विद्यमान हैं। एक तीर्थसे दूसरे तीर्थको जानेके जो मार्ग है, उनका करोड़ों ऋषियोंने सेवन किया है। अग्निहोत्री, दिव्यज्ञान-सम्पन्न तथा ज्ञानी—सब प्रकारके मनुष्योंने तीर्थयात्राएँ की हैं। इससे तीर्थयात्रा मनोवाच्छित फलको देनेवाली मानी गयी है। पाण्डुनन्दन ! जो पुरुष प्रतिदिन भक्तिपूर्वक इस अध्यायका पाठ या श्रवण करता है, वह समस्त तीर्थोंमें स्नानके पुण्यका भागी होता है। साथ ही नर्मदा उसके ऊपर सदा प्रसन्न रहती है। इतना ही नहीं, भगवान् रुद्र तथा महामुनि मार्कण्डेयजी भी उसके ऊपर प्रसन्न होते हैं। जो तीनों सन्ध्याओंके समय इस प्रसङ्गका पाठ करता है, उसे कभी नरकका दर्शन नहीं होता तथा वह किसी कुत्सित योनिमें भी नहीं पड़ता।



विविध तीर्थोंकी महिमाका वर्णन

युधिष्ठिर बोले—नारदजी ! महर्षि वसिष्ठके बताये हुए अन्याय तीर्थोंका, जिनका नाम श्रवण करनेसे ही पाप नष्ट हो जाते हैं, मुझसे वर्णन कीजिये। नारदजीने कहा—‘र्घञ्ज युधिष्ठिर ! हिमालयके पुत्र अर्बुद पर्वतकी यात्रा करनी चाहिये, जहाँ पूर्वकालमें पृथ्वीमें छेद था। वहाँ महर्षि वसिष्ठका आश्रम है, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है। वहाँ एक रात निवास करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। ब्रह्मचर्यके पालन-पूर्वक पिङ्गलतीर्थमें आचमन करनेसे कपिला जातिकी सौ गौओंके दानका फल प्राप्त होता है। तत्पश्चात् प्रथमस्केत्रमें जाना चाहिये। वह विश्वविख्यात तीर्थ है।

वहाँ साक्षात् अग्निदेव नित्य निवास करते हैं। उस श्रेष्ठ तीर्थमें शुद्ध एवं एकाग्रचित्त होकर स्नान करनेसे मानव अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञका फल प्राप्त करता है। उसके बाद सरस्वती और समुद्रके सङ्घममें जाकर स्नान करनेसे मनुष्य सहस्र गोदानका फल पाता और स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो वरुण देवताके उस तीर्थमें स्नान करके एकाग्रचित्त हो तीन राततक वहाँ निवास तथा देवता और पितरोंका तर्पण करता है, वह चन्द्रमाके समान कान्तिमान् होता और अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है।

भरतश्रेष्ठ ! वहाँसे वरदान नामक तीर्थकी यात्रा

करनी चाहिये। वरदानमें स्नान करके मनुष्य सहस्र गोदानका फल प्राप्त करता है। तदनन्तर नियमपूर्वक रहकर नियमित आहारका सेवन करते हुए द्वारकापुरीमें जाना चाहिये। उस तीर्थमें आज भी कमलके चिह्नसे चिह्नित मुद्राएँ दृष्टिगोचर होती हैं। यह एक अद्भुत बात है। वहाँके कमलदलोंमें त्रिशूलके चिह्न दिखायी देते हैं। वहाँ महादेवजीका निवास है। जो समुद्र और सिन्धु नदीके संगमपर जाकर वरुण-तीर्थमें नहाता और एकाग्र-चित्त हो देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण करता है, वह अपने तेजसे देदीप्यमान हो वरुणलोकमें जाता है। युधिष्ठिर ! मनीषी पुरुष कहते हैं कि भगवान् शङ्कुर्णेश्वरकी पूजा करनेसे दस अश्वमेधोंका फल होता है। शङ्कुर्णेश्वर तीर्थकी प्रदक्षिणा करके तीनों लोकोंमें विव्यात तिमि नामक तीर्थमें जाना चाहिये। वह सब पापोंको दूर करनेवाला तीर्थ है। वहाँ स्नान करके देवताओंसहित रुद्रकी पूजा करनेसे मनुष्य जन्मभरके किये हुए पापोंको नष्ट कर डालता है। धर्मज्ञ ! तदनन्तर, सबके द्वारा प्रशंसित वसुधारा-तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वहाँ जानेमात्रसे ही अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। कुरुश्रेष्ठ ! जो मानव वहाँ स्नान करके एकाग्रचित्त हो देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करता है, वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वहाँ वसुओंका एक दूसरा तीर्थ भी है, जहाँ स्नान और जलपान करनेसे मनुष्य वसुओंका प्रिय होता है। तथा ब्रह्मतुङ्ग नामक तीर्थमें जाकर पवित्र, शुद्धचित्त, पुण्यात्मा तथा रजोगुणरहित पुरुष ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। वहाँ रेणुकाका भी तीर्थ है, जिसका देवता भी सेवन करते हैं। वहाँ स्नान करके ब्राह्मण चन्द्रमाकी भाँति निर्मल होता है।

तदनन्तर, पञ्चनद-तीर्थमें जाकर नियमित आहार ग्रहण करते हुए नियमपूर्वक रहना चाहिये। इससे पञ्चयज्ञोंके अनुष्ठानका फल प्राप्त होता है। भरतश्रेष्ठ ! तत्पश्चात् भीमा नदीके उत्तम स्थानपर जाना चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य कभी गर्भमें नहीं आता। तथा एक लाख गोदानोंका फल प्राप्त करता है। गिरिकुञ्ज नामक

तीर्थ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। वहाँ जाकर पितामहको नमस्कार करनेसे सहस्र गोदानोंका फल प्राप्त होता है। उसके बाद परम उत्तम विमलतीर्थकी यात्रा करनी चाहिये, जहाँ आज भी सोने और चाँदी-जैसे मत्स्य दिखायी देते हैं। नरश्रेष्ठ ! वहाँ स्नान करनेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है और मनुष्य सब पापोंसे शुद्ध हो परम गतिको प्राप्त होता है।

काश्मीरमें जो वितस्ता नामक तीर्थ है, वह नागराज तक्षकका भवन है। वह तीर्थ समस्त पापोंको दूर करनेवाला है। जो मनुष्य वहाँ स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण करता है, वह निश्चय ही वाजपेय यज्ञका फल पाता है। उसका हृदय सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है तथा वह परम उत्तम गतिको प्राप्त होता है। वहाँसे मलद नामक तीर्थकी यात्रा करे। राजन् ! वहाँ सायं-सन्ध्याके समय विधिपूर्वक आचमन करके जो अग्निदेवको यथाशक्ति चरु निवेदन करता है तथा पितरोंके निमित्त दान देता है, उसका वह दान आदि अक्षय हो जाता है—ऐसा विद्वान् पुरुषोंका कथन है। वहाँ अग्निको दिया हुआ चरु एक लाख गोदान, एक हजार अश्वमेध यज्ञ तथा एक सौ राजसूय यज्ञोंसे भी श्रेष्ठ है। धर्मके ज्ञाता युधिष्ठिर ! वहाँसे दीर्घसत्र नामक तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ जानेमात्रसे मानव राजसूय और अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। शशायान-तीर्थ बहुत ही दुर्लभ है। उस तीर्थमें प्रतिवर्ष कार्तिकी पूर्णिमाको लोग सरस्वती नदीमें स्नान करते हैं। जो वहाँ स्नान करता है, वह साक्षात् शिवकी भाँति कान्तिमान् होता है; साथ ही उसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। कुरुनन्दन ! जो कुमारकोटि नामक तीर्थमें जाकर नियमपूर्वक स्नान करता और देवताओं तथा पितरोंके पूजनमें संलग्न होता है, उसे दस हजार गोदानका फल मिलता है तथा वह अपने कुलका भी उद्धार कर देता है। महाराज ! वहाँसे एकाग्रचित्त होकर रुद्रकोटि-तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ पूर्वकालमें करोड़ ऋषियोंने भगवान् शिवके दर्शनकी इच्छासे बड़े हर्षके साथ ध्यान लगाया था। वहाँ स्नान करके पवित्र हुआ मनुष्य अश्वमेध

यज्ञका फल पाता और अपने कुलका भी उद्धार करता है। तदनन्तर लोकविरव्यात् सङ्गम-तीर्थमें जाना चाहिये और वहाँ सरस्वती नदीमें परम पुण्यमय भगवान् जनार्दनकी उपासना करनी चाहिये। उस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यका चित्त सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है और वह शिवलोकको प्राप्त होता है।

राजेन्द्र ! तदनन्तर कुरुक्षेत्रकी यात्रा करनी चाहिये। उसकी सब लोग सुनि करते हैं। वहाँ गये हुए समस्त प्राणी पापमुक्त हो जाते हैं। धीर पुरुषको उचित है कि वह कुरुक्षेत्रमें सरस्वती नदीके तटपर एक मासतक निवास करे। युधिष्ठिर ! जो मनसे भी कुरुक्षेत्रका चिन्तन करता है उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और वह ब्रह्मलोकको जाता है। धर्मज ! वहाँसे भगवान् विष्णुके उत्तम स्थानको, जो 'सतत' नामसे प्रसिद्ध है, जाना चाहिये। वहाँ भगवान् सदा मौजूद रहते हैं। जो उस तीर्थमें नहाकर त्रिभुवनके कारण भगवान् विष्णुका दर्शन करता है, वह विष्णुलोकमें जाता है। तत्पश्चात् पारिष्ठवमें जाना चाहिये। वह तीनों लोकोंमें विरव्यात् तीर्थ है। उसके सेवनसे मनुष्यको अग्निष्ठोम और अतिरात्र यज्ञोंका फल मिलता है। तत्पश्चात् तीर्थसेवी मनुष्यको शाल्वकिनि नामक तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ दशाश्वमेध घाटपर स्नान करनेसे भी वही फल प्राप्त होता है। तदनन्तर पञ्चनदमें जाकर नियमित आहार करते हुए नियमपूर्वक रहे। वहाँ कोटि-तीर्थमें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। तत्पश्चात् परम उत्तम वारह-तीर्थकी यात्रा करे, जहाँ पूर्वकालमें भगवान् विष्णु वराहसूपसे विराजमान हुए थे। उस तीर्थमें निवास करनेसे अग्निष्ठोम यज्ञका फल प्राप्त होता है। तदनन्तर जयिनीमें जाकर सोमतीर्थमें प्रवेश करे। वहाँ स्नान करके मानव राजसूय यज्ञका फल प्राप्त करता है। कृतशौच-तीर्थमें जाकर उसका सेवन करनेवाला पुरुष पुण्डरीक यज्ञका फल पाता है और स्वयं भी पवित्र हो जाता है। 'पृष्ठा' नामका तीर्थ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है, वहाँ जाकर स्नान करनेसे मनुष्य अपनी सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। कायशोधन-तीर्थमें जाकर स्नान करनेवालेके

शरीरकी शुद्धि होती है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। तथा जिसका शरीर शुद्ध हो जाता है, वह कल्याणमय उत्तम लोकोंको प्राप्त होता है। तत्पश्चात् लोकोद्धार नामक तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये, जहाँ पूर्वकालमें सबकी उत्पत्तिके कारणभूत भगवान् विष्णुने समस्त लोकोंका उद्धार किया था। राजन् ! वहाँ पहुँचकर उस उत्तम तीर्थमें स्नान करके मनुष्य आत्मीय जनोंका उद्धार कर देता है। जो कपिला-तीर्थमें जाकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए एकाग्रचित्त होकर स्नान तथा देवता-पितरोंका पूजन करता है, वह मानव एक सहस्र कपिला-दानका फल पाता है। जो सूर्यतीर्थमें जाकर स्नान करता और मनको काबूमें रखते हुए उपवास-परायण होकर देवताओं तथा पितरोंकी पूजा करता है, उसे अग्निष्ठोम यज्ञका फल मिलता है तथा वह सूर्यलोकको जाता है। गोभवन नामक तीर्थमें जाकर स्नान करनेवालेको सहस्र गोदानका फल मिलता है।

तदनन्तर ब्रह्मावर्तकी यात्रा करे। ब्रह्मावर्तमें स्नान करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। वहाँसे अन्यान्य तीर्थोंमें धूमते हुए क्रमशः काशीश्वरके तीर्थोंमें पहुँचकर स्नान करनेसे मनुष्य सब प्रकारके रोगोंसे छुटकारा पाता और ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तदनन्तर शौच-सन्तोष आदि नियमोंका पालन करते हुए शीतवनमें जाय। वहाँ बहुत बड़ा तीर्थ है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। वह दर्शन-मात्रसे एक दण्डमें पवित्र कर देता है। वहाँ एक दूसरा भी श्रेष्ठ तीर्थ है, जो स्नान करनेवाले लोगोंका दुःख दूर करनेवाला माना गया है। वहाँ तत्त्वचिन्तन-परायण विद्वान् ब्राह्मण स्नान करके परम गतिको प्राप्त होते हैं। स्वर्णलोमापनयन नामक तीर्थमें प्राणायामके द्वारा जिनका अन्तःकरण पवित्र हो चुका है, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं। दशाश्वमेध नामक तीर्थमें भी स्नान करनेसे उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है।

तत्पश्चात् लोकविरव्यात् मानुष-तीर्थकी यात्रा करे। राजन् ! पूर्वकालमें एक व्याधके बाणोंसे पीड़ित हुए कुछ कृष्णमृग उस सरोवरमें कूद पड़े थे और उसमें गोता लगाकर मनुष्य-शरीरको प्राप्त हुए थे। [तभीसे वह मानुष-तीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ।] इस तीर्थमें स्नान

करके ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए जो ध्यान लगाता है, उसका हृदय सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है तथा वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। राजन् ! मानुष-तीर्थसे पूर्व दिशामें एक कोसकी दूरीपर आपगा नामसे विख्यात एक नदी बहती है। उसके तटपर जाकर जो मानव देवता और पितरोंके उद्देश्यसे साँवाका बना हुआ भोजन दान देता है, वह यदि एक ब्राह्मणको भोजन कराये तो एक करोड़ ब्राह्मणोंके भोजन करानेका फल प्राप्त होता है। वहाँ स्नान करके देवताओं और पितरोंके पूजन तथा एक रात निवास करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है। तत्पश्चात् उस तीर्थमें जाना चाहिये, जो इस पृथ्वीपर ब्रह्मानुस्वर-तीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ सप्तर्षियोंके कुण्डोंमें तथा महात्मा कपिलके क्षेत्रमें स्नान करके जो ब्रह्माजीके पास जा उनका दर्शन करता है, वह पवित्र एवं जितेन्द्रिय होता है तथा उसका चित्त सब पापोंसे शुद्ध होनेके कारण वह अन्तमें ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है।

राजन् ! शुक्रपक्षकी दशमीको पुण्डरीक-तीर्थमें प्रवेश करना चाहिये। वहाँ स्नान करके मनुष्य पुण्डरीक यज्ञका फल प्राप्त करता है। वहाँसे त्रिविष्टप नामक तीर्थको जाय, वह तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। वहाँ वैतरणी नामकी एक पवित्र नदी है, जो सब पापोंसे छुटकारा दिलानेवाली है। वहाँ स्नान करके शूलपाणि भगवान् शङ्करका पूजन करनेसे मनुष्यका हृदय सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है तथा वह परम गतिको प्राप्त होता है। पाणिख्यात नामसे विख्यात तीर्थमें स्नान और देवताओंका तर्पण करके मानव राजसूय यज्ञका फल प्राप्त करता है। तत्पश्चात् विश्वविख्यात मिश्रक (मिश्रिख) में जास्ता चाहिये। नृपश्रेष्ठ ! हमारे सुननेमें आया है कि महात्मा व्यासजीने द्विजातिमात्रके लिये वहाँ सब तीर्थोंका सम्मेलन किया था, अतः जो मिश्रिखमें स्नान करता है, वह मानो सब तीर्थोंमें स्नान कर लेता है।

नरेश्वर ! जो ऋणान्त कूपके पास जाकर वहाँ एक सेर तिलका दान करता है, वह ऋणसे मुक्त हो परम सिद्धिको प्राप्त होता है। वेदीतीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यको सहस्र गोदानका फल मिलता है। अहन् और

सुदिन—ये दो तीर्थ अत्यन्त दुर्लभ हैं। उनमें स्नान करनेसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। मृगधूम तीर्थ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। वहाँ रुद्रपदमें स्नान और महात्मा शूलपाणिका पूजन करके मानव अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। कोटितीर्थमें स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। वामनतीर्थ भी तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। वहाँ जाकर विष्णुपदमें स्नान और भगवान् वामनका पूजन करनेसे तीर्थयात्रीका हृदय सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है। कुलम्पुन-तीर्थमें स्नान करके मनुष्य अपने कुलको पवित्र करता है। शालिहोत्रका एक तीर्थ है, जो शालिसूर्य नामसे प्रसिद्ध है। उसमें विधिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्यको सहस्र गोदानोंका फल मिलता है। राजन् ! सरस्वती नदीमें एक श्रीकुञ्ज नामक तीर्थ है। वहाँ स्नान करके मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त करता है। तत्पश्चात् ब्रह्माजीके उत्तम स्थान (पुष्कर) की यात्रा करनी चाहिये। छोटे वर्णका मनुष्य वहाँ स्नान करनेसे ब्राह्मणत्व प्राप्त करता है और ब्राह्मण शुद्धचित्त होकर परमगतिको प्राप्त होता है।

कपालमोचन-तीर्थ सब पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। वहाँसे कार्तिकेयके पृथूदक-तीर्थमें जाना चाहिये, वह तीनों लोकोंमें विख्यात है। वहाँ देवता और पितरोंके पूजनमें तत्पर होकर स्नान करना चाहिये। स्त्री हो या पुरुष, वह मानवबुद्धिसे प्रेरित हो जान-बूझकर या बिना जाने जो कुछ भी अशुभ कर्म किये होता है, वह सब वहाँ स्नान करनेमात्रसे नष्ट हो जाता है। इतना ही नहीं, उसे अश्वमेध यज्ञके फल तथा स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। कुरुक्षेत्रको परम पवित्र कहते हैं, कुरुक्षेत्रसे भी पवित्र है सरस्वती नदी, उससे भी पवित्र है वहाँके तीर्थ और उन तीर्थोंसे भी पावन है पृथूदक। पृथूदक-तीर्थमें जप करनेवाले मनुष्यका पुनर्जन्म नहीं होता। राजन् ! श्रीसनत्कुमार तथा महात्मा व्यासने इस तीर्थकी महिमा गायी है। वेदमें भी इसे निश्चित रूपसे महत्व दिया गया है। अतः पृथूदक-तीर्थमें अवश्य जाना चाहिये। पृथूदक-तीर्थसे बढ़कर दूसरा कोई परम पावन तीर्थ नहीं है।

निःसन्देह यही मेध्य, पवित्र और पावन है। वहाँ मधुपुर नामक तीर्थ है, वहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानोंका फल प्राप्त होता है। नरश्रेष्ठ ! वहाँसे सरस्वती और अरुणाके सङ्गममें, जो विश्वविश्वात तीर्थ है, जाना चाहिये। वहाँ तीन रातक उपवास करके रहने और स्नान करनेसे ब्रह्महत्या छूट जाती है। साथ ही तीर्थसेवी पुरुषको अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञका फल मिलता है और वह अपनी सात पीढ़ियोंतकका उद्धार कर देता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। वहाँसे शतसहस्र तथा साहस्रक—इन दोनों तीर्थोंमें जाना चाहिये। वे दोनों तीर्थ भी वहाँ हैं तथा सम्पूर्ण लोकोंमें उनकी प्रसिद्धि है। उन दोनोंमें स्नान करनेसे मनुष्य सहस्र गोदानोंका फल पाता है। वहाँ जो दान या उपवास किया जाता है, वह सहस्रगुना अधिक फल देनेवाला होता है। तदनन्तर परम उत्तम रेणुकातीर्थमें जाना चाहिये और वहाँ देवताओं तथा पितरोंके पूजनमें तत्पर हो स्नान करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्यका हृदय सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है तथा उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है। जो क्रोध और इन्द्रियोंको जीतकर विमोचन-तीर्थमें स्नान करता है, वह प्रतिग्रहजनित समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।

तदनन्तर जितेद्वय हो ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए पञ्चवट-तीर्थमें जाकर [स्नान करनेसे] मनुष्यको महान् पुण्य होता है तथा वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जहाँ स्वयं योगेश्वर शिव विराजमान हैं, वहाँ उन देवेशरका पूजन करके मनुष्य वहाँकी यात्रा करनेमात्रसे सिद्धि प्राप्त कर लेता है। कुरुक्षेत्रमें इन्द्रिय-निग्रह तथा ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए स्नान करनेसे मनुष्यका हृदय सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है और वह रुद्रलोकको प्राप्त होता है। इसके बाद नियमित आहारका भोजन तथा शौचादि नियमोंका पालन करते हुए स्वर्गद्वारकी यात्रा करे। ऐसा करनेसे मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता और ब्रह्मलोकको जाता है। महाराज ! नारायण तथा पद्मनाभके क्षेत्रोंमें जाकर उनका दर्शन करनेसे तीर्थसेवी पुरुष शोभावान रूप धारण करके विष्णुधामको प्राप्त

होता है। समस्त देवताओंके तीर्थोंमें स्नान करनेमात्रसे मनुष्य सम्पूर्ण दुःखोंसे मुक्त होकर श्रीशिवकी भाँति कान्तिमान् होता है। तत्पश्चात् तीर्थसेवी पुरुष अस्थिपुरमें जाय और उस पावन तीर्थमें पहुँचकर देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करे। इससे उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है। भरतश्रेष्ठ ! वहाँ गङ्गाहृद नामक कूप है, जिसमें तीन करोड़ तीर्थोंका निवास है। राजन् ! उसमें स्नान करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। आपगामें स्नान और महेश्वरका पूजन करके मनुष्य परम गतिको पाता है और अपने कुलका भी उद्धार कर देता है। तत्पश्चात् तीनों लोकोंमें विश्वात स्थाणुवट-तीर्थमें जाना चाहिये; वहाँ स्नान करके रात्रिमें निवास करनेसे मनुष्य रुद्रलोकको प्राप्त होता है। जो नियम-परायण, सत्यवादी पुरुष एकरात्र नामक तीर्थमें जाकर एक रात निवास करता है, वह ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। राजेन्द्र ! वहाँसे उस त्रिभुवनविश्वात तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ तेजोराशि महात्मा आदित्यका आश्रम है। जो मनुष्य उस तीर्थमें स्नान करके भगवान् सूर्यका पूजन करता है, वह सूर्यलोकमें जाता और अपने कुलंका उद्धार कर देता है।

युधिष्ठिर ! इसके बाद सन्निहिता नामक तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये, जहाँ ब्रह्मा आदि देवता तथा तपोधन ऋषि महान् पुण्यसे युक्त हो प्रतिमास एकत्रित होते हैं। सूर्यग्रहणके समय सन्निहितामें स्नान करनेसे सौ अश्वमेध यज्ञोंके अनुष्ठानका फल होता है। पृथ्वीपर तथा आकाशमें जितने भी तीर्थ, जलाशय, कूप तथा पुण्य-मन्दिर हैं, वे सब प्रत्येक मासकी अमावास्याको निश्चय ही सन्निहितामें एकत्रित होते हैं। अमावास्या तथा सूर्यग्रहणके समय वहाँ केवल स्नान तथा श्राद्ध करनेवाला मानव सहस्र अश्वमेध यज्ञके अनुष्ठानका फल प्राप्त करता है। रुद्री अथवा पुरुषका जो कुछ भी दुष्कर्म होता है, वह सब वहाँ स्नान करनेमात्रसे नष्ट हो जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। उस तीर्थमें स्नान करनेवाला पुरुष विमानपर बैठकर ब्रह्मलोकमें जाता है। पृथ्वीपर नैमित्तिक यज्ञ पवित्र है; तथा तीनों

लोकोंमें कुरुक्षेत्रको अधिक महत्त्व दिया गया है। हवासे उड़ायी हुई कुरुक्षेत्रकी धूलि भी यदि देहपर पड़ जाय तो वह पापीको भी परमगतिकी प्राप्ति करा देती है। कुरुक्षेत्र ब्रह्मवेदीपर स्थित है। वह ब्रह्मर्थियोंसे सेवित पुण्यमय तीर्थ है। राजन् ! जो उसमें निवास करते हैं, वे किसी

तरह शोकके योग्य नहीं होते। तरण्डकसे लेकर अरण्डकतक तथा रामहृद (परशुराम-कुण्ड) से लेकर मचक्रुकतकके भीतरका क्षेत्र समन्तपञ्चक कहलाता है। यही कुरुक्षेत्र है। इसे ब्रह्माजीके यज्ञकी उत्तर-वेदी कहा गया है।



धर्मतीर्थ आदिकी महिमा, यमुना-स्नानका माहात्म्य—हेमकुण्डल वैश्व और उसके पुत्रोंकी कथा एवं स्वर्ग तथा नरकमें ले जानेवाले शुभाशुभ कर्मोंका वर्णन

नारदजी कहते हैं—धर्मके ज्ञाता युधिष्ठिर ! कुरुक्षेत्रसे तीर्थयात्रीको परम प्राचीन धर्मतीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ महाभाग धर्मने उत्तम तपस्या की थी। धर्मशील मनुष्य एकाग्रचित्त हो वहाँ स्नान करके अपनी सात पीढ़ियोंतकको पवित्र कर देता है। वहाँसे उत्तम कलाप-वनकी यात्रा करनी उचित है; उस तीर्थमें एकाग्रतापूर्वक स्नान करके मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता और विष्णुलोकको जाता है। राजन् ! तत्पश्चात् मानव सौगन्धिक-वनकी यात्रा करे। उस वनमें प्रवेश करते ही वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। उसके बाद नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वती आती हैं, जिन्हें मूर्खा देवी भी कहते हैं। उनमें जहाँ वल्मीकि- (बाँबी) से जल निकला है, वहाँ स्नान करे। फिर देवताओं तथा पितरोंका पूजन करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। भारत ! सुगन्धा, शतकुम्भा तथा पञ्चयज्ञकी यात्रा करके मनुष्य स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

तत्पश्चात् तीनों लोकोंमें विश्वात सुवर्ण नामक तीर्थमें जाय; वहाँ पहुँचकर भगवान् शङ्करकी पूजा करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और गणपति-पदको प्राप्त होता है। वहाँसे धूमवन्तीको प्रस्थान करे। वहाँ तीन रात निवास करनेवाला मनुष्य मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। देवीके दक्षिणार्ध भागमें रथावर्त नामक स्थान है। वहाँ जाकर श्रद्धालु एवं जितेन्द्रिय पुरुष महादेवजीकी कृपासे परमगतिको प्राप्त होता है। तत्पश्चात् महागिरिको नमस्कार करके गङ्गाद्वार

(हरिद्वार) की यात्रा करे तथा वहाँ एकाग्रचित्त हो कोटितीर्थमें स्नान करे। ऐसा करनेवाला पुरुष पुण्डरीक यज्ञका फल पाता और अपने कुलका भी उद्धार कर देता है। वहाँ एक रात निवास करनेसे सहस्र गोदानोंका फल मिलता है। सप्तगङ्ग, त्रिगङ्ग और शक्रावर्त नामक तीर्थमें देवता तथा पितरोंका विधिपूर्वक तर्पण करनेवाला पुरुष पुण्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसके बाद कनखलमें स्नान करके तीन राततक उपवास करनेवाला मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और स्वर्गलोकको जाता है। वहाँसे ललितिका- (ललिता) में, जो राजा शन्तनुका उत्तम तीर्थ है, जाना चाहिये। राजन् ! वहाँ स्नान करनेसे मनुष्यकी कभी दुर्गति नहीं होती।

महाराज युधिष्ठिर ! तत्पश्चात् उत्तम कालिन्दी-तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य दुर्गतिमें नहीं पड़ता। नरश्रेष्ठ ! पुष्कर, कुरुक्षेत्र, ब्रह्मावर्त, पृथूदक, अविमुक्त क्षेत्र (काशी) तथा सुवर्ण नामक तीर्थमें भी जिस फलकी प्राप्ति नहीं होती, वह यमुनामें स्नान करनेसे मिल जाता है। निष्काम या सकाम भावसे भी जो यमुनाजीके जलमें गोता लगाता है, उसे इस लोक और परलोकमें दुःख नहीं देखना पड़ता। जैसे कामधेनु और चिन्तामणि मनोगत कामनाओंको पूर्ण कर देती हैं, उसी प्रकार यमुनामें किया हुआ स्नान सारे मनोरथोंको पूर्ण करता है। सत्ययुगमें तप, त्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ तथा कलियुगमें दान सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं; किन्तु कलिन्द-कन्या यमुना सदा ही शुभकारिणी हैं। राजन् ! यमुनाके जलमें स्नान करना सभी वर्णों तथा

समस्त आश्रमोंके लिये धर्म है। मनुष्यको चाहिये कि वह भगवान् वासुदेवकी प्रसन्नता, समस्त पापोंकी निवृत्ति तथा खर्गलोककी प्राप्तिके लिये यमुनाके जलमें ज्ञान करे। यदि यमुना-स्नानका अवसर न मिला तो सुन्दर, सुषुष्ट, बलिष्ठ एवं नाशवान् शरीरकी रक्षा करनेसे क्या लाभ।

विष्णुभक्तिसे रहित ब्राह्मण, विद्वान् पुरुषोंसे रहित श्राद्ध, ब्राह्मणभक्तिसे शून्य क्षत्रिय, दुराचारसे दूषित कुल, दम्भयुक्त धर्म, क्रोधपूर्वक किया हुआ तप, दृढ़तारहित ज्ञान, प्रमादपूर्वक किया हुआ शास्त्राध्ययन, परपुरुषमें आसक्ति रखनेवाली नारी, मदयुक्त ब्रह्मचारी, बुझी हुई आगमें किया हुआ हवन, कपटपूर्ण भक्ति, जीविकाका साधन बनी हुई कन्या, अपने लिये बनायी हुई रसोई, शूद्र संन्यासीका साधा हुआ योग, कृपणका धन, अभ्यासरहित विद्या, विरोध पैदा करनेवाला ज्ञान, जीविकाके साधन बने हुए तीर्थ और व्रत, असत्य और चुगलीसे भरी हुई वाणी, छः कानोंमें पहुँचा हुआ गुप्त मन्त्र, चञ्चल चित्तसे किया हुआ जप, अश्रोत्रियको दिया हुआ दान, नास्तिक मनुष्य तथा अश्रद्धापूर्वक किया हुआ समस्त परलौकिक कर्म—ये सब-के-सब जिस प्रकार नष्टप्राय माने गये हैं, वैसे ही यमुना-स्नानके बिना मनुष्योंका जन्म भी नष्ट ही है। मन, वाणी और क्रियाद्वारा किये हुए आद्र, शुष्क, लघु और स्थूल—सभी प्रकारके पापोंको यमुनाका स्नान दग्ध कर देता है; ठीक उसी तरह, जैसे आग लकड़ीको जला डालती है। रजन्! जैसे भगवान् विष्णुकी भक्तिमें सभी मनुष्योंका अधिकार है, उसी प्रकार यमुनादेवी सदा सबके पापोंका नाश करनेवाली है। यमुनामें किया हुआ स्नान ही सबसे बड़ा मन्त्र, सबसे बड़ी तपस्या और सबसे बढ़कर प्राप्तशक्ति है। यदि मथुराकी यमुना प्राप्त हो जायें तो वे मोक्ष देनेवाली मानी गयी हैं। अन्यत्रकी यमुना पुण्यमयी तथा महापातकोंका नाश करनेवाली है, किन्तु मथुरामें बहनेवाली यमुनादेवी विष्णुभक्ति प्रदान करती है।

रजन्! इस विषयमें मैं तुमसे एक प्राचीन

इतिहासका वर्णन करता हूँ। पूर्वकालके सत्ययुगकी बात है। निषध नामक सुन्दर नगरमें एक वैश्य रहते थे। उनका नाम हेमकुण्डल था। वे उत्तम कुलमें उत्पन्न होनेके साथ ही सत्कर्म करनेवाले थे। देवता, ब्राह्मण और अश्रियकी पूजा करना उनका नित्यका नियम था। वे खेती और व्यापारका काम करते थे। पशुओंके पालन-पोषणमें तत्पर रहते थे। दूध, दही, मट्ठा, घास, लकड़ी, फल, मूल, लवण, अदरख, पीपल, धान्य, शाक, तैल, भाँति-भाँतिके वस्त्र, धातुओंके सामान और ईखके रससे बने हुए खाद्य पदार्थ (गुड़, खाँड़, शक्कर आदि) — इन्हीं सब वस्तुओंको सदा बेचा करते थे। इस तरह नाना प्रकारके अन्यान्य उपायोंसे वैश्यने आठ करोड़ खर्णमुद्राएँ पैदा कीं। इस प्रकार व्यापार करते-करते उनके कानोंतकके बाल सफेद हो गये। तदनन्तर उन्होंने अपने चित्तमें संसारकी क्षणभङ्गरताका विचार करके उस धनके छठे भागसे धर्मका कार्य करना आरम्भ किया। भगवान् विष्णुका मन्दिर तथा शिवालय बनवाये, पोखरा खुदवाया तथा बहुत-सी बावलियाँ बनवायीं। इतना ही नहीं, उन्होंने बरगद, पीपल, आम, जामुन और नीम आदिके जंगल लगवाये तथा सुन्दर पुष्पवाटिका भी तैयार करायी। सूर्योदयसे लेकर सूर्यास्ततक अन्न-जल बाँटनेकी उन्होंने व्यवस्था कर रखी थी। नगरके बाहर चारों ओर अत्यन्त शोभायमान पौसले बनवा दिये थे। राजन्! पुराणोंमें जो-जो दान प्रसिद्ध हैं, वे सभी दान उन धर्मात्मा वैश्यने दिये थे। वे सदा ही दान, देवपूजा तथा अतिथि-सत्कारमें लगे रहते थे।

इस प्रकार धर्मकार्यमें लगे हुए वैश्यके दो पुत्र हुए। उनके नाम थे—श्रीकुण्डल और विकुण्डल। उन दोनोंके सिरपर घरका भार छोड़कर हेमकुण्डल तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने सर्वश्रेष्ठ देवता वरदायक भगवान् गोविन्दकी आराधनामें संलग्न हो तपस्याद्वारा अपने शरीरको क्षीण कर डाला। तथा निरन्तर श्रीवासुदेवमें मन लगाये रहनेके कारण वे वैष्णव-धार्मको प्राप्त हुए, जहाँ जाकर मनुष्यको शोक नहीं करना पड़ता। तत्पश्चात् उस वैश्यके दोनों पुत्र जब

तरुण हुए तो उन्हें बड़ा अभिमान हो गया। वे धनके गर्वसे उन्मत्त हो उठे। उनका आचरण बिगड़ गया। वे दुर्व्यसनोंमें आसक्त हो गये। धर्म-कर्मोंकी ओर उनकी दृष्टि नहीं जाती थी। वे माताकी आज्ञा तथा वृद्ध पुरुषोंका कहना नहीं मानते थे। दोनों ही दुरात्मा और कुमारगामी हो गये। वे अधर्ममें ही लगे रहते थे। उन दुष्टोंने परायी स्त्रियोंके साथ व्यभिचार आरम्भ कर दिया। वे गाने-बजानेमें मस्त रहते और सैकड़ों वेश्याओंको साथ रखते थे। चिकनी-चुपड़ी बातें बनाकर 'हाँ-में-हाँ' मिलानेवाले चापलूस ही उनके सङ्गी थे। उन्हें मद्य पीनेका चस्का लग गया था। इस प्रकार सदा भोगपरायण होकर पिताके धनका नाश करते हुए वे दोनों भाई अपने रमणीय भवनमें निवास करते थे। धनका दुरुपयोग करते हुए उन्होंने वेश्याओं, गुंडों, नटों, मल्लों, चारणों तथा बन्दियोंको अपना सारा धन लुटा दिया। ऊसरमें डाले हुए बीजकी भाँति सारा धन उन्होंने अपात्रोंको ही दिया। सत्पात्रको कभी दान नहीं दिया, ब्राह्मणके मुखमें अन्नका होम नहीं किया तथा समस्त भूतोंका भरण-पोषण करनेवाले सर्वपापनाशक भगवान् विष्णुकी कभी पूजा नहीं की।

इस प्रकार उन दोनोंका धन थोड़े ही दिनोंमें समाप्त हो गया। इससे उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उनके घरमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं बची, जिससे वे अपना निर्वाह करते। द्रव्यके अभावमें समस्त स्वजनों, बान्धवों, सेवकों तथा आश्रितोंने भी उन्हें त्याग दिया। उस नगरमें उनकी बड़ी शोचनीय स्थिति हो गयी। इसके बाद उन्होंने चोरी करना आरम्भ किया। राजा तथा लोगोंके भयसे डरकर वे अपने नगरसे निकल गये और वनमें जाकर रहने लगे। अब वे सबको पीड़ा पहुँचाने लगे। इस प्रकार पापपूर्ण आहारसे उनकी जीविका चलने लगी। तदनन्तर, एक दिन उनमेंसे एक तो पहाड़पर गया और दूसरेने वनमें प्रवेश किया। राजन्! उन दोनोंमें जो बड़ा था, उसे सिंहने मार डाला और छोटेको साँपने डस लिया। उन दोनों महापापियोंकी एक ही दिन मृत्यु हुई। इसके बाद यमदूत उन्हें पाशोंमें बाँधकर यमपुरीमें ले गये। वहाँ

जाकर वे यमराजसे बोले—‘धर्मराज! आपकी आज्ञासे हम इन दोनों मनुष्योंको ले आये हैं। अब आप प्रसन्न होकर अपने इन किङ्करोंको आज्ञा दीजिये, कौन-सा कार्य करें?’ तब यमराजने दूतोंसे कहा—‘वीरो! एकको तो दुःसह पीड़ा देनेवाले नरकमें डाल दो और दूसरेको स्वर्गलोकमें, जहाँ उत्तम-उत्तम भोग सुलभ हैं, स्थान दो।’ यमराजकी आज्ञा सुनकर शीघ्रतापूर्वक काम करनेवाले दूतोंने वैश्यके ज्येष्ठ पुत्रको भयंकर रौरव नरकमें डाल दिया। इसके बाद उनमेंसे किसी श्रेष्ठ दूतने दूसरे पुत्रसे मधुर वाणीमें कहा—‘विकुण्ठल! तुम मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें स्वर्गमें स्थान देता हूँ। तुम वहाँ अपने पुण्यकर्मद्वारा उपर्जित दिव्य भोगोंका उपभोग करो।’

यह सुनकर विकुण्ठलके मनमें बड़ा हर्ष हुआ। मार्गमें अत्यन्त विस्मित होकर उसने दूतसे पूछा—‘दूतप्रवर! मैं आपसे अपने मनका एक सन्देह पूछ रहा हूँ। हम दोनों भाइयोंका एक ही कुलमें जन्म हुआ। हमने कर्म भी एक-सा ही किया तथा दुर्मृत्यु भी हमारी एक-सी ही हुई; फिर क्या कारण है कि मेरे ही समान कर्म करनेवाला मेरा बड़ा भाई नरकमें डाला गया और मुझे स्वर्गकी प्राप्ति हुई? आप मेरे इस संशयका निवारण कीजिये। बाल्यकालसे ही मेरा मन पापोंमें लगा रहा। पुण्य-कर्मोंमें कभी संलग्न नहीं हुआ। यदि आप मेरे किसी पुण्यको जानते हों तो कृपया बतलाइये।’

देवदूतने कहा—वैश्यवर! सुनो। हरिमित्रके पुत्र स्वमित्र नामक ब्राह्मण वनमें रहते थे। वे वेदोंके पारगामी विद्वान् थे। यमुनाके दक्षिण किनारे उनका पवित्र आश्रम था। उस वनमें रहते समय ब्राह्मणदेवताके साथ तुम्हारी मित्रता हो गयी थी। उन्हेंके सङ्गसे तुमने कालिन्दीके पवित्र जलमें, जो सब पापोंको हरनेवाला और श्रेष्ठ है, दो बार माघ-स्नान किया है। एक माघ-स्नानके पुण्यसे तुम सब पापोंसे मुक्त हो गये और दूसरेके पुण्यसे तुम्हें स्वर्गकी प्राप्ति हुई है। इसी पुण्यके प्रभावसे तुम सदा स्वर्गमें रहकर आनन्दका अनुभव करो। तुम्हारा भाई नरकमें बड़ी भारी यातना भोगेगा। असिपत्र-वनके

पत्तोंसे उसके सारे अङ्ग छिद जायेंगे। मुगदरोंकी मारसे उसकी धज्जियाँ उड़ जायेंगी। शिलाकी चट्टानोंपर पटककर उसे चूर-चूर कर दिया जायगा तथा वह दहकते हुए अङ्गरोंमें भूना जायगा।

दूतकी यह बात सुनकर विकुण्ठलको भाईके दुःखसे बड़ा दुःख हुआ। उसके सारे शरीरके रोगटे खड़े हो गये। वह दीन और विनीत होकर बोला—‘साधो ! सत्युरोंमें सात पाँच साथ चलनेमात्रसे मैत्री हो जाती है तथा वह उत्तम फल देनेवाली होती है; अतः आप मित्रभावका विचार करके मेरा उपकार करें। मैं आपसे उपदेश सुनना चाहता हूँ। मेरी समझमें आप सर्वज्ञ हैं; अतः कृपा करके बताइये, मनुष्य किस कर्मके अनुष्ठानसे यमलोकका दर्शन नहीं करते तथा कौन-सा कर्म करनेसे वे नरकमें जाते हैं ?’

देवदूतने कहा—जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा कभी किसी भी अवस्थामें दूसरोंको पीड़ा नहीं देते, वे यमराजके लोकमें नहीं जाते। अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा ही श्रेष्ठ तपस्या है तथा अहिंसाको ही मुनियोंने सदा श्रेष्ठ दान बताया है।* जो मनुष्य दयालु है वे मच्छर, साँप, डॉस, खटमल तथा मनुष्य—सबको अपने ही समान देखते हैं। जो अपनी जीविकाके लिये जलचर और थलचर जीवोंकी हत्या करते हैं, वे कालसूत्र नामक नरकमें पड़कर दुर्गति भोगते हैं। वहाँ उन्हें कुत्तेका मांस खाना तथा पीब और रक्त पीना पड़ता है। वे चर्बीकी कीचमें ढूबकर अधोमुखी कीड़ोंके द्वारा डैंसे जाते हैं। अँधेरेमें पड़कर वे एक-दूसरेको खाते और परस्पर आधात करते हैं। इस अवस्थामें भयङ्कर चीत्कार करते हुए वे एक कल्पतक वहाँ निवास करते हैं। नरकसे निकलनेपर उन्हें दीर्घकालतक स्थावर-योनिमें रहना पड़ता है। उसके बाद वे क्रूर प्राणी सैकड़ों बार

तिर्यग्योनियोंमें जन्म लेते हैं और अन्तमें मनुष्य-योनिके भीतर जन्मसे अंधे, काने, कुबड़े, पङ्गु, दर्जि तथा अङ्गहीन होकर उत्पन्न होते हैं।

इसलिये जो दोनों लोकोंमें सुख पाना चाहता है, उस धर्मज्ञ पुरुषको उचित है कि इस लोक और परलोकमें मन, वाणी तथा क्रियाके द्वारा किसी भी जीवकी हिसा न करे। प्राणियोंकी हिसा करनेवाले लोग दोनों लोकोंमें कहीं भी सुख नहीं पाते। जो किसी जीवकी हिसा नहीं करते, उन्हें कहीं भी धय नहीं होता। जैसे नदियाँ समुद्रमें मिलती हैं, उसी प्रकार समस्त धर्म अहिंसामें ल्य हो जाते हैं—यह निश्चित बात है। वैश्यप्रवर ! जिसने इस लोकमें सम्पूर्ण भूतोंको अभयदान कर दिया है, उसीने सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान किया है तथा वह सम्पूर्ण यज्ञोंकी दीक्षा ले चुका है। वर्णाश्रमधर्ममें स्थित होकर शास्त्रोक्त आज्ञाका पालन करनेवाले समस्त जितेन्द्रिय मनुष्य सनातन ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं। जो इष्ट^१ और पूर्ति^२ लगे रहते हैं, पञ्चयज्ञोंका^३ अनुष्ठान किया करते हैं, जिनके मनमें सदा दया भरी रहती है, जो विषयोंकी ओरसे निवृत्त, सामर्थ्यशाली, वेदवादी तथा सदा अग्निहोत्रपरायण हैं, वे ब्राह्मण स्वर्गगामी होते हैं। शत्रुओंसे घिरे होनेपर भी जिनके मुखपर कभी दीनताका भाव नहीं आता, जो शूरवीर हैं, जिनकी मृत्यु संग्राममें ही होती है; जो अनाथ स्त्रियों, ब्राह्मणों तथा शरणागतोंकी रक्षाके लिये अपने प्राणोंकी बलि दे देते हैं तथा जो पङ्गु, अन्ध, बाल-वृद्ध, अनाथ, रोगी तथा दरिद्रोंका सदा पालन-पोषण करते हैं, वे सदा स्वर्गमें रहकर आनन्द भोगते हैं। जो कीचड़में फँसी हुई गाय तथा रोगसे आतुर ब्राह्मणको देखकर उनका उद्धार करते हैं, जो गौओंको ग्रास अर्पण करते, गौओंकी सेवा-शुश्रूषामें रहते तथा गौओंकी पीठपर

* अहिंसा परमो धर्मो ह्यहिसैव परं तपः। अहिंसा परमं दानमित्याहुर्मुनयः सदा ॥ (३१। २७)

^१. अग्निहोत्र, तप, सत्य, यज्ञ, दान, वेदरक्षा, आतिथ्य, वैश्वदेव और ध्यान आदि धार्मिक कार्योंको ‘इष्ट’ कहते हैं। ^२. बावली, पितॄयज्ञ तथा मृत्यज्ञ—ये ही पञ्चयज्ञ कहे गये हैं। ^३. ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, मनुष्ययज्ञ,

कभी सवारी नहीं करते, वे स्वर्गलोकके निवासी होते हैं। जो ब्राह्मण प्रतिदिन अग्निपूजा, देवपूजा, गुरुपूजा और द्विजपूजामें तत्पर रहते हैं, वे स्वर्गलोकमें जाते हैं।

बावली, कुआँ और पोखरे बनवाने आदिके पुण्यका कभी अन्त नहीं होता; क्योंकि वहाँ जलचर और थलचर जीव सदा अपनी इच्छाके अनुसार जल पीते रहते हैं। देवता भी बावली आदि बनवानेवालेको नित्य दानपरायण कहते हैं। वैश्यवर ! प्राणी जैसे-जैसे बावली आदिका जल पीते हैं, वैसे-ही-वैसे धर्मकी वृद्धि होनेसे उसके बनवानेवाले मनुष्यके लिये स्वर्गका निवास अक्षय होता जाता है। जल प्राणियोंका जीवन है। जलके ही आधारपर प्राण टिके हुए हैं। पातकी मनुष्य भी प्रतिदिन स्नान करनेसे पवित्र हो जाते हैं। प्रातः-कालका स्नान बाहर और भीतरके मलको भी धो डालता है। प्रातःस्नानसे निष्पाप होकर मनुष्य कभी नरकमें नहीं पड़ता। जो बिना स्नान किये भोजन करता है, वह सदा मलका भोजन करनेवाला है। जो मनुष्य स्नान नहीं करता, देवता और पितर उससे विमुख हो जाते हैं। वह अपवित्र माना गया है। वह नरक भोगकर कीट-योनिको प्राप्त होता है।

जो लोग पर्वके दिन नदीकी धारामें स्नान करते हैं, वे न तो नरकमें पड़ते हैं और न किसी नीच योनिमें ही जन्म लेते हैं। उनके लिये बुरे स्वप्न और बुरी चिन्ताएँ सदा निष्फल होती हैं। विकुण्ठल ! जो पृथ्वी, सुवर्ण और गौ—इनका सोलह बार दान करते हैं, वे स्वर्गलोकमें जाकर फिर वहाँसे वापस नहीं आते। विद्वान् पुरुष पुण्य तिथियोंमें, व्यतीपात योगमें तथा संक्रान्तिके समय स्नान करके यदि थोड़ा-सा भी दान करे तो कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता। जो मनुष्य सत्यवादी, सदा मौन धारण करनेवाले, प्रियवक्ता, क्रोधहीन, सदाचारी, अधिक बकवाद न करनेवाले, दूसरोंके दोष न

देखनेवाले, सदा सब प्राणियोंपर दया करनेवाले, दूसरोंकी गुप्त बातोंको प्रकट न करनेवाले तथा दूसरोंके गुणोंका बखान करनेवाले हैं; जो दूसरेके धनको तिनकेके समान समझकर मनसे भी उसे लेना नहीं चाहते, ऐसे लोगोंको नरक-यातनाका अनुभव नहीं करना पड़ता। जो दूसरोंपर कलङ्क लगानेवाला, पाखण्डी, महापापी और कठोर वचन बोलनेवाला है, वह प्रलयकालतक नरकमें पकाया जाता है। कृतप्र पुरुषका तीर्थोंकि सेवन तथा तपस्यासे भी उद्धार नहीं होता। उसे नरकमें दीर्घकालतक भयङ्कर यातना सहन करनी पड़ती है। जो मनुष्य जितेन्द्रिय तथा मिताहारी होकर पृथ्वीके समस्त तीर्थोंमें स्नान करता है, वह यमराजके घर नहीं जाता। तीर्थमें कभी पातक न करे, तीर्थको कभी जीविकाका साधन न बनाये, तीर्थमें दान न ले तथा वहाँ धर्मको बेचे नहीं। तीर्थमें किये हुए पातकका क्षय होना कठिन है। तीर्थमें लिये हुए दानका पचाना मुश्किल है।

जो एक बार भी गङ्गाजीके जलमें स्नान करके गङ्गाजलसे पवित्र हो चुका है, उसने चाहे राशि-राशि पाप किये हों, फिर भी वह नरकमें नहीं पड़ता। हमारे सुननेमें आया है कि ब्रत, दान, तप, यज्ञ तथा पवित्रताके अन्यान्य साधन गङ्गाकी एक बूँदसे अभिषिक्त हुए पुरुषकी समानता नहीं कर सकते।* जो धर्मद्रव (धर्मका ही द्रवीभूतस्वरूप) है, जलका आदि कारण है, भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुआ है तथा जिसे भगवान् शङ्करने अपने मस्तकपर धारण कर रखा है, वह गङ्गाजीका निर्मल जल प्रकृतिसे परे निर्गुण ब्रह्म ही है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अतः ब्रह्माण्डके भीतर ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो गङ्गाजलकी समानता कर सके। जो सौ योजन दूरसे भी 'गङ्गा, गङ्गा' कहता है, वह मनुष्य नरकमें नहीं पड़ता। फिर गङ्गाजीके समान

* सकृदङ्गाभ्यसि स्नातः पूतो गङ्गेयवारिणा । न नरे नरकं याति अपि पातकराशिकृत् ॥

व्रतदानतपोयज्ञाः पवित्राणीतराणिं च । गङ्गविन्द्वभिषिक्तस्य न समा इति नः श्रुतम् ॥

कौन हो सकता है।* नरक देनेवाला पापकर्म दूसरे किसी उपायसे तत्काल दग्ध नहीं हो सकता; इसलिये मनुष्योंको प्रथलपूर्वक गङ्गाजीके जलमें स्नान करना चाहिये।

जो ब्राह्मण दान लेनेमें समर्थ होकर भी उससे अलग रहता है, वह आकाशमें तारा बनकर चिरकालतक प्रकाशित होता रहता है। जो कीचड़से गौका उद्धार करते हैं, रोगियोंकी रक्षा करते हैं तथा गोशालामें जिनकी मृत्यु होती है, उन्हीं लोगोंके लिये आकाशमें स्थित तारामय लोक हैं। सदा प्राणायाम करनेवाले द्विज यमलोकका दर्शन नहीं करते। वे पापी हों तो भी प्राणायामसे ही उनका पाप नष्ट हो जाता है। वैश्यवर ! यदि प्रतिदिन सोलह प्राणायाम किये जायें तो वे साक्षात् ब्रह्मधातीको भी पवित्र कर देते हैं। जिन-जिन तपोंका अनुष्ठान किया जाता है, जो-जो व्रत और नियम कहे गये हैं, वे तथा एक सहस्र गोदान—ये सब एक साथ हों तो भी प्राणायाम अकेला ही इनकी समानता कर सकता है। जो मनुष्य सौसे अधिक वर्षोंतक प्रतिमास कुशके अग्रभागसे एक बूँद पानी पीकर रहता है, उसकी कठोर तपस्याके बराबर केवल प्राणायाम ही है। प्राणायामके बलसे मनुष्य अपने सारे पातकोंको क्षणभरमें भस्म कर देता है। जो नरश्रेष्ठ ! परायी खियोंको मातके समान समझते हैं, वे कभी यम-यातनामें नहीं पड़ते। जो पुरुष मनसे भी परायी खियोंका सेवन नहीं करता, उसने इस लोक और परलोकके साथ समूची पृथ्वीको धारण कर रखा है। इसलिये परस्ती-सेवनका परित्याग करना चाहिये। परायी खियाँ इक्सीस पीढ़ियोंको नरकोंमें ले जाती हैं।

जो क्रोधका कारण उपस्थित होनेपर भी कभी क्रोधके वर्णभूत नहीं होता, उस अक्रोधी पुरुषको इस पृथ्वीपर स्वर्गका विजेता समझना चाहिये। जो पुत्र माता-पिताकी देवताके समान आराधना करता है, वह कभी यमराजके घर नहीं जाता। खियाँ अपने शील-सदाचारकी रक्षा करनेसे इस लोकमें धन्य मानी जाती हैं। शील भङ्ग होनेपर खियोंको अत्यन्त भयङ्गर यमलोककी प्राप्ति होती है। अतः खियोंको दुष्टोंके सङ्गका परित्याग करके सदा अपने शीलकी रक्षा करनी चाहिये। वैश्यवर ! शीलसे नारियोंको उत्तम स्वर्गकी प्राप्ति होती है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।†

जो शास्त्रका विचार करते हैं, वेदोंके अभ्यासमें लगे रहते हैं, पुराण-संहिताको सुनाते तथा पढ़ते हैं, सृतियोंकी व्याख्या और धर्मोंका उपदेश करते हैं तथा वेदान्तमें जिनकी निष्ठा है, उन्होंने इस पृथ्वीको धारण कर रखा है। उपर्युक्त विषयोंके अभ्यासकी महिमासे उन सबके पाप नष्ट हो जाते हैं तथा वे ब्रह्मलोकको जाते हैं, जहाँ मोहका नाम भी नहीं है। जो अनजान मनुष्यको वेद-शास्त्रका ज्ञान प्रदान करता है, उसकी वेद भी प्रशंसा करते हैं; क्योंकि वह भव-बन्धनको नष्ट करनेवाला है।

वैष्णव पुरुष यम, यमलोक तथा वहाँके भयङ्गर प्राणियोंका कदापि दर्शन नहीं करते—यह बात मैंने बिलकुल सच-सच बतायी है। यमुनाके भाई यमराज हमलोगोंसे सदा ही और बारंबार कहा करते हैं कि 'तुमलोग वैष्णवोंको छोड़ देना; ये मेरे अधिकारमें नहीं हैं। जो प्राणी प्रसङ्गवश एक बार भी भगवान् केशवका स्मरण कर लेते हैं, उनकी समस्त पापराशि नष्ट हो जाती

* धर्मद्रवं ह्यापां बीजं वैकुण्ठचरणच्युतम्। धृतं मूर्धि महेशेन यद्वङ्गममलं जलम्॥
वद्वैष्व न सन्देहो निर्गुणं प्रकृतेः परम्। तेन कि समतां गच्छेदपि ब्रह्माण्डगोचरे॥
गङ्गा गङ्गेति यो ब्रह्माद्योजनानां शतैरपि। नरो न नरकं याति कि तया सदृशं भवेत्॥

† इह चैव खियो धन्यः शीलस्य परिरक्षणात्। शीलभङ्गे च नारीणां यमलोकः सुदारुणः॥
शील रक्ष्य सदा शीर्षिदुष्टसङ्गविवर्जनात्। शीलेन हि परः स्वर्गः खीणां वैश्य न संशयः॥

है तथा वे श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त होते हैं।* दुराचारी, पापी अथवा सदाचारी—कैसा भी क्यों न हो, जो मनुष्य भगवान् विष्णुका भजन करता है, उसे तुमलोग सदा दूरसे ही त्याग देना। जिनके घरमें वैष्णव भोजन करता हो, जिन्हें वैष्णवोंका सङ्ग प्राप्त हो, वे भी तुम्हरे लिये त्याग देने योग्य हैं; क्योंकि वैष्णवोंके सङ्गसे उनके पाप नष्ट हो गये हैं।' पापिष्ठ मनुष्योंको नरक-समुद्रसे पार जानेके लिये भगवान् विष्णुकी भक्तिके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है। वैष्णव पुरुष चारों वर्णोंसे बाहरका हो तो भी वह तीनों लोकोंको पवित्र कर देता है। मनुष्योंके पाप दूर करनेके लिये भगवान्के गुण, कर्म और नामोंका सङ्कीर्तन किया जाय—इतने बड़े प्रयासकी कोई आवश्यकता नहीं है; क्योंकि अजामिल-जैसा पापी भी मृत्युके समय 'नारायण' नामसे अपने पुत्रको पुकारकर भी मुक्ति पा गया।† जिस समय मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक भगवान् श्रीहरिकी पूजा करते हैं, उसी समय उनके मातृकुल और पितृकुल दोनों कुलोंके पितर, जो चिरकालसे नरकमें पड़े होते हैं, तत्काल स्वर्गको चले जाते हैं। जो विष्णुभक्तोंके सेवक तथा वैष्णवोंका अन्न भोजन करनेवाले हैं, वे शान्तभावसे देवताओंकी गतिको प्राप्त होते हैं। अतः विद्वान् पुरुष समस्त पापोंकी शुद्धिके लिये प्रार्थना और यत्पूर्वक वैष्णवका अन्न प्राप्त करें; अन्नके अभावमें उसका जल माँगकर ही पी ले। यदि 'गोविन्द' इस मन्त्रका जप करते हुए कहीं मृत्यु हो जाय तो वह मरनेवाला मनुष्य न तो स्वयं यमराजको देखता है और न हमलोग ही उसकी ओर दृष्टि डालते हैं। अङ्ग, मुद्रा, ध्यान, ऋषि,

छन्द और देवतासहित द्वादशाक्षर मन्त्रकी दीक्षा लेकर उसका विधिवत् जप करना चाहिये। जो श्रेष्ठ मानव ['ॐ नमो नारायणाय'] इस अष्टाक्षर मन्त्रका जप करते हैं, उनका दर्शन करके ब्राह्मणघाती भी शुद्ध हो जाता है तथा वे स्वयं भी भगवान् विष्णुकी भाँति तेजस्वी प्रतीत होते हैं।

जो मनुष्य हृदय, सूर्य, जल, प्रतिमा अथवा वेदीमें भगवान् विष्णुकी पूजा करते हैं, वे वैष्णवधामको प्राप्त होते हैं। अथवा मुमुक्षु पुरुषोंको चाहिये कि वे शालग्राम-शिलाके चक्रमें सर्वदा वासुदेव भगवान्का पूजन करें। वह श्रीविष्णुका अधिष्ठान है तथा सब प्रकारके पापोंका नाशक, पुण्यदायक एवं सबको मुक्ति प्रदान करनेवाला है। जो शालग्राम-शिलासे उत्पन्न हुए चक्रमें श्रीहरिका पूजन करता है, वह मानो प्रतिदिन एक सहस्र राजसूय यज्ञोंका अनुष्ठान करता है। जिन शान्त ब्रह्मस्वरूप अच्युतको उपनिषद् सदा नमस्कार करते हैं, उन्हींका अनुग्रह शालग्राम-शिलाकी पूजा करनेसे मनुष्योंको प्राप्त होता है। जैसे महान् काष्ठमें स्थित अग्नि उसके अग्रभागमें प्रकाशित होती है, उसी प्रकार सर्वत्र व्यापक भगवान् विष्णु शालग्राम-शिलामें प्रकाशित होते हैं। जिसने शालग्राम-शिलासे उत्पन्न चक्रमें श्रीहरिका पूजन कर लिया उसने अग्निहोत्रका अनुष्ठान पूर्ण कर लिया तथा समुद्रोंसहित सारी पृथ्वी दान दे दी। जो नराधम इस लोकमें काम, क्रोध और लोभसे व्याप्त हो रहा है, वह भी शालग्राम-शिलाके पूजनसे श्रीहरिके लोकको प्राप्त होता है। वैश्य ! शालग्राम-शिलाकी पूजा करनेसे मनुष्य तीर्थ, दान, यज्ञ और व्रतोंके बिना ही

* प्राहास्मान् यमुनाप्राता सदैव हि पुनः पुनः। भवद्विवैष्णवास्त्वायज्ञा न ते स्युर्म गोचराः॥
स्मरन्ति ये सकृद्भूताः प्रसङ्गेनापि केशवम्। ते विष्वस्ताखिलाघौषधा यान्ति विष्णोः परं पदम्॥

(३१ । १०२-१०३)

+ एतावताल्पघनिर्हणाय
संकीर्तनं
विकृश्य पुत्रमधवान्
नारायणोति

पुंसां
भगवतो गुणकर्मनाम्।
यद्यामिलोऽपि
प्रियमाण इयाय मुक्तिम्॥

(३१ । १०९)

मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। शालग्राम-शिलाकी पूजा करनेवाला मानव पापी हो तो भी नरक, गर्भवास, तिर्यग्योनि तथा कीट-योनिको नहीं प्राप्त होता। गङ्गा, गोदावरी और नर्मदा आदि जो-जो मुक्तिदायिनी नदियाँ हैं, वे सब-की-सब शालग्राम-शिलाके जलमें निवास करती हैं। शालग्राम-शिलाके लिङ्गका एक बार भी पूजन करनेपर ज्ञानसे रहित मनुष्य भी मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। जहाँ शालग्राम-शिलारूपी भगवान् केशव विराजमान रहते हैं, वहाँ सम्पूर्ण देवता, यज्ञ एवं चौदह भुवनोंके प्राणी वर्तमान रहते हैं। जो मनुष्य शालग्राम-शिलाके निकट श्राद्ध करता है, उसके पितर सौ कल्पोंतक द्युलोकमें तृप्त रहते हैं। जहाँ शालग्राम-शिला रहती है, वहाँकी तीन योजन भूमि तीर्थस्वरूप मानी गयी है। वहाँ किये हुए दान और होम सब कोटिगुना अधिक फल देते हैं। जो एक बूँदके बराबर भी शालग्राम-शिलाका जल पी लेता है, उसे फिर माताके स्तनोंका दूध नहीं पीना पड़ता; वह मनुष्य भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है। जो शालग्राम-शिलाके चक्रका उत्तम दान देता है, उसने पर्वत, वन और काननोंसहित मानो समस्त भूमण्डलका दान कर दिया। जो मनुष्य शालग्राम-शिलाको बेचकर उसकी कीमत उगाहता है, वह विक्रेता, उसकी बिक्रीका अनुमोदन करनेवाला तथा उसकी परख करते समय अधिक प्रसन्न होनेवाला—ये सभी नरकमें जाते हैं और जबतक सम्पूर्ण भूतोंका प्रलय नहीं हो जाता, तबतक वहाँ बने रहते हैं।

वैश्य ! अधिक कहनेसे क्या लाभ ? पापसे डरनेवाले मनुष्यको सदा भगवान् वासुदेवका स्मरण करना चाहिये। श्रीहरिका स्मरण समस्त पापोंको हरनेवाला है। मनुष्य वनमें रहकर अपनी इन्द्रियोंका संयम करते हुए घोर तपस्या करके जिस फलको प्राप्त

करता है वह भगवान् विष्णुको नमस्कार करनेसे ही मिल जाता है।* मनुष्य मोहके वशीभूत होकर अनेकों पाप करके भी यदि सर्वपापहारी श्रीहरिके चरणोंमें मस्तक झुकाता है तो वह नरकमें नहीं जाता। भगवान् विष्णुके नामोंका संकीर्तन करनेसे मनुष्य भूमण्डलके समस्त तीर्थों और पुण्यस्थानोंके सेवनका पुण्य प्राप्त कर लेता है। जो शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले भगवान् विष्णुकी शरणमें जा चुके हैं, वे शरणागत मनुष्य न तो यमराजके लोकमें जाते हैं और न नरकमें ही निवास करते हैं।

वैश्य ! जो वैष्णव पुरुष शिवकी निन्दा करता है, वह विष्णुके लोकमें नहीं जाता; उसे महान् नरकमें गिरना पड़ता है। जो मनुष्य प्रसङ्गवश किसी भी एकादशीको उपवास कर लेता है, वह यमयातनामें नहीं पड़ता—यह बात हमने महर्षि लोमशके मुखसे सुनी है। एकादशीसे बढ़कर पावन तीनों लोकोंमें दूसरा कुछ भी नहीं है। एकादशी और द्वादशी—दोनों ही भगवान् विष्णुके दिन हैं और समस्त पातकोंका नाश करनेवाले हैं। इस शरीरमें तभीतक पाप निवास करते हैं, जबतक प्राणी भगवान् विष्णुके शुभ दिन एकादशीको उपवास नहीं करता। हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ एकादशीके उपवासकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं। मनुष्य अपनी ग्यारहों इन्द्रियोंसे जो पाप किये होता है, वह सब एकादशीके अनुष्ठानसे नष्ट हो जाता है। एकादशी व्रतके समान दूसरा कोई पुण्य इस संसारमें नहीं है। यह एकादशी शरीरको नीरोग बनानेवाली और स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली है। वैश्य ! एकादशीको दिनमें उपवास और रातमें जागरण करके मनुष्य पितृकुल, मातृकुल तथा पलीकुलकी दस-दस पूर्व पीढ़ियोंका निश्चय ही उद्धार कर देता है।

मन, वाणी, शरीर तथा क्रियाद्वारा किसी भी

* बहुतोंके कि वैश्य कर्तव्यं पापभीरुणा। स्मरणं वासुदेवस्य सर्वपापहरं हरे: ॥
तपसाप्त्वा नरे घोरमरण्ये नियतेन्द्रियः। यत्कलं समवाप्नोति तत्रत्वा गरुडध्वजम् ॥

प्राणीके साथ द्रोह न करना, इन्द्रियोंको रोकना, दान देना, श्रीहरिकी सेवा करना तथा वर्णों और आश्रमोंके कर्तव्योंका सदा विधिपूर्वक पालन करना—ये दिव्य गतिको प्राप्त करनेवाले कर्म हैं। वैश्य ! स्वर्गार्थी मनुष्यको अपने तप और दानका अपने ही मुँहसे बखान नहीं करना चाहिये; जैसी शक्ति हो उसके अनुसार अपने हितकी इच्छासे दान अवश्य करते रहना चाहिये। दिग्द पुरुषको भी पत्र, फल, मूल तथा जल आदि देकर अपना प्रत्येक दिन सफल बनाना चाहिये। अधिक क्या कहा जाय, मनुष्य सदा और सर्वत्र अधर्म करनेसे दुर्गतिको प्राप्त होते हैं और धर्मसे स्वर्गको जाते हैं। इसलिये बाल्यावस्थासे ही धर्मका संचय करना उचित है। वैश्य ! ये सब बातें हमने तुम्हें बता दीं, अब और क्या सुनना चाहते हो ?

वैश्य बोला—सौम्य ! आपकी बात सुनकर मेरा चित्त प्रसन्न हो गया। गङ्गाजीका जल और सत्पुरुषोंका वचन—ये शीघ्र ही पाप नष्ट करनेवाले हैं। दूसरोंका उपकार करना और प्रिय वचन बोलना—यह साधु पुरुषोंका स्वाभाविक गुण है। अतः देवदूत ! आप कृपा करके मुझे यह बताइये कि मेरे भाईका नरकसे तत्काल उद्धार कैसे हो सकता है ?

देवदूतने कहा—वैश्य ! तुमने पूर्ववर्ती आठवें जन्ममें जिस पुण्यका संचय किया है, वह सब अपने भाईको दे डाले। यदि तुम चाहते हो कि उसे भी स्वर्गकी प्राप्ति हो जाय तो तुम्हें यही करना चाहिये।

विकुण्ठलने पूछा—देवदूत ! वह पुण्य क्या है ? कैसे हुआ ? मेरे प्राचीन जन्मका परिचय क्या है ? ये सब बातें बताइये; फिर मैं शीघ्र ही वह पुण्य भाईको अर्पण कर दूँगा।

देवदूतने कहा—पूर्वकालकी बात है, पुण्यमय मधुवनमें एक ऋषि रहते थे, जिनका नाम शाकुनि था, वे तपस्या और स्वाध्यायमें लगे रहते थे और तेजमें ब्रह्माजीके समान थे। उनके रेवती नामकी पलीके गर्भसे नौ पुत्र उत्पन्न हुए, जो नवग्रहोंके समान शक्तिशाली थे। उनमेंसे ध्रुव, शाली, बुध, तार और ज्योतिष्मान्—ये

पाँच पुत्र अग्निहोत्री हुए। उनका मन गृहस्थधर्मके अनुष्ठानमें लगता था। शेष चार ब्राह्मण-कुमार—जो निर्मोह, जितकाम, ध्यानकाष्ठ और गुपाधिकके नामसे प्रसिद्ध थे—धरकी ओरसे विरक्त हो गये। वे सब सम्पूर्ण भोगोंसे निःस्पृह हो चतुर्थ-आश्रम—संन्यासमें प्रविष्ट हुए। वे सब-के-सब आसक्ति और परिग्रहसे शून्य थे। उनमें आकाश्वा और आरम्भका अभाव था। वे मिट्टीके ढेले, पत्थर और सुवर्णमें समान भाव रखते थे। जिस किसी भी वस्तुसे अपना शरीर ढक लेते थे। जो कुछ भी खाकर पेट भर लेते थे। जहाँ साँझ हुई, वहीं ठहर जाते थे। वे नित्य भगवान्का ध्यान किया करते थे। उन्होंने निद्रा और आहारको जीत लिया था। वे बात और शीतका कष्ट सहन करनेमें पूर्ण समर्थ थे तथा समस्त चराचर जगत्को विष्णुरूप देखते हुए लीलापूर्वक पृथ्वीपर विचरते रहते थे। उन्होंने परस्पर मौनब्रत धारण कर लिया था। वे स्वल्प मात्रामें भी कभी किसी क्रियाका अनुष्ठान नहीं करते थे। उन्हें तत्त्वज्ञानका साक्षात्कार हो गया था। उनके सारे संशय दूर हो चुके थे और वे चिन्मय तत्त्वके विचारमें अत्यन्त प्रवीण थे।

वैश्य ! उन दिनों तुम अपने पूर्ववर्ती आठवें जन्ममें एक गृहस्थ ब्राह्मणके रूपमें थे। तुम्हारा निवास मध्यप्रदेशमें था। एक दिन उपर्युक्त चारों ब्राह्मण संन्यासी किसी प्रकार घूमते-घामते मध्याहके समय तुम्हारे घरपर आये। उस समय उन्हें भूख और प्यास सता रही थी। बलिवैश्वदेवके पश्चात् तुमने उन्हें अपने घरके आँगनमें उपस्थित देखा। उनपर दृष्टि पड़ते ही तुम्हारे नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। तुम्हारी वाणी गद्गद हो गयी, तुमने बड़े वेगसे दौड़कर उनके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फिर बड़े आदरभावके साथ दोनों हाथ जोड़कर मधुर वाणीसे उन सबका अभिनन्दन करते हुए कहा—महानुभाव ! आज मेरा जन्म और जीवन सफल हो गया। आज मुझपर भगवान् विष्णु प्रसन्न हैं। मैं सनाथ और पवित्र हो गया। आज मैं, मेरा घर तथा मेरे सभी कुटुम्बी धन्य हो गये। आज मेरे पितर धन्य हैं, मेरी गौँए धन्य हैं, मेरा शास्त्राध्ययन

तथा धन भी धन्य है; क्योंकि इस समय आपलोगोंके इन चरणोंका दर्शन हुआ, जो तीनों तापोंका विनाश करनेवाला है। भगवान् विष्णुकी भाँति आपलोगोंका दर्शन भी किसी धन्य व्यक्तिको ही होता है।'

इस प्रकार उनका पूजन करके तुमने अतिथियोंके पाँव पखारे और चरणोदक लेकर बड़ी श्रद्धाके साथ अपने मस्तकपर चढ़ाया। फिर चन्दन, फूल, अक्षत, धूप और दीप आदिके द्वारा भक्ति-भावके साथ उन यतियोंकी पूजा करके उन्हें उत्तम अन्न भोजन कराया। वे चारों परमहंस तृप्त होकर रातको तुम्हारे भवनमें विश्राम और सूर्य आदिके भी प्रकाशक परब्रह्मका ध्यान करते रहे। उनका आतिथ्य-सत्कार करनेसे जो पुण्य तुम्हें प्राप्त हुआ है, उसका एक हजार मुखोंसे भी वर्णन करनेमें मैं असमर्थ हूँ। भूतोंमें प्राणधारी श्रेष्ठ हैं, उनमें भी बुद्धिजीवी, बुद्धिजीवियोंमें भी मनुष्य और मनुष्योंमें भी ब्राह्मण श्रेष्ठ है। ब्राह्मणोंमें विद्वान्, विद्वानोंमें पवित्र बुद्धिवाले पुरुष, उनमें भी कर्म करनेवाले व्यक्ति तथा उनमें भी ब्रह्मज्ञानी पुरुष सबसे श्रेष्ठ हैं। इस प्रकार ब्रह्मज्ञानी तीनों लोकोंमें सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं, अतः सबके परमपूज्य है। उनका सङ्ग महान् पातकोंका नाश

करनेवाला है। यदि कभी किसी गृहस्थके घरपर ब्रह्मज्ञानी महात्मा आकर संतोषपूर्वक विश्राम करें तो वे उसके जन्मभरके पापोंका अपने दृष्टिपातमात्रसे नाश कर डालते हैं।* एक रात गृहस्थके घरपर विश्राम करनेवाला संन्यासी उसके जीवनभरके सारे पापोंको भस्म कर देता है। वैश्य ! वही पुण्य तुम अपने भाईको दे दो, जिसके द्वारा उसका नरकसे उद्धार हो जाय।

देवदूतकी यह बात सुनकर विकुण्ठलने तत्काल ही वह पुण्य अपने भाईको दे दिया। तब उसका भाई भी प्रसन्न होकर नरकसे निकल आया। फिर तो देवताओंने उन दोनोंपर पुष्पोंकी वृष्टि करते हुए उनका पूजन किया तथा वे दोनों भाई स्वर्गलोकमें चले गये। तदनन्तर दोनोंसे सम्मानित होकर देवदूत यमलोकमें लौट आया।

नारदजी कहते हैं—राजन् ! देवदूतका वचन वेद-वाक्यके समान था, उसमें सम्पूर्ण लोकका ज्ञान भरा था, उसे वैश्यपुत्र विकुण्ठलने सुना और अपने किये हुए पुण्यका दान देकर अपने भाईको भी तार दिया। तत्पश्चात् वह भाईके साथ ही देवराज इन्द्रके श्रेष्ठ लोकमें गया। जो इस इतिहासको पढ़ेगा या सुनेगा, वह शोकरहित होकर सहस्र गोदानका फल प्राप्त करेगा।



सुगन्ध आदि तीर्थोंकी महिमा तथा काशीपुरीका माहात्म्य

नारदजी कहते हैं—राजेन्द्र ! तदनन्तर तीर्थयात्री पुरुष विश्वविश्वात् सुगन्ध नामक तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ सब पापोंसे चित्त शुद्ध हो जानेपर वह ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् रुद्रावर्त तीर्थमें जाय। वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। नश्रेष्ठ ! गङ्गा और सरस्वतीके सङ्गममें स्नान

करनेवाला पुरुष अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। वहाँ कर्णहृदमें स्नान और भगवान् शङ्करकी पूजा करके मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता। इसके बाद क्रमशः कुब्जाम्रक-तीर्थको प्रस्थान करना चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है और मनुष्य स्वर्गलोकमें जाता है। राजन् ! इसके बाद अरुन्धतीवटमें

* भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां मतिजीविनः ॥

मतिमत्सु नरः श्रेष्ठ नरेषु ब्रह्मज्ञातयः । ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ॥
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः । अत एव सुपूज्यास्ते तस्माश्रेष्ठा जगत्रये ॥

सर्वंगतिर्विश्वां श्रेष्ठ महापातकनाशिनी ॥

विश्रामता गृहिणो गेहे संतुष्टा ब्रह्मवेदिनः । आजन्मसंचितं पापं नाशयन्तीक्षणेन वै ॥

जाना चाहिये। वहाँ समुद्रके जलमें स्नान करके तीन फल पाता और स्वर्गलोकको जाता है। तदनन्तर ब्रह्मावर्त तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए एकाग्रचित्त हो स्नान करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और स्वर्गलोकमें जाता है। उसके बाद यमुनाप्रभव नामक तीर्थमें जाय। वहाँ यमुनाजलमें स्नान करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाकर ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। दर्वीसंक्रमण नामक तीर्थ तीनों लोकोंमें विख्यात है। वहाँ पहुँचकर स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञके फल और स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। भृगुतङ्ग-तीर्थमें जानेसे भी अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। वीरप्रमोक्ष नामक तीर्थकी यात्रा करके मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। कृत्तिका और मध्याके दुर्लभ तीर्थमें जाकर पुण्य करनेवाला पुरुष अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञोंका फल पाता है।

तत्पश्चात् सच्या-तीर्थमें जाकर जो परम उत्तम विद्या-तीर्थमें स्नान करता है, वह सम्पूर्ण विद्याओंमें पारंगत होता है। महाश्रम तीर्थ सब पापोंसे छुटकारा दिलानेवाला है। वहाँ रात्रिमें निवास करना चाहिये। जो मनुष्य वहाँ एक समय भी उपवास करता है, उसे उत्तम लोकोंमें निवास प्राप्त होता है। जो तीन दिनपर एक समय उपवास करते हुए एक मासतक महाश्रम-तीर्थमें निवास करता है, वह स्वयं तो भवसागरके पार हो ही जाता है, अपने आगे-पीछेकी दस-दस पीढ़ियोंको भी तार देता है। परमपवित्र देववन्दित महेश्वरका दर्शन करके मनुष्य सब कर्तव्योंसे उत्तरण हो जाता है। उसके बाद पितामहद्वारा सेवित वेतसिका-तीर्थके लिये प्रस्थान करे। वहाँ जानेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और परमगतिको प्राप्त होता है।

तत्पश्चात् ब्राह्मणिका-तीर्थमें जाकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए एकाग्रचित्त हो स्नानादि करनेसे मनुष्य कमलके समान रंगवाले विमानपर बैठकर ब्रह्मलोकको जाता है। उसके बाद द्विजोंद्वारा सेवित पुण्यमय नैमिष-तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ ब्रह्माजी देवताओंके साथ सदा

निवास करते हैं। नैमिष-तीर्थमें जानेकी इच्छा करनेवालेका ही आधा पाप नष्ट हो जाता है तथा उसमें प्रविष्ट हुआ मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। भारत ! धीर पुरुषको उचित है कि वह तीर्थ-सेवनमें तत्पर हो एक मासतक नैमिषारण्यमें निवास करे। भूमण्डलमें जितने तीर्थ हैं, वे सभी नैमिषारण्यमें विद्यमान रहते हैं। जो वहाँ स्नान करके नियमपूर्वक रहते हुए नियमानुकूल आहार ग्रहण करता है, वह मानव राजसूय यज्ञका फल पाता है। इतना ही नहीं, वह अपने कुलकी सात पीढ़ियोंतकको पवित्र कर देता है।

गङ्गोद्देश-तीर्थमें जाकर तीन राततक उपवास करनेवाला मनुष्य वाजपेय यज्ञका फल पाता और सदाके लिये ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। सरस्वतीके तटपर जाकर देवता और पितरोंका तर्पण करना चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष सारस्वत-लोकोंमें जाकर आनन्द भोगता है— इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। तत्पश्चात् बाहुदा नदीकी यात्रा करे। वहाँ एक रात निवास करनेवाला मनुष्य स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है और उसे देवसत्र नामक यज्ञका फल मिलता है। इसके बाद सरयू नदीके उत्तम तीर्थ गोप्रतार (गुप्तार) घाटपर जाना चाहिये। जो मनुष्य उस तीर्थमें स्नान करता है, वह सब प्राप्तोंसे शुद्ध होकर स्वर्गलोकमें पूजित होता है। कुरुनन्दन ! गोमती नदीके रामतीर्थमें स्नान करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और अपने कुलका उद्धार कर देता है। वहाँ शतसाहस्रक नामका तीर्थ है; जो वहाँ स्नान करके नियमसे रहता और नियमानुकूल भोजन करता है, उसे सहस्र गोदानोंका पुण्य-फल प्राप्त होता है। धर्मज्ञ युधिष्ठिर ! वहाँसे ऊर्ध्वस्थान नामक उत्तम तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँसे कोटितीर्थमें स्नान करके कार्तिकेयजीका पूजन करनेसे मनुष्यको सहस्र गोदानोंका फल मिलता है तथा वह तेजस्वी होता है। उसके बाद काशीमें जाकर भगवान् शंकरकी पूजा और कपिलाकुण्डमें स्नान करनेसे राजसूय यज्ञका फल प्राप्त होता है।

युधिष्ठिर बोले—मुने ! आपने काशीका माहात्म्य बहुत थोड़ेमें बताया है, उसे कुछ विस्तारके साथ कहिये।

नारदजीने कहा—राजन् ! मैं इस विषयमें एक संवाद सुनाऊँगा, जो वाराणसीके गुणोंसे सम्बन्ध रखनेवाला है। उस संवादके श्रवणमात्रसे मनुष्य ब्रह्म-हत्याके पापसे छुटकारा पा जाता है। पूर्वकालकी बात है, भगवान् शङ्कर मेरुगिरिके शिखरपर विराजमान थे तथा पार्वती देवी भी वहाँ दिव्य सिंहासनपर बैठी थीं। उन्होंने महादेवजीसे पूछा—‘भक्तोंके दुःख दूर करनेवाले देवाधिदेव ! मनुष्य शीघ्र ही आपका दर्शन कैसे पा सकता है ? समस्त प्राणियोंके हितके लिये यह बात मुझे बताइये ।’

भगवान् शिव बोले—देवि ! काशीपुरी मेरा परम गुह्यतम क्षेत्र है। वह सम्पूर्ण भूतोंको संसार-सागरसे पार उत्तरनेवाली है। वहाँ महात्मा पुरुष भक्तिपूर्वक मेरी भक्तिका आश्रय ले उत्तम नियमोंका पालन करते हुए निवास करते हैं। वह समस्त तीर्थों और सम्पूर्ण स्थानोंमें उत्तम है। इतना ही नहीं, अविमुक्त क्षेत्र मेरा परम ज्ञान है। वह समस्त ज्ञानोंमें उत्तम है। देवि ! यह वाराणसी सम्पूर्ण गोपनीय स्थानोंमें श्रेष्ठ तथा मुझे अत्यन्त प्रिय है। मेरे भक्त वहाँ जाते तथा मुझमें ही प्रवेश करते हैं। वाराणसीमें किया हुआ दान, जप, होम, यज्ञ, तपस्या, ध्यान, अध्ययन और ज्ञान—सब अक्षय होता है। पहलेके हजारों जन्मोंमें जो पाप संचित किया गया हो, वह सब अविमुक्त क्षेत्रमें प्रवेश करते ही नष्ट हो जाता है। वरानने । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसङ्कर, खीजाति, म्लेच्छ तथा अन्यान्य मिश्रित जातियोंके मनुष्य, चाण्डाल आदि, पापयोनिमें उत्पन्न जीव, कीड़े, चीटियाँ तथा अन्य पशु-पक्षी आदि जितने भी जीव हैं, वे सब समयानुसार अविमुक्त क्षेत्रमें मरनेपर मेरे अनुग्रहसे परम गतिको प्राप्त होते हैं। मोक्षको अत्यन्त दुर्लभ और संसारको अत्यन्त भयानक समझकर मनुष्यको काशीपुरीमें निवास करना चाहिये। जहाँ-तहाँ मरनेवालेको संसार-बन्धनसे छुड़ानेवाली सद्भूति तपस्यासे भी मिलनी कठिन है। [किन्तु वाराणसीपुरीमें बिना तपस्याके ही ऐसी गति अनायास प्राप्त हो जाती है ।] जो विद्वान् सैकड़ों विंशोंसे आहत होनेपर भी काशीपुरीमें

निवास करता है, वह उस परमपदको प्राप्त होता है जहाँ जानेपर शोकसे पिण्ड छूट जाता है। काशीपुरीमें रहनेवाले जीव जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्थासे रहित परमधामको प्राप्त होते हैं। उन्हें वही गति प्राप्त होती है, जो पुनः मृत्युके बन्धनमें न आनेवाले मोक्षाभिलाषी पुरुषोंको मिलती है तथा जिसे पाकर जीव कृतार्थ हो जाता है। अविमुक्त क्षेत्रमें जो उत्कृष्ट गति प्राप्त होती है वह अन्यत्र दान, तपस्या, यज्ञ और विद्यासे भी नहीं मिल सकती। जो चाण्डाल आदि धृणित जातियोंमें उत्पन्न हैं तथा जिनकी देह विशिष्ट पातकों और पापोंसे परिपूर्ण हैं, उन सबकी शुद्धिके लिये विद्वान् पुरुष अविमुक्त क्षेत्रको ही श्रेष्ठ औषध मानते हैं। अविमुक्त क्षेत्र परम ज्ञान है, अविमुक्त क्षेत्र परम पद है, अविमुक्त क्षेत्र परम तत्त्व है और अविमुक्त क्षेत्र परम शिव—परम कल्याणमय है। जो मरणपर्यन्त रहनेका नियम लेकर अविमुक्त क्षेत्रमें निवास करते हैं, उन्हें अन्तमें मैं परमज्ञान एवं परमपद प्रदान करता हूँ। वाराणसीपुरीमें प्रवेश करके बहनेवाली त्रिपथगामिनी गङ्गा विशेषरूपसे सैकड़ों जन्मोंका पाप नष्ट कर देती है। अन्यत्र गङ्गाजीका स्नान, श्राद्ध, दान, तप, जप और व्रत सुलभ हैं; किन्तु वाराणसीपुरीमें रहते हुए इन सबका अवसर मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। वाराणसीपुरीमें निवास करनेवाला मनुष्य जप, होम, दान एवं देवताओंका नित्यप्रति पूजन करनेका तथा निरन्तर वायु पीकर रहनेका फल प्राप्त कर लेता है। पापी, शठ और अधार्मिक मनुष्य भी यदि वाराणसीमें चला जाय तो वह अपने समूचे कुलको पवित्र कर देता है। जो वाराणसीपुरीमें मेरी पूजा और सुति करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। देवदेवेश्वरि ! जो मेरे भक्तजन वाराणसीपुरीमें निवास करते हैं, वे एक ही जन्ममें परम मोक्षको पा जाते हैं। परमानन्दकी इच्छा रखनेवाले ज्ञाननिष्ठ पुरुषोंके लिये शास्त्रोंमें जो गति प्रसिद्ध है, वही अविमुक्त क्षेत्रमें मरनेवालेको प्राप्त हो जाती है। अविमुक्त क्षेत्रमें देहावसान होनेपर साक्षात् परमेश्वर मैं स्वयं ही जीवको तारक ब्रह्म (राम-नाम) का उपदेश करता हूँ। वरणा और असी नदियोंके बीचमें वाराणसीपुरी

स्थित है तथा उस पुरीमें ही नित्य-विमुक्त तत्त्वकी स्थिति है। वाराणसीसे उत्तम दूसरा कोई स्थान न हुआ है और न होगा। जहाँ स्वयं भगवान् नारायण और देवेश्वर मैं विराजमान हूँ। देवि ! जो महापातकी है तथा जो उनसे भी बढ़कर पापाचारी हैं, वे सभी वाराणसीपुरीमें जानेसे परमगतिको प्राप्त होते हैं। इसलिये मुमुक्षु पुरुषको मृत्युपर्यन्त नियमपूर्वक वाराणसीपुरीमें निवास करना चाहिये। वहाँ मुझसे ज्ञान पाकर वह मुक्त हो जाता है। * किन्तु जिसका चित्त पापसे दूषित होगा, उसके सामने नाना प्रकारके विघ्न उपस्थित होंगे। अतः मन, वाणी

और शरीरके द्वारा कभी पाप नहीं करना चाहिये ।

नारदजी कहते हैं—राजन् ! जैसे देवताओंमें पुरुषोत्तम नारायण श्रेष्ठ हैं, जिस प्रकार ईश्वरोंमें महादेवजी श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार समस्त तीर्थस्थानोंमें यह काशीपुरी उत्तम है। जो लोग सदा इस पुरीका स्मरण और नामोच्चारण करते हैं, उनका इस जन्म और पूर्वजन्मका भी सारा पातक तत्काल नष्ट हो जाता है; इसलिये योगी हो या योगरहित, महान् पुण्यात्मा हो अथवा पापी—प्रत्येक मनुष्यको पूर्ण प्रयत्न करके वाराणसीपुरीमें निवास करना चाहिये।

पिशाचमोचन कुण्ड एवं कपर्दीश्वरका महात्म्य—पिशाच तथा शङ्कुकर्ण मुनिके मुक्त होनेकी कथा और गया आदि तीर्थोंकी महिमा

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! वाराणसीपुरीमें
कपर्दीश्वरके नामसे प्रसिद्ध एक शिवलिङ्ग है, जो
अविनाशी माना गया है। वहाँ स्नान करके पितरोंका
विधिवत् तर्पण करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो
जाता है तथा भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है।
काशीपुरीमें निवास करनेवाले पुरुषोंके काम, क्रोध आदि
दोष तथा सम्पूर्ण विघ्न कपर्दीश्वरके पूजनसे नष्ट हो जाते
हैं। इसलिये परम उत्तम कपर्दीश्वरका सदैव दर्शन करना
चाहिये। यत्पूर्वक उनका पूजन तथा वेदोक्त स्तोत्रों-
द्वारा उनका स्तवन भी करना चाहिये। कपर्दीश्वरके
स्थानमें नियमपूर्वक ध्यान लगानेवाले शान्तचित्त
योगियोंको छः मासमें ही योगसिद्धि प्राप्त होती है—
इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। पिशाचमोचन कुण्डमें
नहाकर कपर्दीश्वरके पूजनसे मनुष्यके ब्रह्महत्या आदि
पाप नष्ट हो जाते हैं।

पूर्वकालकी बात है, कपर्दीश्वर क्षेत्रमें उत्तम व्रतका पालन करनेवाले एक तपस्वी ब्राह्मण रहते थे। उनका नाम था—शङ्कुर्क्ण। वे प्रतिदिन भगवान् शङ्करका पूजन, रुद्रका पाठ तथा निरन्तर ब्रह्मस्वरूप प्रणवका जप करते थे। उनका चित्त योगमें लगा हुआ था। वे मरणपर्यन्त काशीमें रहनेका नियम लेकर पुष्प, धूप आदि उपचार, स्तोत्र, नमस्कार और परिक्रमा आदिके द्वारा भगवान् कपर्दीश्वरकी आराधना करते थे। एक दिन उन्होंने देखा, एक भूखा प्रेत सामने आकर खड़ा है। उसे देख मुनिश्रेष्ठ शङ्कुर्क्णको बड़ी दया आयी। उन्होंने पूछा—‘तुम कौन हो ? और किस देशसे यहाँ आये हो ?’ पिशाच भूखसे पीड़ित हो रहा था। उसने शङ्कुर्क्णसे कहा—‘मुने ! मैं पूर्वजन्ममें धन-धान्यसे सम्पन्न ब्राह्मण था। मेरा घर पुत्र-पौत्रादिसे भरा था। किन्तु मैंने केवल कुटुम्बके भरण-पोषणमें आसत्त

* यत्र साक्षान्महादेवो देहान्ते स्वयमीश्वरः । व्याचष्टे तारकं ब्रह्म तत्रैव ह्यविमुक्तके ॥
 वरणायास्तथा चास्या मध्ये वाराणसी पुरी । तत्रैव संस्थितं तत्वं नित्यमेवं विमुक्तकम् ॥
 वाराणस्याः परं स्थानं न भूतं न भविष्यति । यत्र नारायणो देवो महादेवो दिवीश्वरः ॥
 महापातकिनो देवि ये तेष्यः पापकृत्तमाः । वाराणसीं समासाद्य ते यान्ति परमां गतिम् ॥
 तस्मान्मुक्षुर्नियतो वसेद्दै मरणान्तकम् । वाराणस्यां महादेवाञ्जनं लब्ध्वा विमुच्यते ॥

रहनेके कारण कभी देवताओं, गौओं तथा अतिथियोंका पूजन नहीं किया। कभी थोड़ा-बहुत भी पुण्यका कार्य नहीं किया। अतः इस समय भूख-प्याससे व्याकुल होनेके कारण मैं हिताहितका ज्ञान खो बैठा हूँ। प्रभो! यदि आप मेरे उद्धारका कोई उपाय जानते हों तो कीजिये। आपको नमस्कार है। मैं आपकी शरणमें आया हूँ।'

शङ्कुकर्णने कहा—तुम शीघ्र ही एकाग्रचित्त होकर इस कुण्डमें स्नान करो, इससे शीघ्र ही इस घृणित योनिसे छुटकारा पा जाओगे।

दयालु मुनिके इस प्रकार कहनेपर पिशाचने त्रिनेत्रधारी देववर भगवान् कपर्दीश्वरका स्मरण किया और चित्तको एकाग्र करके उस कुण्डमें गोता लगाया। मुनिके समीप गोता लगाते ही उसने पिशाचका शरीर त्याग दिया। भगवान् शिवकी कृपासे उसे तत्काल बोध प्राप्त हुआ और मुनीश्वरोंका समुदाय उसकी स्तुति करने लगा। तत्पश्चात् जहाँ भगवान् शङ्कर विराजते हैं, उस त्रयीमय श्रेष्ठ धाममें वह प्रवेश कर गया। पिशाचको इस प्रकार मुक्त हुआ देख मुनिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने मन-ही-मन भगवान् महेश्वरका चिन्तन करके कपर्दीश्वरको प्रणाम किया तथा उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—'भगवन्! आप जटा-जूट धारण करनेके कारण कपर्दी कहलाते हैं; आप परात्पर, सबके रक्षक, एक—अद्वितीय, पुराण-पुरुष, योगेश्वर, ईश्वर, आदित्य और अग्निरूप तथा कपिल वर्णके वृषभ नन्दीश्वरपर आरूढ़ हैं; मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप सबके हृदयमें स्थित सारभूत ब्रह्म हैं, हिरण्यमय पुरुष हैं, योगी हैं तथा सबके आदि और अन्त हैं। आप 'रु'—दुःखको दूर करनेवाले हैं, अतः आपको रुद्र कहते हैं; आप आकाशमें व्यापकरूपसे स्थित, महामुनि, ब्रह्मस्वरूप एवं परम पवित्र हैं; मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप सहस्रों चरण, सहस्रों नेत्र तथा सहस्रों मस्तकोंसे युक्त हैं; आपके सहस्रों रूप हैं, आप अन्धकरसे परे और वेदोंकी भी पहुँचके बाहर हैं, कल्याणोत्पादक होनेसे आपको 'शम्भु' कहते हैं, आप

हिरण्यगर्भ आदि देवताओंके स्वामी तथा तीन नेत्रोंसे सुशोभित हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। जिनमें इस जगत्की उत्पत्ति और लय होते हैं, जिन शिवस्वरूप परमात्माने इस समस्त दृश्य-प्रपञ्चको व्याप्त कर रखा है तथा जो वेदोंकी सीमासे भी परे हैं, उन भगवान् शङ्करको प्रणाम करके मैं सदाके लिये उनकी शरणमें आ पड़ा हूँ। जो लिङ्गरहित (किसीकी पहचानमें न आनेवाले) आलोकशून्य (जिन्हें कोई प्रकाशित नहीं कर सकता—जो स्वयंप्रकाश हैं), स्वयंप्रभु, चेतनाके स्वामी, एकरूप तथा ब्रह्माजीसे भी उत्कृष्ट परमेश्वर हैं; जिनके सिवा दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं तथा जो वेदसे भी परे हैं, उन्हीं आप भगवान् कपर्दीश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। सबीज समाधिका त्याग करके निर्बीज समाधिको सिद्ध कर परमात्मरूप हुए योगीजन जिसका साक्षात्कार करते हैं और जो वेदसे भी परे है, वह आपका ही स्वरूप है; मैं आपको सदा प्रणाम करता हूँ। जहाँ नाम आदि विशेषणोंकी कल्पना नहीं है, जिनका स्वरूप इन चर्म-चक्षुओंका विषय नहीं होता तथा जो स्वयम्भू—कारणहीन तथा वेदसे परे हैं, उन्हीं आप भगवान् शिवकी मैं शरणमें हूँ और सदा आपको प्रणाम करता हूँ। जो देहसे रहित, ब्रह्म (व्यापक), विज्ञानमय, भेदशून्य, और एक—अद्वितीय है; तथापि वेदवादमें आसक्त मनुष्य जिसमें अनेकता देखते हैं, उस आपके वेदातीत स्वरूपको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ। जिससे प्रकृतिकी उत्पत्ति हुई है, स्वयं पुराणपुरुष आप जिसे तेजके रूपमें धारण करते हैं, जिसे देवगण सदा नमस्कार करते हैं तथा जो आपकी ज्योतिमें सन्त्रिहित है, उस आपके स्वरूपभूत बृहत् कालको मैं नमस्कार करता हूँ। मैं सदाके लिये कार्त्तिकेयके स्वामीकी शरण जाता हूँ। स्थाणुका आश्रय लेता हूँ, कैलाश पर्वतपर शयन करनेवाले पुराणपुरुष शिवकी शरणमें पड़ा हूँ। भगवन्! आप कष्ट हरनेके कारण 'हर' कहलाते हैं, आपके मस्तकमें चन्द्रमाका मुकुट शोभा पा रहा है तथा आप पिनाक नामसे प्रसिद्ध धनुष धारण करनेवाले हैं; मैं

आपकी शरण ग्रहण करता हूँ।*

इस प्रकार भगवान् कपर्दीकी स्तुति करके शङ्कुकर्ण प्रणवका उच्चारण करते हुए पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़ गये। उसी समय शिवस्वरूप उत्कृष्ट लिङ्गका प्रादुर्भाव हुआ, जो ज्ञानमय तथा अनन्त आनन्दस्वरूप था। आगकी भाँति उससे करोड़ों लपटें निकल रही थीं। महात्मा शङ्कुकर्ण मुक्त होकर सर्वव्यापी निर्मल शिवस्वरूप हो गये और उस विमल लिङ्गमें समा गये। राजन्! यह मैंने तुम्हें कपर्दीका गूढ़ माहात्म्य बतलाया है। जो प्रतिदिन इस पापनाशिनी कथाका श्रवण करता है, वह निष्पाप एवं शुद्धचित्त होकर भगवान् शिवके समीप जाता है। जो प्रातःकाल और मध्याह्नके समय शुद्ध होकर सदा ब्रह्मपार नामक इस महास्तोत्रका पाठ करता है, उसे परम योगकी प्राप्ति होती है।

तदनन्तर गयामें जाकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए एकाग्रचित्त होकर स्नान करे। भारत! वहाँ जानेमात्रसे मनुष्यको अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। वहाँ अक्षयवट नामका वटवृक्ष है, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है। राजन्! वहाँ पितरोंके लिये जो पिण्डदान किया जाता है, वह अक्षय होता है। उसके बाद महानदीमें स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण करे। इससे मनुष्य अक्षय लोकोंको प्राप्त होता तथा अपने कुलका भी उद्धार कर देता है। तत्पश्चात् ब्रह्मारण्यमें स्थित ब्रह्मसरकी यात्रा करे। वहाँ जानेसे पुण्डरीक यज्ञका फल प्राप्त होता है।

राजेन्द्र! वहाँसे विश्वविख्यात धेनुक-तीर्थको प्रस्थान करे और वहाँ एक रात रहकर तिलकी धेनु दान करे। ऐसा करनेवाला पुरुष सब पापोंसे शुद्ध हो निश्चय ही सोमलोकमें जाता है। वहाँ बछड़ेसहित कपिला गौके पदचिह्न आज भी देखे जाते हैं। उन पदचिह्नोंमेंसे जल लेकर आचमन करनेसे जो कुछ घोर पाप होता है, वह नष्ट हो जाता है। वहाँसे गृध्रवटकी यात्रा करे। वह शूलधारी भगवान् शङ्करका स्थान है। वहाँ शङ्करजीका दर्शन करके भस्म-स्नान करे—सारे अङ्गोंमें भस्म लगाये। ऐसा करनेवाला यदि ब्राह्मण हो तो उसे बारह वर्षोंतक ब्रत करनेका फल प्राप्त होता है और अन्य वर्णके मनुष्योंका सारा पाप नष्ट हो जाता है। तत्पश्चात् उदय पर्वतपर जाय। वहाँ साक्षित्रीके चरणचिह्नोंका दर्शन होता है। उस तीर्थमें सञ्च्योपासन करना चाहिये। इससे एक ही समयमें बारह वर्षोंतक सञ्च्या करनेका फल प्राप्त होता है। तत्पश्चात् वहाँ योनिद्वारके पास जाय। वह विख्यात स्थान है। उसके पास जानेमात्रसे मनुष्य गर्भवासके कष्टसे छुटकारा पा जाता है। राजन्! जो मनुष्य शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षोंमें गयामें निवास करता है, वह अपने कुलकी सात पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

राजन्! तत्पश्चात् तीर्थसेवी मनुष्य फल्गु नदीके किनारे जाय। वहाँ जानेसे वह अश्वमेध यज्ञका फल पाता और परम सिद्धिको प्राप्त होता है। तदनन्तर एकाग्रचित्त हो धर्मपृष्ठकी यात्रा करे, जहाँ धर्मका

* कपर्दिनं त्वां परतः परस्ताद् गोप्तारमेकं पुरुषं पुण्यम्। ब्रजामि योगेश्वरमीशितारमादित्यमग्निं कपिलाधिरूपम्॥ त्वां ब्रह्मसारं हृदि संनिविष्टं हिरण्ययं योगिनमादिमन्त्रम्। ब्रजामि रुद्रं शरणं दिविष्टं महामुनि ब्रह्ममयं पवित्रम्॥ सहस्रपादाक्षिशिरोऽभियुक्तं सहस्ररूपं तमसः परस्तात्। तं ब्रह्मपारं प्रणमामि शश्मु हिरण्यगर्भादिपतिं त्रिनेत्रम्॥ यत्र प्रसूतिर्जगतो विनाशो येनावृतं सर्वमिदं शिवेन। तं ब्रह्मपारं भगवन्तमीशं प्रणम्य नित्यं शरणं प्रपद्ये॥ अलिङ्गमालोकविहीनरूपं स्वयंप्रभुं चित्पतिमेकरूपम्। तं ब्रह्मपारं परमेश्वरं त्वां नमस्करिष्ये न यतोऽन्यदस्ति॥ यं योगिनस्यक्तसबीजयोगा लब्ध्वा समाधिं परमात्मभूताः। पश्यन्ति देवं प्रणतोऽस्मि नित्यं तं ब्रह्मपारं भवतः स्वरूपम्॥ न यत्र नामादिविशेषशृङ्गिर्संदृशो तिष्ठति यत्करूपम्। तं ब्रह्मपारं प्रणतोऽस्मि नित्यं स्वयम्भुवं त्वां शरणं प्रपद्ये॥ यद् वेदवादाभिरता विदेहं सब्रह्मविज्ञानमभेदमेकम्। पश्यन्त्यनेकं भवतः स्वरूपं तं ब्रह्मपारं प्रणतोऽस्मि नित्यम्॥ यतः प्रधानं पुरुषः पुराणो विभर्ति तेजः प्रणमन्ति देवाः। नमामि तं ज्योतिषि संनिविष्टं कालं बृहन्तं भवतः स्वरूपम्॥ ब्रजामि नित्यं शरणं गुहेशं स्थाणुं प्रपद्ये गिरिशं पुण्यम्। शिवं प्रपद्ये हर्मिन्दुमौलिं पिनाकिनं त्वां शरणं ब्रजामि॥

नित्य-निवास है। वहाँ धर्मके समीप जानेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। वहाँसे ब्रह्माजीके उत्तम तीर्थको प्रस्थान करे और वहाँ पहुँचकर ब्रतका पालन करते हुए ब्रह्माजीकी पूजा करे। इससे राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंका फल मिलता है। इसके बाद मणिनाग-तीर्थमें जाय। वहाँ सहस्र गोदानोंका फल प्राप्त होता है। उस तीर्थमें एक रात निवास करनेपर सब पापोंसे छुटकारा मिल जाता है। इसके बाद ब्रह्मर्षि गौतमके वनमें जाय। वहाँ अहल्याकुण्डमें स्नान करनेसे परम गतिकी प्राप्ति होती है। उसके बाद राजर्षि जनकका कूप है, जो देवताओंद्वारा भी पूजित है। वहाँ स्नान करके मनुष्य विष्णुलोकको प्राप्त कर लेता है। वहाँसे विनाशन-तीर्थको जाय, जो सब पापोंसे मुक्त करनेवाला है। वहाँकी यात्रासे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और सोमलोकको जाता है। तत्पश्चात् सम्पूर्ण तीर्थोंके जलसे प्रकट हुई गण्डकी नदीकी यात्रा करे। वहाँ जानेसे मनुष्य वाजपेय यज्ञका फल पाता और सूर्यलोकको जाता है। धर्मज्ञ युधिष्ठिर ! वहाँसे ध्रुवके तपोवनमें प्रवेश करे। महाभाग ! वहाँ जानेसे मनुष्य यक्षलोकमें आनन्दका अनुभव करता है। तदनन्तर सिद्धसेवित कर्मदा नदीकी यात्रा करे। वहाँ जानेवाला मनुष्य पुण्डरीक यज्ञका फल पाता और सोमलोकको जाता है।

राजा युधिष्ठिर ! तत्पश्चात् माहेश्वरी धारके समीप जाना चाहिये। वहाँ यात्रीको अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है और वह अपने कुलका उद्घार कर देता है। देवपुष्करिणी-तीर्थमें जाकर स्नानसे पवित्र हुआ मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता और वाजपेय यज्ञका फल पाता है। इसके बाद ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए एकायच्चित हो माहेश्वर पदकी यात्रा करे। वहाँ स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। भरतश्रेष्ठ ! माहेश्वर पदमें एक करोड़ तीर्थ सुने गये हैं; उनमें स्नान करना चाहिये, इससे पुण्डरीक यज्ञके फल और विष्णुलोककी प्राप्ति होती है, तदनन्तर भगवान् नारायणके स्थानको जाना चाहिये, जहाँ सदा ही भगवान् श्रीहरि निवास करते हैं। ब्रह्मा आदि देवता, तपोधन ऋषि,

बारहों आदित्य, आठों वसु और ग्यारहों रुद्र वहाँ उपस्थित होकर भगवान् जनार्दनकी उपासना करते हैं। वहाँ अद्भुतकर्मा भगवान् विष्णुका विग्रह शालग्रामके नामसे विस्त्यात है, उस तीर्थमें अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले और भक्तोंको वर प्रदान करनेवाले त्रिलोकीपति श्रीविष्णुका दर्शन करनेसे मनुष्य विष्णुलोकको प्राप्त होता है। वहाँ एक कुआँ है, जो सब पापोंको हरनेवाला है। उसमें सदा चारों समुद्रोंके जल मौजूद रहते हैं। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता और अविनाशी एवं महान् देवता वरदायक विष्णुके पास पहुँचकर तीनों ऋणोंसे मुक्त हो चन्द्रमाकी भाँति शोभा पाता है। जातिस्मर-तीर्थमें स्नान करके पवित्र एवं शुद्धचित्त हुआ मनुष्य पूर्वजन्मके स्मरणकी शक्ति प्राप्त करता है। वटेश्वरपुरमें जाकर उपवासपूर्वक भगवान् केशवकी पूजा करनेसे मनुष्य मनोवाच्छित लोकोंको प्राप्त होता है। तत्पश्चात् सब पापोंसे छुटकारा दिलानेवाले वामन-तीर्थमें जाकर भगवान् श्रीहरिको प्रणाम करनेसे मनुष्य कभी दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता। भरतका आश्रम भी सब पापोंको दूर करनेवाला है। वहाँ जाकर महापातकनाशिनी कौशिकी (कोसी) नदीका सेवन करना चाहिये। ऐसा करनेवाला मानव राजसूय यज्ञका फल पाता है।

तदनन्तर परम उत्तम चम्पकारण्य (चम्पारन) की यात्रा करे। वहाँ एक रात उपवास करनेसे मनुष्य सहस्र गोदानोंका फल पाता है। तत्पश्चात् कन्यासंवेद्य नामक तीर्थमें जाकर नियमसे रहे और नियमानुकूल भोजन करे। इससे प्रजापति मनुके लोकोंकी प्राप्ति होती है। जो कन्यातीर्थमें थोड़ा-सा भी दान करते हैं, उनका वह दान अक्षय होता है। निष्ठावास नामक तीर्थमें जानेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और विष्णुलोकको जाता है। नरश्रेष्ठ ! जो मनुष्य निष्ठाके सङ्गममें दान करते हैं, वे रोग-शोकसे रहित ब्रह्मलोकमें जाते हैं। निष्ठा-सङ्गमपर महर्षि वसिष्ठका आश्रम है। देवकूट-तीर्थकी यात्रा करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और अपने कुलका उद्घार कर देता है। वहाँसे कौशिक मुनिके

कुण्डपर जाना चाहिये, जहाँ कुशिक गोत्रमें उत्पन्न महर्षि विश्वमित्रने परम सिद्धि प्राप्त की थी। भरतश्रेष्ठ ! वहाँ धीर पुरुषको कौशिकी नदीके तटपर एक मासतक निवास करना चाहिये। एक ही मासमें वहाँ अश्वमेध यज्ञका पुण्य प्राप्त हो जाता है। कालिका-सङ्घम एवं कौशिकी तथा अरुणाके सङ्घममें स्नान करके तीन राततक उपवास करनेवाला विद्वान् सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। सकृन्द्री नामक तीर्थमें जानेसे द्विज कृतार्थ हो जाता है तथा सब पापोंसे शुद्ध हो स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। मुनिजनसेवित औद्यानक-तीर्थमें जाकर स्नान करना चाहिये; इससे सब पाप छूट जाते हैं।

तदनन्तर चम्पापुरीमें जाकर गङ्गाजीके तटपर तर्पण करना चाहिये। वहाँसे दण्डार्पणमें जाकर मनुष्य सहस्र गोदानोंका फल प्राप्त करता है। तदनन्तर संध्यामें जाकर सद्विद्या नामक उत्तम तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य विद्वान् होता है। उसके बाद गङ्गा-सागर-संगममें स्नान करना चाहिये। इससे विद्वान् लोग दस अश्वमेध यज्ञोंके फलकी प्राप्ति बतलाते हैं। तत्पश्चात् पाप दूर करनेवाली वैतरणी नदीमें जाकर विरज-तीर्थमें स्नान करे; इससे मनुष्य चन्द्रमाकी भाँति शोभा पाता है। प्रभाव क्षेत्रके भीतर कुल नामक तीर्थमें जाकर मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है तथा सहस्र गोदानोंका फल पाकर अपने कुलका भी उद्धार कर देता है। सोन नदी और ज्योतिरथीके सङ्घमपर निवास करनेवाला पवित्र मनुष्य देवताओं और पितरोंका तर्पण करके अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त करता है। सोन और नर्मदाके उद्गम-स्थानपर वंशगुल्म-तीर्थमें आचमन करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। कोशलाके तटपर ऋषभ-तीर्थमें जाकर तीन रात उपवास करनेवाला मनुष्य अश्वमेध

यज्ञका फल पाता है। कोशलाके किनारे कालतीर्थमें जाकर स्नान करे तो ग्यारह बैल दान करनेका पुण्य प्राप्त होता है। पुष्पवतीमें स्नान करके तीन रात उपवास करनेवाला मनुष्य सहस्र गोदानोंका फल पाता और अपने कुलका भी उद्धार कर देता है। तदनन्तर जहाँ परशुरामजी निवास करते हैं, उस महेन्द्र पर्वतपर जाकर रामतीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। वहाँ मतङ्गका क्षेत्र है, जहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानोंका फल मिलता है। उसके बाद श्रीपर्वतपर जाकर नदीके किनारे स्नान करे। वहाँ देवहृदमें स्नान करनेसे मनुष्य पवित्र एवं शुद्धचित्त हो अश्वमेध यज्ञका फल पाता और परम सिद्धिको प्राप्त होता है। तदनन्तर कावेरी नदीकी यात्रा करे। वहाँ स्नान करके मनुष्य सहस्र गोदानोंका फल पाता है। वहाँसे आगे समुद्रके तटवर्ती तीर्थमें, जिसे कन्यातीर्थ कहते हैं, जाकर स्नान करे। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। तदनन्तर समुद्र-मध्यवर्ती गोकर्णतीर्थमें जा भगवान् शंकरकी पूजा करके तीन रात उपवास करनेवाला मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता और गणपति पदको प्राप्त होता है। बारह राततक वहाँ उपवास करनेवाला मनुष्य कृतार्थ हो जाता है—उसे कुछ भी पाना शेष नहीं रहता। उसी तीर्थमें गायत्री देवीका भी स्थान है, जहाँ तीन रात उपवास करनेवालेको सहस्र गोदानका फल मिलता है। तत्पश्चात् सदा सिद्धि पुरुषोद्धारा सेवित गोदावरीकी यात्रा करनेसे मनुष्य गवामय यज्ञका फल पाता और वायुलोकको जाता है। वेणाके सङ्घममें स्नान करनेसे वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है और वरदा-सङ्घममें नहानेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है।



ब्रह्मस्थूणा आदि तीर्थों तथा प्रयागकी महिमा; इस प्रसङ्गके पाठका माहात्म्य

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! ब्रह्मस्थूणा नामक तीर्थमें जाकर तीन रातक उपवास करनेवाला मनुष्य सहस्र गोदानोंका फल पाता और स्वर्गलोकको जाता है। कुञ्ज-वनमें जाकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए एकाग्रचित्त हो स्नान करके तीन रात उपवास करनेवालेको सहस्र गोदानोंका फल मिलता है। इसके बाद देवहृदमें जहाँसे कृष्णवेणा नदी निकलती है, स्नान करे। फिर ज्योतिर्मात्र (जातिमात्र) हृदमें तथा कन्याश्रममें स्नान करे। कन्याश्रममें जानेमात्रसे सौ अग्निष्टोम यज्ञोंका फल मिलता है। सर्वदेवहृदमें स्नान करनेसे सहस्र गोदानोंका फल प्राप्त होता है तथा जातिमात्र हृदमें नहानेसे मनुष्यको पूर्वजन्मका स्मरण हो जाता है। इसके बाद परम पुण्यमयी वाणी तथा नदियोंमें श्रेष्ठ पयोष्णी (मन्दाकिनी) में जाकर देवताओं तथा पितरोंका पूजन करनेवाला मनुष्य सहस्र गोदानोंका फल पाता है।

महाराज ! तदनन्तर, दण्डकारण्यमें जाकर गोदावरीमें स्नान करना चाहिये। वहाँ शरभङ्ग मुनि तथा महात्मा शुक्रके आश्रमकी यात्रा करनेसे मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता और अपने कुलको पवित्र कर देता है। तत्पश्चात् सप्तगोदावरीमें स्नान करके नियमोंका पालन करते हुए नियमानुकूल भोजन करनेवाला पुरुष महान् पुण्यको प्राप्त होता और देवलोकको जाता है। वहाँसे देवपथकी यात्रा करे। इससे मानव देवसत्रका पुण्य प्राप्त कर लेता है। तुङ्ककारण्यमें जाकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए जितेन्द्रिय भावसे रहे। युधिष्ठिर ! तुङ्ककारण्यमें प्रवेश करनेवाले पुरुष अथवा स्त्रीका सारा पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। धीर पुरुषको उचित है कि वह नियमोंका पालन तथा नियमानुकूल भोजन करते हुए एक मासतक वहाँ निवास करे। इससे वह ब्रह्मलोकको जाता और अपने कुलको भी पवित्र कर देता है। मेषा-वनमें जाकर देवताओं और पितरोंका तर्पण करना चाहिये। इससे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता तथा

स्मरणशक्ति और मेघाकी प्राप्ति होती है। वहाँ कालञ्जर-तीर्थमें जानेसे सहस्र गोदानोंका फल मिलता है।

महाराज ! तत्पश्चात् पर्वतश्रेष्ठ चित्रकूटपर मन्दाकिनी नदीकी यात्रा करे। वह सब पापोंको दूर करनेवाली है। उसमें स्नान करके देवताओं तथा पितरोंके पूजनमें तत्पर रहनेवाला मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और परम गतिको प्राप्त होता है। वहाँसे परम उत्तम भर्तृस्थान नामक तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ जानेमात्रसे ही मनुष्यको सिद्धि प्राप्त होती है। उस तीर्थकी प्रदक्षिणा करके शिवस्थानकी यात्रा करनी चाहिये। वहाँ एक विख्यात कूप है, जिसमें चारों समुद्रोंका निवास है। वहाँ स्नान करके उस कूपकी प्रदक्षिणा करे; इससे पवित्र हुआ जितात्मा पुरुष परम गतिको प्राप्त होता है। तदनन्तर, महान् शृङ्कवेरपुरकी यात्रा करे। वहाँ गङ्गामें स्नान करके ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए इन्द्रियोंको संयममें रखनेवाले पुरुषके पाप धुल जाते हैं और वह वाजपेय यज्ञका फल पाता है। वहाँसे परम बुद्धिमान् भगवान् शङ्करके मुञ्जवट नामक स्थानकी यात्रा करे। वहाँ जाकर महादेवजीकी पूजा और प्रदक्षिणा करनेसे मनुष्य गणपति-पदको प्राप्त होता है।

इसके बाद ऋषियोंद्वारा प्रशंसित प्रयागतीर्थकी यात्रा करे, जहाँ ब्रह्माजीके साथ साक्षात् भगवान् माधव विराजमान हैं। गङ्गा सब तीर्थोंके साथ प्रयागमें आयी है और वहाँ तीनों लोकोंमें विख्यात तथा सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करनेवाली सूर्यनन्दिनी यमुना गङ्गाजीके साथ मिली हैं। गङ्गा और यमुनाके बीचकी भूमि पृथ्वीका जघन (कटिसे नीचेका भाग) मानी गयी है। और प्रयाग जघनके बीचका उपस्थ भाग है, ऐसी ऋषियोंकी मान्यता है। वहाँ प्रयाग, उत्तम प्रतिष्ठानपुर (झूसी), कम्बल और अश्वतर नामक नागोंका स्थान, भोगवतीतीर्थ तथा प्रजापतिकी वेदी आदि पवित्र स्थान बताये गये हैं। वहाँ यज्ञ और वेद मूर्तिमान् होकर रहते हैं। प्रयागसे बढ़कर पवित्र तीर्थ तीनों लोकोंमें नहीं है। प्रयाग अपने प्रभावके

कारण सब तीर्थोंसे बढ़कर है। प्रयागतीर्थके नामको सुनने, कीर्तन करने तथा उसे मस्तक झुकानेसे भी मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो उत्तम ब्रतका पालन करते हुए वहाँ संगममें स्नान करता है, उसे महान् पुण्यकी प्राप्ति होती है; क्योंकि प्रयाग देवताओंकी भी यज्ञभूमि है। वहाँ थोड़ेसे दानका भी महान् फल होता है। कुरुनन्दन ! प्रयागमें साठ करोड़ और दस हजार तीर्थोंका निवास बताया गया है। चारों विद्याओंके अध्ययनसे जो पुण्य होता है तथा सत्यवादी पुरुषोंको जिस पुण्यकी प्राप्ति होती है, वह वहाँ गङ्गा-यमुना-संगममें स्नान करनेसे ही मिल जाता है। प्रयागमें भोगवती नामक उत्तम बावली है जो वासुकि नागका उत्तम स्थान माना गया है। जो वहाँ स्नान करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। वहाँ हंसप्रपतन तथा दशाश्वमेध नामक तीर्थ हैं। गङ्गामें कहीं भी स्नान करनेपर कुरुक्षेत्रमें स्नान करनेके समान पुण्य होता है।

गङ्गाजीका जल सारे पापोंको उसी प्रकार भस्म कर देता है, जैसे आग रुईके ढेरको जला डालती है। सत्ययुगमें सभी तीर्थ, त्रेतामें पुष्कर, द्वापरमें कुरुक्षेत्र तथा कलियुगमें गङ्गा ही सबसे पवित्र तीर्थ मानी गयी है। पुष्करमें तपस्या करे, महालयमें दान दे और भृगु-तुङ्गपर उपवास करे तो विशेष पुण्य होता है। किन्तु पुष्कर, कुरुक्षेत्र और गङ्गाके जलमें स्नान करनेमात्रसे प्राणी अपनी सात पहलेकी तथा सात पीछेकी पीढ़ियोंको भी तत्काल ही तार देता है। गङ्गाजी नाम लेनेमात्रसे पापोंको धो देती है, दर्शन करनेपर कल्याण प्रदान करती है तथा स्नान करने और जल पीनेपर सात पीढ़ियोंतकको पवित्र कर देती है। राजन् ! जबतक मनुष्यकी हड्डीका गङ्गाजलसे स्पर्श बना रहता है, तबतक वह पुरुष स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित रहता है। ब्रह्माजीका कथन है कि

गङ्गाके समान तीर्थ, श्रीविष्णुसे बढ़कर देवता तथा ब्राह्मणोंसे बढ़कर पूज्य कोई नहीं है। महाराज ! जहाँ गङ्गा बहती है, वहाँ उनके किनारेपर जो-जो देश और तपोवन होते हैं, उन्हें सिद्ध क्षेत्र समझना चाहिये।*

जो मनुष्य प्रतिदिन तीर्थोंके इस पुण्य-प्रसङ्गका श्रवण करता है, वह सदा पवित्र होकर स्वर्गलोकमें आनन्दका अनुभव करता है तथा उसे अनेकों जन्मोंकी बातें याद आ जाती हैं। जहाँकी यात्रा की जा सकती है और जहाँ जाना असम्भव है, उन सभी प्रकारके तीर्थोंका मैंने वर्णन किया है। यदि प्रत्यक्ष सम्भव न हो तो मानसिक इच्छाके द्वारा भी इन सभी तीर्थोंकी यात्रा करनी चाहिये। पुण्यकी इच्छा रखनेवाले देवोपम ऋषियोंने भी इन तीर्थोंका आश्रय लिया है।

वसिष्ठ मुनि बोले—राजा दिलीप ! तुम भी उपर्युक्त विधिके अनुसार मनको वशमें करके तीर्थोंकी यात्रा करो; क्योंकि पुण्य पुण्यसे ही बढ़ता है। पहलेके बने हुए कारणोंसे, आस्तिकतासे और श्रुतियोंको देखनेसे शिष्ट पुरुषोंके मार्गपर चलनेवाले सज्जनोंको उन तीर्थोंकी प्राप्ति होती है।

नारदजी कहते हैं—राजा युधिष्ठिर ! इस प्रकार दिलीपको तीर्थोंकी महिमा बताकर मुनि वसिष्ठ उनसे विदा ले प्रातःकाल प्रसन्न हृदयसे वहीं अन्तर्धान हो गये। राजा दिलीपने शास्त्रोंके तात्त्विक अर्थका ज्ञान हो जाने और वसिष्ठजीके कहनेसे सारी पृथ्वीपर तीर्थ-यात्राके लिये भ्रमण किया। महाभाग ! इस प्रकार सब पापोंसे छुड़नेवाली यह परमपुण्यमयी तीर्थयात्रा प्रतिष्ठानपुर (झूसी)में आकर प्रतिष्ठित—समाप्त होती है। जो मनुष्य इस विधिसे पृथ्वीकी परिक्रमा करेगा, वह मृत्युके पश्चात् सौ अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त करेगा, युधिष्ठिर ! तुम ऋषियोंको भी साथ ले जाओगे, इसलिये

* पुनाति कीर्तिता पापं दृष्टा भद्रं प्रयच्छति। अवगाढा च पीता च पुनात्यासप्तमं कुलम्॥

यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गायाः स्पृशते जलम्। तावत्स पुरुषो राजन् स्वर्गलोके महीयते॥

न गङ्गासदृशं तीर्थं न देवः केशवात्परः। ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति एवमाह पितामहः॥

यत्र गङ्गा महाराज स देशस्तत्पोवनम्। सिद्धक्षेत्रं च विजेयं गङ्गातीरसमाश्रितम्॥

तुम्हे औरेंकी अपेक्षा आठगुना फल होगा ।

सूतजी कहते हैं—समस्त तीर्थोंकि वर्णनसे सम्बन्ध रखनेवाले देवर्षि नारदके इस चरित्रिका जो सबेरे उठकर पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । नारदजीने यह भी कहा—‘राजन् ! वाल्मीकि, कश्यप, आत्रेय, कौण्डन्य, विश्वामित्र, गौतम ! असित, देवल, मार्कण्डेय, गालव, भरद्वाज-शिष्य उद्दालक मुनि, शौनक, पुत्रसहित महान् तपस्वी व्यास, मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा

और महातपस्वी जाबालि—इन सभी तपस्वी ऋषियोंकी तुम प्रतीक्षा करो तथा इन सबको साथ लेकर उपर्युक्त तीर्थोंकी यात्रा करो ।’ राजा युधिष्ठिरसे यों कहकर देवर्षि नारद उनसे विदा ले वहीं अन्तर्धान हो गये । तत्पश्चात् उत्तम व्रतका पालन करनेवाले धर्मात्मा युधिष्ठिरने बड़े आदरके साथ समस्त तीर्थोंकी यात्रा की । ऋषियो ! मेरी कही हुई इस तीर्थयात्राकी कथाका जो पाठ या श्रवण करता है, वह सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है ।

— ★ —

मार्कण्डेयजी तथा श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको प्रयागकी महिमा सुनाना

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! पापराशिका निवारण करनेके लिये तीर्थोंकी महिमाका श्रवण श्रेष्ठ है तथा तीर्थोंका सेवन भी प्रशस्त है । जो मनुष्य प्रतिदिन यह कहता है कि मैं तीर्थोंमें निवास करूँ और तीर्थोंमें स्नान करूँ, वह परमपदको प्राप्त होता है । तीर्थोंकी चर्चा करनेमात्रसे उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं; अतः तीर्थ धन्य हैं । तीर्थसेवी पुरुषोंके द्वारा जगत्कर्ता भगवान् नारायणका सेवन होता है । ब्राह्मण, तुलसी, पीपल, तीर्थसमुदाय तथा परमेश्वर श्रीविष्णु—ये सदा ही मनुष्योंके लिये सेव्य हैं ।* पीपल, तुलसी, गौ तथा सूर्यकी परिक्रमा करनेसे मनुष्य सब तीर्थोंका फल पाकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है ।† इसलिये विष्णवन् पुरुष निश्चय ही पुण्य-तीर्थोंका सेवन करे ।

ऋषि बोले—सूतजी ! हमने माहात्म्यसहित समस्त तीर्थोंका श्रवण किया; किन्तु आपने प्रयागकी महिमाको पहले थोड़ेमें बताया है, उसे हमलोग विस्तारके साथ सुनना चाहते हैं । अतः आप कृपापूर्वक उसका वर्णन कीजिये ।

सूतजी बोले—महर्षियो ! बड़े हर्षकी बात है । मैं अवश्य ही प्रयागकी महिमाका वर्णन करूँगा ।

पूर्वकालमें महाभारत-युद्ध समाप्त हो जानेपर जब कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरको अपना राज्य प्राप्त हो गया, उस समय मार्कण्डेयजीने पाप्हुकुमारसे प्रयागकी महिमाका जो वर्णन किया था, वही प्रसङ्ग मैं आपलोगोंको सुनाता हूँ । राज्य प्राप्त हो जानेपर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको बारंबार चिन्ता होने लगी । उन्होंने सोचा—‘राजा दुर्योधन ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका स्वामी था । उसने हमलोगोंको अनेकों बार कष्ट पहुँचाया । किन्तु अब वे सब-के-सब मौतके मुँहमें चले गये । भगवान् वासुदेवका आश्रय लेनेके कारण हम पाँच पाण्डव शेष रह गये हैं । द्रोणाचार्य, भीष्म, महाबली कर्ण, भ्राता और पुत्रोंसहित राजा दुर्योधन तथा अन्यान्य जितने वीर राजा मारे गये हैं उन सबके बिना यह राज्य, भोग अथवा जीवन लेकर क्या करना है । हाय ! धिक्कार है, इस सुखको; मेरे लिये यह प्रसङ्ग बड़ा कष्टदायक है ।’ यह विचारकर राजा व्याकुल हो उठे । वे उत्साहहीन होकर नीचे मुँह किये बैठे रहते थे । उन्हें बारंबार इस बातकी चिन्ता होने लगी कि ‘अब मैं किस योग, नियम एवं तीर्थका सेवन करूँ, जिससे महापातकोंकी राशिसे मुझे शीघ्र ही छुटकारा मिले । कौन-सा ऐसा तीर्थ है, जहाँ स्नान करके मनुष्य

* ब्राह्मणस्तुलसी चैव अश्वत्यस्तीर्थसंचयः । विष्णुश्च परमेशानः सेव्य एव नृष्टिः सदा ॥ (४० । ६)

† अश्वत्यस्तुलस्याश्च गवां सूर्यात् प्रदक्षिणात् । सर्वतीर्थफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते ॥ (४० । ९)

परम उत्तम विष्णुलोकको प्राप्त होता है ?' इस प्रकार सोचते हुए धर्मपुत्र युधिष्ठिर अत्यन्त विकल हो गये ।

उस समय महातपस्वी मार्कण्डेयजी काशीमें थे । उन्हें युधिष्ठिरकी अवस्थाका ज्ञान हो गया; इसलिये वे तुरंत ही हस्तिनापुरमें जा पहुँचे और राजमहलके द्वारपर खड़े हो गये । द्वारपालने जब उन्हें देखा तो शीघ्र ही महाराजके पास जाकर कहा—'राजन् ! मार्कण्डेय मुनि आपसे मिलनेके लिये आये हैं और द्वारपर खड़े हैं ।' यह



समाचार सुनते ही धर्मपुत्र युधिष्ठिर तुरंत राजद्वारपर आ पहुँचे और उनके शरणागत होकर बोले—'महामुने ! आपका स्वागत है । महाप्राज्ञ ! आपका स्वागत है । आज मेरा जन्म सफल हुआ । आज मेरा कुल पवित्र हो गया । आज आपका दर्शन होनेसे मेरे पितर तृप्त हो गये ।' यों कहकर युधिष्ठिरने मुनिको सिंहासनपर बिठाया और पैर धोकर पूजन-सामग्रियोंसे उनकी पूजा की । तब मार्कण्डेयजीने कहा—'राजन् ! तुम व्याकुल क्यों हो रहे हो ? मेरे सामने अपना मनोभाव प्रकट करो ।'

'युधिष्ठिर बोले—महामुने ! राज्यके लिये हमलोगोंकी ओरसे जो बर्ताव हुआ है, उस सारे

प्रसङ्गको जानकर ही आप यहाँ पधारे हैं [फिर आपसे क्या कहना है] ।

मार्कण्डेयजीने कहा—महाबाहो ! सुनो—जहाँ धर्मकी व्यवस्था है, उस शास्त्रमें संग्राममें युद्ध करनेवाले किसी भी बुद्धिमान् पुरुषके लिये पापकी बात नहीं देखी गयी है । फिर विशेषतः क्षत्रियके लिये जो राजधर्मके अनुसार युद्धमें प्रवृत्त हुआ है, पापकी आशङ्का कैसे हो सकती है । अतः इस बातको हृदयमें रखकर पापकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये । महाभाग युधिष्ठिर ! तुम तीर्थकी बात जानना चाहते हो तो सुनो—पुण्य-कर्म करनेवाले मनुष्योंके लिये प्रयागकी यात्रा करना सर्वश्रेष्ठ है ।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! मैं यह सुनना चाहता हूँ कि प्रयागकी यात्रा कैसे की जाती है, वहाँ कैसा पुण्य होता है, प्रयागमें जिनकी मृत्यु होती है, उनकी क्या गति होती है तथा जो वहाँ स्थान और निवास करते हैं, उन्हें किस फलकी प्राप्ति होती है । ये सब बातें बताइये । मेरे मनमें इन्हें सुननेके लिये बड़ी उत्कण्ठा है ।

मार्कण्डेयजीने कहा—वत्स ! पूर्वकालमें ऋषियों और ब्राह्मणोंके मुँहसे जो कुछ मैंने सुना है, वह प्रयागका फल तुम्हें बताता हूँ । प्रयागसे लेकर प्रतिष्ठानपुर (झूसी), तक धर्मकी हृदसे लेकर वासुकि-हृदतक तथा कम्बल और अश्वतर नागोंके स्थान एवं बहुमूलिक नामवाले नागोंका स्थान—यह सब प्रजापतिका क्षेत्र है, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है । वहाँ स्थान करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं और जिनकी वहाँ मृत्यु होती है, वे फिर जन्म नहीं लेते । प्रयागमें ब्रह्मा आदि देवता एकत्रित होकर प्राणियोंकी रक्षा करते हैं । वहाँ और भी बहुत-से तीर्थ हैं, जो सब पापोंको हरनेवाले तथा कल्याणकारी हैं । उनका कई सौ वर्षोंमें भी वर्णन नहीं किया जा सकता । स्वयं इन्द्र विशेषरूपसे प्रयागतीर्थकी रक्षा करते हैं तथा भगवान् विष्णु देवताओंके साथ प्रयागके सर्वमान्य मण्डलकी रक्षा करते हैं । हाथमें शूल लिये हुए भगवान् महेश्वर प्रतिदिन वहाँके वटवृक्ष (अक्षयवट) की रक्षा करते हैं तथा

देवता समूचे तीर्थस्थानकी रक्षामें रहते हैं। वह स्थान सब पापोंको हरनेवाला और शुभ है। जो प्रयागका स्मरण करता है, उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। उस तीर्थके दर्शन और नाम-कीर्तनसे तथा वहाँकी मिठ्ठी प्राप्त करनेसे भी मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। महाराज ! प्रयागमें पाँच कुण्ड हैं, जिनके बीचसे होकर गङ्गाजी बहती है। प्रयागमें प्रवेश करनेवाले मनुष्यका पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। जो मनुष्य सहस्रों योजन दूरसे भी गङ्गाजीका स्मरण करता है, वह पापाचारी होनेपर भी परमगतिको प्राप्त होता है। मनुष्य गङ्गाका नाम लेनेसे पापमुक्त होता है, दर्शन करनेसे कल्याणका दर्शन करता है तथा स्नान करने और जल पीनेसे अपने कुलकी सात पीढ़ियोंको पवित्र कर देता है। जो सत्यवादी, क्रोधजयी, अहिंसा-धर्ममें स्थित, धर्मानुगामी, तत्त्वज्ञ तथा गौ और ब्राह्मणोंके हितमें तत्पर होकर गङ्गा-यमुनाके बीचमें स्नान करता है, वह सारे पापोंसे छूट जाता है तथा मन-चीते समस्त भोगोंको पूर्णरूपसे प्राप्त कर लेता है।*

तत्पश्चात् सम्पूर्ण देवताओंसे रक्षित प्रयागमें जाकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए एक मासतक निवास करे और देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करे। इससे मनुष्य मनोवाञ्छित पदार्थोंको प्राप्त करता है। युधिष्ठिर ! प्रयागमें साक्षात् भगवान् महेश्वर सदा निवास करते हैं। वह परम पावन तीर्थ मनुष्योंके लिये दुर्लभ है। राजेन्द्र ! देवता, दानव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध और चारण वहाँ स्नान करके स्वर्गलोकमें जा सुख भोगते हैं।

प्रयागमें जानेवाला मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। मनुष्य अपने देशमें हो या वनमें, विदेशमें हो या घरमें, जो प्रयागका स्मरण करते हुए मृत्युको प्राप्त होता है, वह ब्रह्मलोकमें जाता है—यह श्रेष्ठ ऋषियोंका कथन है। जो मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा सत्यधर्ममें स्थित हो गङ्गा-यमुनाके

बीचकी भूमिमें दान देता है, वह सद्गतिको प्राप्त होता है। जो अपने कार्यके लिये या पितृकार्यके लिये अथवा देवताकी पूजाके लिये प्रयागमें सुवर्ण, मणि, मोती अथवा धान्यका दान ग्रहण करता है, उसका तीर्थ-सेवन व्यर्थ होता है; वह जबतक दूसरेका द्रव्य भोगता है, तबतक उसके तीर्थ-सेवनका कोई फल नहीं है।

अतः इस प्रकार तीर्थ अथवा पवित्र मन्दिरोंमें जाकर किसीसे कुछ ग्रहण न करे। कोई भी निमित्त हो, द्विजको प्रतिग्रहसे सावधान रहना चाहिये। प्रयागमें भूरी अथवा लाल रंगकी गायके, जो दूध देनेवाली हो, सींगोंको सोनेसे और खुरोंको चाँदीसे मढ़ा दे; फिर उसके गलेमें वस्त्र लपेटकर श्वेतवस्त्रधारी, शान्त धर्मज्ञ, वेदोंके पारगामी तथा साधु श्रोत्रिय ब्राह्मणको बुलाकर गङ्गा-यमुनाके संगममें वह गौ उसे विधिपूर्वक दान कर दे। साथ ही बहुमूल्य वस्त्र तथा नाना प्रकारके रत्न भी देने चाहिये। इससे उस गौके शरीरमें जितने रोएं होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक मनुष्य स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वह उस पुण्यकर्मके प्रभावसे भयङ्कर नरकका दर्शन नहीं करता। लाख गौओंकी अपेक्षा वहाँ एक ही दूध देनेवाली गौ देना उत्तम है। वह एक ही पुत्र, स्त्री तथा भूत्योंतकका उद्धार कर देती है। इसलिये सब दानोंमें गोदान ही सबसे बढ़कर है। महापातकके कारण मिलनेवाले दुर्गम, विषम तथा भयङ्कर नरकमें गौ ही मनुष्यकी रक्षा करती है। इसलिये ब्राह्मणको गोदान करना चाहिये।

कुरुश्रेष्ठ ! जो देवताओंके द्वारा सेवित प्रयागतीर्थमें बैल अथवा बैलगाड़ीपर चढ़कर जाता है, वह पुरुष गौओंका भयङ्कर क्रोध होनेपर घोर नरकमें निवास करता है तथा उसके पितर उसका दिया जलतक नहीं ग्रहण करते। जो ऐश्वर्यके लोभस अथवा मोहवश सवारीसे तीर्थयात्रा करता है, उसके तीर्थसेवनका कोई फल नहीं

* योजनानां सहस्रेषु गङ्गां स्मरति यो नरः। अपि दुष्कृतकर्मासौ लभते परमां गतिम्॥
कीर्तनामुच्यते पार्षदृष्टा भद्राणि पश्यति। अवगाह्य च पीत्वा च पुनात्यासप्तमं कुलम्॥
सत्यवादी जितक्रोधो अहिंसा परमां स्थितः। धर्मानुसारी तत्त्वं ज्ञानहिते रतः॥
गङ्गायमुनयोर्मध्ये स्नानो मुच्येत किल्बिषात्। मनसा चिन्तितान् कामान् सम्यक् प्राप्नोति पुष्कलान्॥ (४१ । १४—१७)

होता; इसलिये सवारीको त्याग देना चाहिये। जो गङ्गा-यमुनाके बीचमें ऋषियोंकी बतायी हुई विधि तथा अपनी सामर्थ्यके अनुसार कन्यादान करता है, वह उस कर्मके प्रभावसे यमराज तथा भयङ्कर नरकको नहीं देखता। जिस मनुष्यकी अक्षयवटके नीचे मृत्यु होती है, वह सब लोकोंको लाँघकर रुद्रलोकमें जाता है। वहाँ रुद्रका आश्रय लेकर बारह सूर्य तपते हैं और सारे जगत्को जला डालते हैं। परन्तु वटकी जड़ नहीं जला पाते। जब सूर्य, चन्द्रमा और वायुका विनाश हो जाता है और सारा जगत् एकार्णवमें मग्न दिखायी देता है, उस समय भगवान् विष्णु यहीं अक्षयवटपर शयन करते हैं। देवता, दानव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध और चारण—सभी गङ्गा-यमुनाके संगममें स्थित तीर्थका सेवन करते हैं। वहाँ ब्रह्मा आदि देवता, दिशाएँ, दिव्याल, लोकपाल, साध्य, पितर, सनत्कुमार आदि परमर्षि, अङ्गिरा आदि ब्रह्मर्षि, नाग, सुपर्ण (गरुड़) पक्षी, नदियाँ, समुद्र, पर्वत, विद्याधर तथा साक्षात् भगवान् विष्णु प्रजापतिको आगे रखकर निवास करते हैं। उस तीर्थका नाम सुनने, नाम लेने तथा वहाँकी मिट्टीका स्पर्श करनेसे भी मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। जो वहाँ कठोर ब्रतका पालन करते हुए संगममें स्नान करता है, वह राजसूय एवं अश्वमेध यज्ञोंके समान फल पाता है। योगयुक्त विद्वान् पुरुषको जिस गतिकी प्राप्ति होती है, वह गति गङ्गा और यमुनाके संगममें मृत्युको प्राप्त होनेवाले प्राणियोंकी भी होती है।

इस प्रकार परमपदके साधनभूत प्रयागतीर्थका दर्शन करके यमुनाके दक्षिण किनारे, जहाँ कम्बल और अश्वतर नागोंके स्थान हैं, जाना चाहिये। वहाँ स्नान और जलपान करनेसे मनुष्य सब पातकोंसे छुटकारा पा जाता है। वह परम बुद्धिमान् महादेवजीका स्थान है। वहाँकी यात्रा करनेसे मनुष्य अपने कुलकी दस पहलेकी और दस पीछेकी पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। जो मनुष्य वहाँ स्नान करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है तथा वह प्रलयकालतक स्वर्गलोकमें स्थान पाता है। भारत ! गङ्गाके पूर्वतटपर तीनों लोकोंमें विव्यात समुद्रकूप और प्रतिष्ठानपुर (झूसी) हैं। यदि कोई संपर्यगु १३ —

ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए क्रोधको जीतकर तीन रात वहाँ निवास करता है, तो वह सब पापोंसे शुद्ध होकर अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। प्रतिष्ठानसे उत्तर और भागीरथीसे पूर्व हंसप्रपतन नामक तीर्थ है, उसमें स्नान करनेमात्रसे मनुष्यको अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है तथा जबतक सूर्य और चन्द्रमाकी स्थिति है, तबतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

समीय अक्षयवटके नीचे ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय एवं योगयुक्त होकर उपवास करनेवाला मनुष्य ब्रह्मज्ञानको प्राप्त होता है। कोटितीर्थमें जाकर जिनकी मृत्यु होती है, वह करोड़ों वर्षतक स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। चारों वेदोंके अध्ययनसे जो पुण्य होता है, सत्य बोलनेसे जो फल होता है तथा अहिंसाके पालनसे जो धर्म होता है, वह दशाश्वमेध घाटकी यात्रा करनेसे ही प्राप्त हो जाता है। गङ्गामें जहाँ कहीं भी स्नान किया जाय, वे कुरुक्षेत्रके समान फल देनेवाली हैं; किन्तु जहाँ वे समुद्रसे मिली हैं, वहाँ उनका माहात्म्य कुरुक्षेत्रसे दसगुना है। महाभागा गङ्गा जहाँ कहीं भी बहती है, वहाँ बहुत-से तीर्थ और तपस्वी रहते हैं। उस स्थानको सिद्धक्षेत्र समझना चाहिये। इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। गङ्गा पृथ्वीपर मनुष्योंको, पातालमें नागोंको और स्वर्गमें देवताओंको तारती हैं; इसलिये वे त्रिपथगा कहलाती हैं। किसी भी जीवकी हड्डियाँ जितने समयतक गङ्गामें रहती हैं, उतने हजार वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। गङ्गा तीर्थोंमें श्रेष्ठ तीर्थ, नदियोंमें उत्तम नदी तथा सम्पूर्ण भूतों—महापातकियोंको भी मोक्ष देनेवाली है। गङ्गा सर्वत्र सुलभ है, केवल तीन स्थानोंमें वे दुर्लभ मानी गयी हैं—गङ्गाद्वार, प्रयाग तथा गङ्गा-सागर-सङ्गममें। वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्गको जाते हैं तथा जिनकी वहाँ मृत्यु होती है, वे फिर कभी जन्म नहीं लेते। जिनका चित्त पापसे दूषित है, ऐसे समस्त प्राणियों और मनुष्योंकी गङ्गाके सिवा अन्यत्र गति नहीं है। गङ्गाके सिवा दूसरी कोई गति है ही नहीं। भगवान् शंकरके मस्तकसे निकली हुई गङ्गा सब पापोंको हरनेवाली और शुभकारिणी हैं। वे पवित्रोंको भी पवित्र

करनेवाली और मङ्गलमय पदार्थोंके लिये भी मङ्गलकारिणी है।*

राजन् ! पुनः प्रयागका माहात्म्य सुनो, जिसे सुनकर मनुष्य सब पापोंसे निःसंदेह मुक्त हो जाता है। गङ्गाके उत्तर-तटपर मानस नामक तीर्थ है। वहाँ तीन रात उपवास करनेसे समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। मनुष्य गौ, भूमि और सुवर्णका दान करनेसे जिस फलको पाता है, वह उस तीर्थका बारंबार स्मरण करनेसे ही मिल जाता है। जो गङ्गामें मृत्युको प्राप्त होता है, वह मृत व्यक्ति स्वर्गमें जाता है। उसे नरक नहीं देखना पड़ता। माघ मासमें गङ्गा और यमुनाके संगमपर छाछठ हजार तीर्थोंका समागम होता है। विधिपूर्वक एक लाख गौओंका दान करनेसे जो फल मिलता है, वह माघ मासमें प्रयागके भीतर तीन दिन स्नान करनेसे ही प्राप्त हो जाता है। जो गङ्गा-यमुनाके बीचमें पञ्चाग्रिसेवनकी साधना करता है, वह किसी अङ्गसे हीन नहीं होता; उसका रोग दूर हो जाता है तथा उसकी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ सबल रहती हैं। इतना ही नहीं, उस मनुष्यके शरीरमें जितने रोमकूप होते हैं, उतने ही हजार वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यमुनाके उत्तर-तटपर और प्रयागके दक्षिण भागमें ऋणप्रमोचन नामक तीर्थ है, जो अत्यन्त श्रेष्ठ माना गया है। वहाँ एक रात निवास करनेसे मनुष्य समस्त ऋणोंसे मुक्त हो जाता है। उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है तथा वह सदाके लिये ऋणसे छूट जाता है। प्रयागका मण्डल पाँच योजन विस्तृत है, उसमें प्रवेश करनेवाले पुरुषको पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। जिस मनुष्यकी वहाँ मृत्यु होती है, वह अपनी पिछली सात पीढ़ियोंको और आगे आनेवाली चौदह पीढ़ियोंको तार देता है। महाराज ! यह

जानकर प्रयागके प्रति सदा श्रद्धा रखनी चाहिये। जिनका चित्त पापसे दूषित है, वे अश्रद्धालु पुरुष उस स्थानको—देवनिर्मित प्रयागको नहीं पा सकते।

राजन् ! अब मैं अत्यन्त गोपनीय रहस्यकी बात बताता हूँ, जो सब पापोंका नाश करनेवाली है; सुनो। जो प्रयागमें इन्द्रिय-संयमपूर्वक एक मासतक निवास करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है—ऐसा ब्रह्माजीका कथन है। वहाँ रहनेसे मनुष्य पवित्र, जितेन्द्रिय, अहिंसक और श्रद्धालु होकर सब पापोंसे छूट जाता और परमपदको प्राप्त होता है। वहाँ तीनों काल स्नान और भिक्षाका आहार करना चाहिये; इस प्रकार तीन महीनोंतक प्रयागका सेवन करनेसे वे मुक्त हो जाते हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। तत्त्वके ज्ञाता युधिष्ठिर ! तुम्हारी प्रसन्नताके लिये मैंने इस धर्मानुसारी सनातन गुहा रहस्यका वर्णन किया है।

युधिष्ठिर बोले—धर्मात्मन् ! आज मेरा जन्म सफल हुआ, आज मेरा कुल कृतार्थ हो गया। आज आपके दर्शनसे मैं प्रसन्न हूँ, अनुगृहीत हूँ तथा सब पातकोंसे मुक्त हो गया हूँ। महामुने ! यमुनामें स्नान करनेसे क्या पुण्य होता है, कौन-सा फल मिलता है ? ये सब बातें आप अपने प्रत्यक्ष अनुभव एवं श्रवणके आधारपर बताइये।

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन् ! सूर्य-कन्या यमुना देवी तीनों लोकोंमें विश्वात हैं। जिस हिमालयसे गङ्गा प्रकट हुई है, उसीसे यमुनाका भी आगमन हुआ है। सहस्रों योजन दूरसे भी नामोच्चारण करनेपर वे पापोंका नाश कर देती हैं। युधिष्ठिर ! यमुनामें नहाने, जल पीने और उनके नामका कीर्तन करनेसे मनुष्य पुण्यका भागी होकर कल्याणका दर्शन करता है।

* यावदस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति तस्य देहिनः। तावद्वर्षसहस्राणि तीर्थीनां तु परं तीर्थं नदीनामुत्तमा नदी। मोक्षदा सर्वगलोके महीयते ॥
सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा। गङ्गाद्वारे सर्वभूतानां महापातकिनामपि ॥
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुर्नर्भवाः। प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे ॥

सर्वेषां चैव भूतानां पापोपहतचेतसाम्। गतिरन्त्यत्र मर्त्यानां नास्ति गङ्गासमा गतिः ॥
पवित्राणां पवित्रं या मङ्गलानां च मङ्गलम्। महेश्वरशिरोभ्रष्टा सर्वपापहरा शुभा ॥(४३ । ५२—५६)

यमुनामें गोता लगाने और उनका जल पीनेसे कुलकी सात पीढ़ियाँ पवित्र हो जाती हैं। जिसकी वहाँ मृत्यु होती है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। यमुनाके दक्षिण किनारे विख्यात अग्निर्तीर्थ है; उसके पश्चिम धर्मराजका तीर्थ है, जिसे हरवरतीर्थ भी कहते हैं। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं तथा जो वहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे फिर जन्म नहीं लेते।

इसी प्रकार यमुनाके दक्षिण-तटपर हजारों तीर्थ हैं। अब मैं उत्तर-तटके तीर्थोंका वर्णन करता हूँ। युधिष्ठिर ! उत्तरमें महात्मा सूर्यका विरज नामक तीर्थ है, जहाँ इन्द्र आदि देवता प्रतिदिन सन्ध्योपासन करते हैं। देवता तथा विद्वान् पुरुष उस तीर्थका सेवन करते हैं। तुम भी श्रद्धापूर्वक दानमें प्रवृत्त होकर उस तीर्थमें स्नान करो। वहाँ और भी बहुत-से तीर्थ हैं, जो सब पापोंको हरनेवाले और शुभ हैं। उनमें स्नान करके मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं तथा जिनकी वहाँ मृत्यु होती है, वे मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। गङ्गा और यमुना—दोनों ही समान फल देनेवाली मानी गयी है; केवल श्रेष्ठताके कारण गङ्गा सर्वत्र पूजित होती है। कुन्तीनन्दन ! तुम भी इसी प्रकार सब तीर्थोंमें स्नान करो, इससे जीवनभरका पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। जो मनुष्य सबोंउठकर इस प्रसङ्गका पाठ या श्रवण करता है, वह भी सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकको जाता है।

युधिष्ठिर बोले—मुने ! मैंने ब्रह्माजीके कहे हुए पुण्यमय पुराणका श्रवण किया है; उसमें सैकड़ों, हजारों और लाखों तीर्थोंका वर्णन आया है। सभी तीर्थ पुण्यजनक और पवित्र बताये गये हैं तथा सबके द्वारा उत्तम गतिकी प्राप्ति बतायी गयी है। पृथ्वीपर नैमित्तिरण्य और आकाशमें पुष्करतीर्थ पवित्र है। लोकमें प्रयाग और कुरुक्षेत्र दोनोंको ही विशेष स्थान दिया गया है। आप उन सबको छोड़कर केवल एककी ही प्रशंसा क्यों कर रहे हैं ? आप प्रयागसे परम दिव्य गति तथा मनोवाञ्छित भोगोंकी प्राप्ति बताते हैं। थोड़े-से

अनुष्ठानके द्वारा अधिक धर्मकी प्राप्ति बताते हुए प्रयागकी ही अधिक प्रशंसा क्यों कर रहे हैं ? यह मेरा संशय है। इस सम्बन्धमें आपने जैसा देखा और सुना हो, उसके अनुसार इस संशयका निवारण कीजिये।

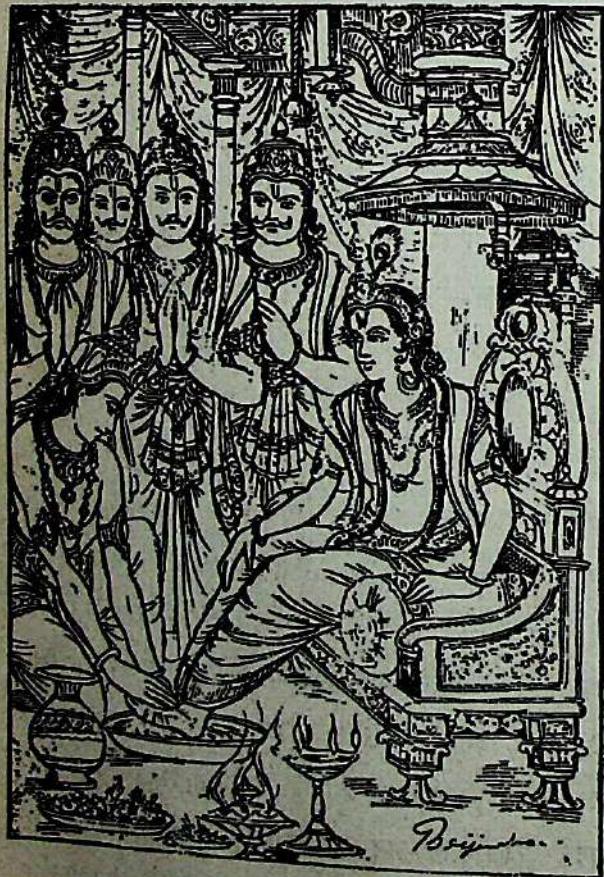
मार्कण्डेयजीने कहा—राजन् ! मैंने जैसा देखा और सुना है, उसके अनुसार प्रयागका माहात्म्य बतलाता हूँ सुनो। प्रत्यक्षरूपसे, परोक्ष तथा और जिस प्रकार सम्भव होगा, मैं उसका वर्णन करूँगा। शास्त्रको प्रमाण मानकर आत्माका परमात्माके साथ जो योग किया जाता है, उस योगकी प्रशंसा की जाती है। हजारों जन्मोंके पश्चात् मनुष्योंको उस योगकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार सहस्रों युगोंमें योगकी उपलब्धि होती है। ब्राह्मणोंको सब प्रकारके रत्न दान करनेसे मानवोंको योगकी उपलब्धि होती है। प्रयागमें मृत्यु होनेपर यह सब कुछ स्वतः सुलभ हो जाता है। जैसे सम्पूर्ण भूतोंमें व्यापक ब्रह्मकी सर्वत्र पूजा होती है, उसी प्रकार सम्पूर्ण लोकोंमें विद्वानोंद्वारा प्रयाग पूजित होता है। नैमित्तिरण्य, पुष्कर, गोतीर्थ, सिन्धु-सागर संगम, कुरुक्षेत्र, गया और गङ्गासागर तथा और भी बहुत-से तीर्थ एवं पवित्र पर्वत—कुल मिलाकर तीस करोड़ दस हजार तीर्थ प्रयागमें सदा निवास करते हैं। ऐसा विद्वानोंका कथन है। वहाँ तीन अग्निकुण्ड हैं, जिनके बीच होकर गङ्गा प्रयागसे निकलती है। वे सब तीर्थोंसे युक्त हैं। वायु देवताने देवलोक, भूलोक तथा अन्तरिक्षमें साढ़े तीन करोड़ तीर्थ बतलाये हैं। गङ्गाको उन सबका स्वरूप माना गया है।* प्रयाग, प्रतिष्ठानपुर (झूसी), कम्बल और अश्वतर नागोंके स्थान तथा भोगवती—ये प्रजापतिकी वेदियाँ हैं। युधिष्ठिर ! वहाँ देवता, मूर्तिमान् यज्ञ तथा तपस्वी ऋषि रहते और प्रयागकी पूजा करते हैं। प्रयागका यह माहात्म्य धन्य है, यही स्वर्ग प्रदान करनेवाला है, यही सेवन करनेयोग्य है, यही सुखरूप है, यही पुण्यमय है, यही सुन्दर है और यही परम उत्तम, धर्मानुकूल एवं पावन है। यह महर्षियोंका गोपनीय

* तिस्रः कोट्यर्द्धकोटीश्च तीर्थानां वायुरब्रवीत्। दिवि भूव्यन्तरिक्षे च तत्सर्वं जाह्वी सृता ॥ (४७ । ७)

रहस्य है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। इस प्रसङ्गका पाठ करनेवाला द्विज सब प्रकारके पापोंसे रहित हो जाता है। कुरुनन्दन ! तुम प्रयागके तीर्थोंमें स्नान करो। राजन् ! तुमने विधिपूर्वक प्रश्न किया था, इसलिये मैंने तुमसे प्रयाग-माहात्म्यका वर्णन किया है। इसे सुनकर तुमने अपने समस्त पितरों और पितामहोंका उद्धार कर दिया।

युधिष्ठिर बोले—महामुने ! आपने प्रयाग-माहात्म्यकी यह सारी कथा सुनायी; इसी प्रकार और सब बातें भी बताइये, जिससे मेरा उद्धार हो सके।

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन् ! सुनो, बताता हूँ। ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेवजी—ये तीनों देवता सबके प्रभु और अविनाशी हैं। ब्रह्मा इस सम्पूर्ण गतकी, यहाँके चराचर प्राणियोंकी सृष्टि करते हैं और परमेश्वर विष्णु उन सबका, समस्त प्रजाओंका पालन करते हैं। फिर जब कल्पका अन्त उपस्थित होता है, तब



भगवान् रुद्र सम्पूर्ण जगत्का संहार करते हैं। ये ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी प्रयागमें सदा निवास करते हैं। प्रयागमण्डलका विस्तार पाँच योजन (बीस कोस) है। उपर्युक्त देवता पापकर्मोंका निवारण करते हुए उस मण्डलकी रक्षाके लिये वहाँ मौजूद रहते हैं। अतः प्रयागमें किया हुआ थोड़ा-सा भी पाप नरकमें गिरानेवाला होता है।

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर, धर्मपर विश्वास करनेवाले समस्त पाप्डवोंने भाइयोंसहित ब्राह्मणोंको नमस्कार करके गुरुजनों और देवताओंको तृप्त किया। उसी समय भगवान् वासुदेव भी वहाँ आ पहुँचे। फिर समस्त पाप्डवोंने मिलकर भगवान् श्रीकृष्णका पूजन किया। तत्पश्चात् कृष्णसहित सब महात्माओंने धर्मपुत्र युधिष्ठिरको स्वराज्यपर अभिषिक्त किया। इसके बाद भाइयोंसहित धर्मात्मा युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंको बड़े-बड़े दान दिये। जो सबैरे उठकर इस प्रसङ्गका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें जाता है।

तत्पश्चात् भगवान् वासुदेव बोले—राजा युधिष्ठिर ! मैं आपके स्नेहवश कुछ निवेदन करता हूँ आपको मेरी बात माननी चाहिये। महाराज ! आप प्रतिदिन हमारे साथ प्रयागका स्मरण करनेसे स्वयं सनातन लोकको प्राप्त होंगे। जो मनुष्य प्रयागको जाता अथवा वहाँ निवास करता है, वह सब पापोंसे शुद्ध होकर दिव्यलोकको जाता है। जो किसीका दिया हुआ दान नहीं लेता, संतुष्ट रहता, मन और इन्द्रियोंको संयममें रखता, पवित्र रहता और अहङ्कारका त्याग कर देता है, उसीको तीर्थका पूरा फल मिलता है। राजेन्द्र ! जो क्रोधहीन, सत्यवादी, दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाला तथा सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मभाव रखनेवाला है, वही तीर्थके फलका उपभोग करता है। * ऋषियों और देवताओंने भी क्रमशः यज्ञोंका वर्णन किया है, किन्तु

* प्रतिग्रहादुपावृत्तः संतुष्टो नियतः शुचिः। अहंकारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमशुते ॥
अकोपनश्च राजेन्द्र सत्यवादी दृढ़त्रतः। आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमशुते ॥ (स्वर्गं ४९। १०-११)

महाराज ! दरिद्र मनुष्य यज्ञ नहीं कर सकते । यज्ञमें बहुत सामग्रीकी आवश्यकता होती है । नाना प्रकारकी तैयारियाँ और समारोह करने पड़ते हैं । कहीं कोई धनवान् मनुष्य ही भाँति-भाँतिके द्रव्योंका उपयोग करके यज्ञ कर सकता है । नरेश्वर ! जिसे विद्वान् पुरुष दरिद्र होनेपर भी कर सके तथा जो पुण्य और फलमें यज्ञकी समानता करता हो, वह उपाय बताता हूँ; सुनिये । भरतश्रेष्ठ !

यह ऋषियोंका गोपनीय रहस्य है; तीर्थयात्राका पुण्य यज्ञोंसे भी बढ़कर होता है । एक खरब, तीस करोड़से भी अधिक तीर्थ माघमासमें गङ्गाजीके भीतर आकर स्थित होते हैं [अतः माघमें गङ्गा-स्नान परम पुण्यका साधक होता है] । * महाराज ! अब आप निश्चिन्त होकर अकण्टक राज्य भोगिये । अब फिर अश्वमेध यज्ञके समय मुझसे आपकी भेंट होगी ।



भगवानके भजन एवं नाम-कीर्तनकी महिमा

ऋषय ऊचुः

भवता कथितं सर्वं यत्किञ्चित् पृष्ठमेव च ।
इदानीमपि पृच्छाम एकं वद महामते ॥ १ ॥

ऋषियोंने कहा—महामते ! हमलोगोंने जो कुछ पूछा था, वह सब आपने कह सुनाया । अब भी आपसे एक प्रश्न करते हैं, उसका उत्तर दीजिये ।
एतेषां खलु तीर्थानां सेवनाद्यत् फलं भवेत् ।
सर्वेषां किल कृत्वैकं कर्म केन च लभ्यते ।
एतत्रो ब्रूहि सर्वज्ञं कर्मेवं यदि वर्तते ॥ २ ॥

इन सभी तीर्थोंकि सेवनसे जो फल होता है, वही कौन-सा एक कर्म करनेसे प्राप्त हो सकता है ? सर्वज्ञ सूतजी ! यदि ऐसा कोई कर्म हो तो उसे हमें बताइये ।

सूत उवाच

कर्मयोगः किल प्रोक्तो वर्णानां द्विजपूर्वशः ।
नानाविधो महाभागास्तत्र चैकं विशिष्यते ॥ ३ ॥

महाभाग महर्षिगण ! [शास्त्रोंमें] ब्राह्मणादि वर्णोंकि लिये निश्चय ही नाना प्रकारके कर्मयोगका वर्णन किया गया है, परन्तु उसमें एक ही बात सबसे बढ़कर है ।

हरिभक्तिः कृता येन मनसा कर्मणा गिरा ।
जितं तेन जितं तेन जितमेव न संशयः ॥ ४ ॥

जिसने मन, वाणी और क्रियाद्वारा श्रीहरिकी

भक्ति की है, उसने बाजी मार ली, उसने विजय प्राप्त कर ली, उसकी निश्चय ही जीत हो गयी—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ।

हरिरेव समाराध्यः सर्वदिवेश्वरेश्वरः ।
हरिनाममहामन्त्रैर्नश्येत् पापपिशाचकम् ॥ ५ ॥

सम्पूर्ण देवेश्वरोंके भी ईश्वर भगवान् श्रीहरिकी ही भलीभाँति आराधना करनी चाहिये । हरिनामरूपी महामन्त्रोंके द्वारा पापरूपी पिशाचोंका समुदाय नष्ट हो जाता है ।

हरे: प्रदक्षिणां कृत्वा सकृदप्यमलाशयाः ।
सर्वतीर्थसमागाहां लभन्ते यज्ञं संशयः ॥ ६ ॥

एक बार भी श्रीहरिकी प्रदक्षिणा करके मनुष्य शुद्ध हो जाते हैं तथा सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेका जो फल होता है, उसे प्राप्त कर लेते हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ।

प्रतिमां च हरेर्दृष्ट्वा सर्वतीर्थफलं लभेत् ।
विष्णुनाम परं जप्त्वा सर्वमन्त्रफलं लभेत् ॥ ७ ॥

मनुष्य श्रीहरिकी प्रतिमाका दर्शन करके सब तीर्थोंका फल प्राप्त करता है तथा विष्णुके उत्तम नामका जप करके सम्पूर्ण मन्त्रोंके जपका फल पा लेता है ।

विष्णुप्रसादतुलसीमाद्याय द्विजसत्तमाः ।
प्रचण्डं विकरालं तद् यमस्यास्यं न पश्यति ॥ ८ ॥

* ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरतसत्तमं । तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञरूपि विशिष्यते ॥

दशकोटिसहस्राणि त्रिशस्कोट्यस्तथापरे । माघमासे तु गङ्गायां गमिष्यन्ति नर्षभ ॥ (स्वर्ग ४९ । १५-१६)

द्विजवरो ! भगवान् विष्णुके प्रसादस्वरूप
तुलसीदलको सूँघकर मनुष्य यमराजके प्रचण्ड एवं
विकराल मुखका दर्शन नहीं करता ।

सकृत्प्राणामी कृष्णस्य मातुः स्तन्यं पिबेत्र हि ।
हरिपादे मनो येषां तेष्यो नित्यं नमो नमः ॥ ९ ॥

एक बार भी श्रीकृष्णको प्रणाम करनेवाला मनुष्य
पुनः माताके स्तनोंका दूध नहीं पीता—उसका दूसरा
जन्म नहीं होता । जिन पुरुषोंका चित्र श्रीहरिके चरणोंमें
लगा है, उन्हें प्रतिदिन मेरा बारंबार नमस्कार है ।

पुल्कसः श्वपचो वापि ये चान्ये म्लेच्छजातयः ।
तेऽपि वन्द्या महाभागा हरिपादैकसेवकाः ॥ १० ॥

पुल्कस, श्वपच (चाप्डाल) तथा और भी जो
म्लेच्छ जातिके मनुष्य हैं, वे भी यदि एकमात्र श्रीहरिके
चरणोंकी सेवामें लगे हों तो वन्दनीय और परम
सौभाग्यशाली हैं ।

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्घयस्तथा ।
हरौ भक्तिं विधायैव गर्भवासं न पश्यति ॥ ११ ॥

फिर जो पुण्यात्मा ब्राह्मण और राजर्घि भगवान्के
भक्त हों, उनकी तो बात ही क्या है । भगवान् श्रीहरिकी
भक्ति करके ही मनुष्य गर्भवासका दुःख नहीं देखता ।
हरेरथे स्वनैरुद्यैर्नृत्यंस्तत्रामकृत्रः ।

पुनाति भुवनं विप्रा गङ्गादि सलिलं यथा ॥ १२ ॥

ब्राह्मणो ! भगवान्के सामने उच्चस्वरसे उनके
नामोंका कीर्तन करते हुए नृत्य करनेवाला मनुष्य गङ्गा
आदि नदियोंके जलकी भाँति समस्त संसारको पवित्र कर
देता है ।

दर्शनात् स्पर्शनात्सर्य आलापादपि भक्तिः ।
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ १३ ॥

उस भक्तके दर्शन और स्पर्शसे, उसके साथ
वार्तालाप करनेसे तथा उसके प्रति भक्तिभाव रखनेसे
मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है—इसमें
तनिक भी संदेह नहीं है ।

हरे प्रदक्षिणं कुर्वन्नुद्यैस्तत्रामकृत्रः ।
करतालादिसंधानं सुखरं कलशब्दितम् ।
ब्रह्महत्यादिकं पापं तेनैव करतालितम् ॥ १४ ॥

जो श्रीहरिकी प्रदक्षिणा करते हुए करताल आदि
बजाकर मधुरे स्वर तथा मनोहर शब्दोंमें उनके नामोंका
कीर्तन करता है, उसने ब्रह्महत्या आदि पापोंको मानो
ताली बजाकर भगा दिया ।

हरिभक्तिकथामुक्ताख्यायिकां शृणुयाच्च यः ।
तस्य संदर्शनादेव पूतो भवति मानवः ॥ १५ ॥

जो हरिभक्ति-कथाख्यायिकां मुक्तामयी आख्यायिकाका
श्रवण करता है, उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य पवित्र हो
जाता है ।

किं पुनस्तस्य पापानामाशङ्का मुनिपुङ्क्वाः ।
तीर्थानां च परं तीर्थं कृष्णनामं महर्षयः ॥ १६ ॥

मुनिवरो ! फिर उसके विषयमें पापोंकी आशङ्का
क्या रह सकती है । महर्षियो ! श्रीकृष्णका नाम सब
तीर्थोंमें परम तीर्थ है ।

तीर्थीकुर्वन्ति जगतीं गृहीतं कृष्णनामं यैः ।
तस्मान्मुनिवराः पुण्यं नातः परतरं विदुः ॥ १७ ॥

जिन्होंने श्रीकृष्ण-नामको अपनाया है, वे पृथ्वीको
तीर्थ बना देते हैं । इसलिये श्रेष्ठ मुनिजन इससे बढ़कर
पावन वस्तु और कुछ नहीं मानते ।

विष्णुप्रसादनिर्माल्यं भुक्त्वा धृत्वा च मस्तके ।
विष्णुरेव भवेन्यत्यो यमशोकविनाशनः ।
अर्चनीयो नमस्कार्यो हरिरेव न संशयः ॥ १८ ॥

श्रीविष्णुके प्रसादभूत निर्माल्यको खाकर और
मस्तकपर धारण करके मनुष्य साक्षात् विष्णु ही हो जाता
है । वह यमराजसे होनेवाले शोकका नाश करनेवाला
होता है; वह पूजन और नमस्कारके योग्य साक्षात्
श्रीहरिका ही स्वरूप है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ।
ये हीमं विष्णुमव्यक्तं देवं वापि महेश्वरम् ।

एकीभावेन पश्यन्ति न तेषां पुनरुद्धवः ॥ १९ ॥

जो इन अव्यक्त विष्णु तथा भगवान् महेश्वरको एक
भावसे देखते हैं, उनका पुनः इस संसारमें जन्म नहीं
होता ।

तस्मादनादिनिधनं विष्णुमात्मानमव्ययम् ।
हरं चैकं प्रपश्यध्वं पूजयध्वं तथैव हि ॥ २० ॥

अतः महर्षियो ! आप आदि-अन्तसे रहित

अविनाशी परमात्मा विष्णु तथा महादेवजीको एक भावसे देखें तथा एक समझकर ही उनका पूजन करें। येऽसमानं प्रपश्यन्ति हरि वै देवतान्तरम् ।

ते यान्ति नरकान् घोरान्न तांस्तु गणयेद्धरिः ॥ २१ ॥

जो 'हरि' और 'हर' को समान भावसे नहीं देखते, श्रीहरिको दूसरा देवता समझते हैं, वे घोर नरकमें पड़ते हैं; उन्हें श्रीहरि अपने भक्तोंमें नहीं गिनते।

मूर्खं वा पण्डितं वापि ब्राह्मणं केशवप्रियम् ।

श्वपाकं वा मोचयति नारायणः स्वयं प्रभुः ॥ २२ ॥

पण्डित हो या मूर्ख, ब्राह्मण हो या चाप्डाल, यदि वह भगवानका प्यारा भक्त है तो स्वयं भगवान् नारायण उसे संकटोंसे छुड़ाते हैं।

नारायणात्परो नास्ति पापराशिदवानलः ।

कृत्वापि पातकं घोरं कृष्णनाम्ना विमुच्यते ॥ २३ ॥

भगवान् नारायणसे बढ़कर दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो पापपुञ्जरूपी वनको जलानेके लिये दावानलके समान हो। भयङ्कर पातक करके भी मनुष्य श्रीकृष्ण-नामके उच्चारणसे मुक्त हो जाता है।

स्वयं नारायणो देवः स्वनाम्नि जगतां गुरुः ।

आत्मनोऽश्यधिकां शक्तिं स्थापयामास सुब्रताः ॥ २४ ॥

उत्तम ब्रतका पालन करनेवाले मंहर्षियो ! जगदगुरु भगवान् नारायणने स्वयं ही अपने नाममें अपनेसे भी अधिक शक्ति स्थापित कर दी है।

अत्र ये विवदन्ते वा आयासलघुदर्शनात् ।

फलानां गौरवाच्चापि ते यान्ति नरकं बहु ॥ २५ ॥

नाम-कीर्तनमें परिश्रम तो थोड़ा होता है, किन्तु फल भारी-से-भारी प्राप्त होता है—यह देखकर जो लोग इसकी महिमाके विषयमें तर्क उपस्थित करते हैं, वे अनेकों बार नरकमें पड़ते हैं।

तस्माद्धरौ भक्तिमान् स्याद्विनामपरायणः ।

पूजकं पृष्ठतो रक्षेन्नामिनं वक्षसि प्रभु ॥ २६ ॥

इसलिये हरिनामकी शरण लेकर भगवानकी भक्ति करनी चाहिये। प्रभु अपने पुजारीको तो पीछे रखते हैं; किन्तु नाम-जप करनेवालेको छांतीसे लगाये रहते हैं।

हरिनाममहावत्रं पापपर्वतदारणम् ।

तस्य पादौ तु सफलौ तदर्थगतिशालिनौ ॥ २७ ॥

हरिनामरूपी महान् वज्र पापोंके पहाड़को विदीर्ण करनेवाला है। जो भगवानकी ओर आगे बढ़ते हों, मनुष्यके वे ही पैर सफल हैं।

तावेव धन्यावारव्यातौ यौ तु पूजाकरौ करौ ।

उत्तमाङ्गमुत्तमाङ्गं तद्धरौ नप्रयेव यत् ॥ २८ ॥

वे ही हाथ धन्य कहे गये हैं, जो भगवानकी पूजामें संलग्न रहते हैं। जो मस्तक भगवानके आगे झुकता हो, वही उत्तम अङ्ग है।

सा जिह्वा या हरि स्तौति तन्मनस्तत्पदानुगम् ।

तानि लोमानि चोच्यन्ते यानि तत्राम्बिं चोस्थितम् ॥ २९ ॥

कुर्वन्ति तद्य नेत्राम्बु यदच्युतप्रसङ्गतः ।

जीभ वही श्रेष्ठ है, जो भगवान् श्रीहरिकी स्तुति करती है। मन भी वही अच्छा है, जो उनके चरणोंका अनुगमन—चिन्तन करता है तथा रोएँ भी वे ही सार्थक कहलाते हैं, जो भगवानका नाम लेनेपर खड़े हो जाते हैं। इसी प्रकार आँसू वे ही सार्थक हैं, जो भगवानकी चर्चाके अवसरपर निकलते हैं।

अहो लोका अतितरां दैवदोषेण वञ्चिताः ॥ ३० ॥

नामोच्चारणमात्रेण मुक्तिं न भजन्ति वै ।

अहो ! संसारके लोग भाग्यदोषसे अत्यन्त वञ्चित हो रहे हैं, क्योंकि वे नामोच्चारणमात्रसे मुक्ति देनेवाले भगवानका भजन नहीं करते।

वञ्चितास्ते च कलुषाः स्त्रीणां सङ्गप्रसङ्गतः ॥ ३१ ॥

प्रतिष्ठन्ति च लोमानि येषां नो कृष्णशब्दने ।

स्त्रियोंके स्पर्श एवं चर्चासे जिन्हें रोमाञ्च हो आता है, श्रीकृष्णका नाम लेनेपर नहीं, वे मलिन तथा कल्याणसे वञ्चित हैं।

ते मूर्खा ह्यकृतात्मानः पुत्रशोकादिविह्लाः ॥ ३२ ॥

स्वदन्ति बहुलालापैर्न कृष्णाक्षरकीर्तने ।

जो अजितेन्द्रिय पुरुष पुत्रशोकादिसे व्याकुल होकर अत्यन्त विलाप करते हुए रोते हैं, किन्तु श्रीकृष्णनामके अक्षरोंका कीर्तन करते हुए नहीं रोते, वे मूर्ख हैं।

जिहां लब्ध्वापि लोकेऽस्मिन् कृष्णनाम जपेन्न हि ॥ ३३ ॥
लब्ध्वापि मुक्तिसोपानं हेलवैव च्यवन्ति ते ।

जो इस लोकमें जीभ पाकर भी श्रीकृष्णनामका जप नहीं करते, वे मोक्षतक पहुँचनेके लिये सीढ़ी पाकर भी अवहेलनावश नीचे गिरते हैं ।

तस्माद्यतेन वै विष्णुं कर्मयोगेन मानवः ॥ ३४ ॥
कर्मयोगार्चितो विष्णुः प्रसीदत्येव नान्यथा ।
तीर्थादिव्यधिकं तीर्थं विष्णोर्भजनमुच्यते ॥ ३५ ॥

इसलिये मनुष्यको उचित है कि वह कर्मयोगके द्वारा भगवान् विष्णुकी यत्पूर्वक आराधना करे । कर्मयोगसे पूजित होनेपर ही भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं, अन्यथा नहीं । भगवान् विष्णुका भजन तीर्थोंसे भी

अधिक पावन तीर्थ कहा गया है ।

सर्वेषां खलु तीर्थानां स्नानपानावगाहनैः ।
यत्फलं लभते मर्त्यस्तत्फलं कृष्णसेवनात् ॥ ३६ ॥

सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करने, उनका जल पीने और उनमें गोता लगानेसे मनुष्य जिस फलको पाता है, वह श्रीकृष्णके सेवनसे प्राप्त हो जाता है ।

यजन्ते कर्मयोगेन धन्या एव नरा हरिम् ।
तस्माद्यजध्वं मुनयः कृष्णं परममङ्गलम् ॥ ३७ ॥

भाग्यवान् मनुष्य ही कर्मयोगके द्वारा श्रीहरिका पूजन करते हैं । अतः मुनियो ! आपलोग परम मङ्गलमय श्रीकृष्णकी आराधना करें ।



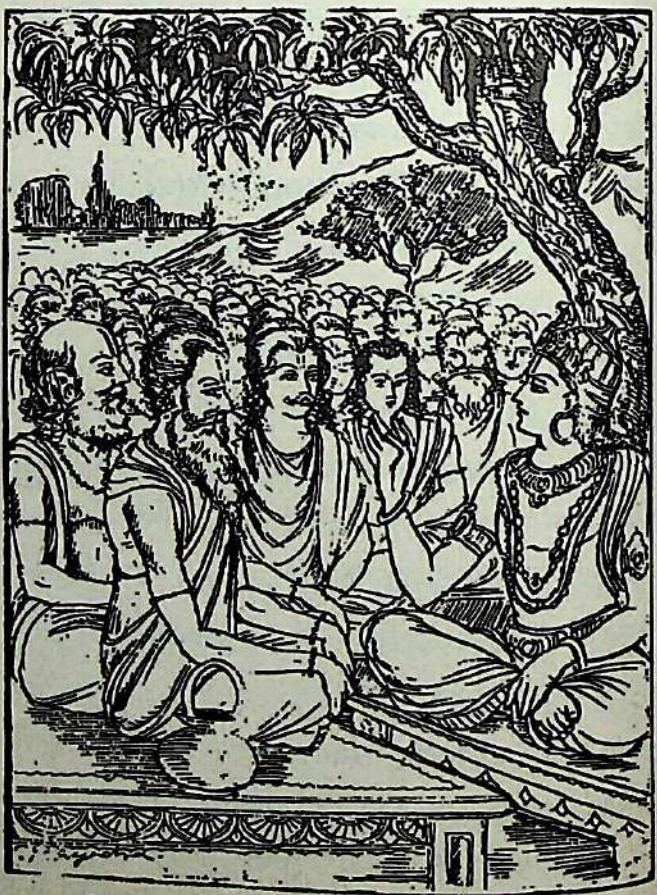
ब्रह्मचारीके पालन करनेयोग्य नियम

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! कर्मयोग कैसे किया जाता है, जिसके द्वारा आराधना करनेपर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं ? महाभाग ! आप वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं; अतः हमें यह बात बताइये । जिसके द्वारा मुमुक्षु पुरुष सबके ईश्वर भगवान् श्रीहरिकी आराधना कर सकें, वह समस्त लोकोंकी रक्षा करनेवाला धर्म क्या वस्तु है ? उसका वर्णन कीजिये । उसके श्रवणकी इच्छासे ये ब्राह्मणलोग आपके सामने बैठे हैं ।

सूतजी बोले—महर्षियो ! पूर्वकालमें अग्निके समान तेजसी ऋषियोंने सत्यवतीके पुत्र व्यासजीसे ऐसा ही प्रश्न किया था । उसके उत्तरमें उन्होंने जो कुछ कहा था, उसे आपलोग सुनिये ।

व्यासजीने कहा—ऋषियो ! मैं सनातन कर्मयोगका वर्णन करूँगा, तुम सब लोग ध्यान देकर सुनो । कर्मयोग ब्राह्मणोंको अक्षय फल प्रदान करनेवाला है । पहलेकी बात है, प्रजापति मनुने श्रोता बनकर बैठे हुए ऋषियोंके समक्ष ब्राह्मणोंके लाभके लिये वेदप्रसिद्ध सम्पूर्ण विषयोंका उपदेश किया था । वह उपदेश सम्पूर्ण पापोंको हननेवाला, पवित्र और मुनि-समुदायद्वारा सेवित है; मैं उसीका वर्णन करता हूँ, तुमलोग एकाग्रचित्त होकर

श्रवण करो । श्रेष्ठ ब्राह्मणको उचित है कि वह अपने



गृहसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार गर्भ या जन्मसे आठवें वर्षमें उपनयन होनेके पश्चात् वेदोंका अध्ययन आरम्भ करे । दण्ड, मेखला, यज्ञोपवीत और हिंसारहित

काला मृगचर्म धारण किये मुनिवेषमें रहे, भिक्षाका अन्न ग्रहण करे और गुरुका मुँह जोहते हुए सदा उनके हितमें संलग्न रहे। ब्रह्मजीने पूर्वकालमें यज्ञोपवीत बनानेके लिये ही कपास उत्पन्न किया था। ब्राह्मणोके लिये तीन आवृत्ति करके बनाया हुआ यज्ञोपवीत शुद्ध माना गया है। द्विजको सदा यज्ञोपवीत धारण किये रहना चाहिये। अपनी शिखाको सदा बाँधे रखना चाहिये। इसके विपरीत बिना यज्ञोपवीत पहने और बिना शिखा बाँधे जो कर्म किया जाता है, वह विधिपूर्वक किया हुआ नहीं माना जाता। वस्त्र रुई-जैसा सफेद हो या गेरुआ। फटा न हो, तभी उसे ओढ़ना चाहिये तथा वही पहननेके योग्य माना गया है। इनमें भी श्वेत वस्त्र अत्यन्त उत्तम है। उससे भी उत्तम और शुभ आच्छादन काला मृगचर्म माना गया है। जनेऊ गलेमें डालकर दाहिना हाथ उसके ऊपर कर ले और बायीं बाँह [अथवा कंधे] पर उसे रखे तो वह 'उपवीत' कहलाता है। यज्ञोपवीतको सदा इसी तरह रखना चाहिये। कण्ठमें मालाकी भाँति पहना हुआ जनेऊ 'निवीत' कहा गया है। ब्राह्मणो ! बायीं बाँह बाहर निकालकर दाहिनी बाँह या कंधेपर रखे हुए जनेऊको 'प्राचीनावीत' (अपसव्य) कहते हैं। इसका पितृ-कार्य (श्राद्ध-तर्पण आदि) में उपयोग करना चाहिये। हवन-गृहमें, गोशालामें, होम और जपके समय, स्वाध्यायमें, भोजनकालमें, ब्राह्मणोंके समीप रहनेपर, गुरुजनों तथा दोनों कालकी संध्याकी उपासनाके समय तथा साधु पुरुषोंसे मिलनेपर सदा उपवीतके ढंगसे ही जनेऊ पहनना

चाहिये—यही सनातन विधि है। ब्राह्मणके लिये तीन आवृत्ति की हुई मूँजकी ही मेखला बनानी चाहिये। मूँज न मिलनेपर कुशसे भी मेखला बनानेका विधान है। मेखलामें गाँठ एक या तीन होनी चाहिये। द्विज बाँस अथवा पलाशका दण्ड धारण करे। दण्ड उसके पैरसे लेकर सिरके केशतक लंबा होना चाहिये। अथवा किसी भी यज्ञोपयोगी वृक्षका दण्ड, जो सुन्दर और छिद्र आदिसे रहित हो, वह धारण कर सकता है।

द्विज सबेरे और सायंकालमें एकाग्रचित्त होकर संध्योपासन करे। जो काम, लोभ, भय अथवा मोहवश संध्योपासन त्याग देता है, वह गिर जाता है। संध्या करनेके पश्चात् द्विज प्रसन्नचित्त होकर सायंकाल और प्रातःकालमें अग्निहोत्र करे। फिर दुबारा स्नान करके देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करे। इसके बाद पत्र, पुष्प, फल, जौ और जल आदिसे देवताओंकी पूजा करे। प्रतिदिन आयु और आरोग्यकी सिद्धिके लिये तन्त्रा और आलस्य आदिका परित्याग करके 'मैं अमुक हूँ और आपको प्रणाम करता हूँ' इस प्रकार अपने नाम, गोत्र आदिका परिचय देते हुए धर्मतः अपनेसे बड़े पुरुषोंको विधिपूर्वक प्रणाम करे और इस प्रकार गुरुजनोंको नमस्कार करनेका स्वभाव बना ले। नमस्कार करनेवाले ब्राह्मणको बदलेमें 'आयुष्मान् भव सौम्य !' कहना चाहिये तथा उसके नामके अन्तमें मूताकारका उच्चारण करना चाहिये। यदि नाम हल्लत हो, तो अन्तिम हल्लके आदिका अक्षर मूत बोलना चाहिये।* जो

* पाणिनिने भी 'प्रत्यभिवादेऽशुद्धे' (८।२।८३) — इस सूत्रके द्वारा इस नियमका उल्लेख किया है। इसके अनुसार आशीर्वाद वाक्यके 'टि' को 'मूत' स्वरसे बोला जाता है। किन्तु उस वाक्यके अन्तमें प्रणाम करनेवालेका नाम या 'सौम्य' आदि पद ही प्रयुक्त होते हैं। यदि नाम स्वरात्त हो तो अन्तिम अक्षरको ही 'टि' संज्ञा प्राप्त होगी और यदि हल्लत हुआ तो अन्तिम अक्षरके पूर्ववर्ती स्वरको 'टि' माना जायगा; उसीका मूत-उच्चारण होगा। हस्तका उच्चारण एक मात्राका, दीर्घका दो मात्राका और मूतका तीन मात्राका होता है। अतः हस्तके उच्चारणमें जितना समय लगता है, उससे तिगुने समयमें मूतका ठीक उच्चारण होता है। यह नियम ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य—तीनों वर्णोंके पुरुषोंके लिये लागू होता है। यदि प्रणाम करनेवाला शूद्र या लौ हो तो उसे आशीर्वाद देते समय उसके नामका अन्तिम अक्षर मूत नहीं बोला जाता। प्रणाम-वाक्य इस प्रकार होना चाहिये—'अमुक, गोत्रः अमुकशर्माहं (वर्षाहं गुप्तोऽहं वा) भवन्तमभिवादये।' आशीर्वाद-वाक्य ऐसा होना चाहिये—'आयुष्मान् भव सौम्य ३ आयुष्मानेधीन्द्रशर्म ३ न्, आयुष्मानेधीन्द्रवर्म ३ न् अथवा आयुष्मानेधीन्द्रगुप्त ३, इत्यादि। जो इस प्रकार आशीर्वाद देना जानता हो उसीको उक्त विधिसे नाम-गोत्रादिका उच्चारण करके प्रणाम करना चाहिये; जो न जाने, उससे 'अयमहं प्रणमामि' आदि साधारण वाक्य बोलना चाहिये।

ब्राह्मण प्रणामके बदले उत्करूपसे आशीर्वाद देनेकी विधि नहीं जानता, वह विद्वान् पुरुषके द्वारा प्रणाम करनेके योग्य नहीं है। जैसा शूद्र है, वैसा ही वह भी है। अपने दोनों हाथोंको विपरीत दिशामें करके गुरुके चरणोंका स्पर्श करना उचित है। अर्थात् अपने बायें हाथसे गुरुके बायें चरणका और दाहिने हाथसे दाहिने चरणका स्पर्श करना चाहिये। शिष्य जिनसे लौकिक, वैदिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करता है, उन गुरुदेवको वह पहले प्रणाम करे।

जल, भिक्षा, फूल और समिधा—इन्हें दूसरे दिनके लिये संग्रह न करे—प्रतिदिन जाकर आवश्यकताके अनुसार ले आये। देवताके निमित्त किये जानेवाले कार्योंमें भी जो इस तरहके दूसरे-दूसरे आवश्यक सामान हैं, उनका भी अन्य समयके लिये संग्रह न करे। ब्राह्मणसे भेट होनेपर कुशल पूछे, क्षत्रियसे अनामय, वैश्यसे क्षेम और शूद्रसे आरोग्यका प्रश्न करे। उपाध्याय (गुरु), पिता, बड़े भाई, राजा, मामा, धशुर, नाना, दादा, वर्णमें अपनेसे श्रेष्ठ व्यक्ति तथा पिताका भाई—ये पुरुषोंमें गुरु माने गये हैं। माता, नानी, गुरुपती, बुआ, मौसी, सास, दादी, बड़ी बहिन और दूध पिलानेवाली धाय—इन्हें ब्रियोंमें गुरु माना गया है। यह गुरुवर्ग माता और पिताके सम्बन्धसे है, ऐसा जानना चाहिये तथा मन, वाणी और शरीरकी क्रियाद्वारा इनके अनुकूल आचरण करना चाहिये। गुरुजनोंको देखते ही उठकर खड़ा हो जाय और हाथ जोड़कर प्रणाम करे। इनके साथ एक आसनपर न बैठे। इनसे विवाद न करे। अपने जीवनकी रक्षाके लिये भी गुरुजनोंके साथ द्वेषपूर्वक बातचीत न करे। अन्य गुणोंके

द्वारा ऊँचा उठा हुआ पुरुष भी गुरुजनोंसे द्वेष करनेके कारण नीचे गिर जाता है। समस्त गुरुजनोंमें भी पाँच विशेष रूपसे पूज्य हैं। उन पाँचोंमें भी पहले पिता, माता और आचार्य—ये तीन सर्वश्रेष्ठ हैं। उनमें भी माता सबसे अधिक सम्मानके योग्य है। उत्पन्न करनेवाला पिता, जन्म देनेवाली माता, विद्याका उपदेश देनेवाला गुरु, बड़ा भाई और स्वामी—ये पाँच परमपूज्य गुरु माने गये हैं। कल्याणकामी पुरुषको चाहिये कि अपने पूर्ण प्रयत्नसे अथवा प्राण त्यागकर भी इन पाँचोंका विशेष रूपसे सम्मान करे। जबतक पिता और माता—ये दोनों जीवित हों, तबतक सब कुछ छोड़कर पुत्र उनकी सेवामें संलग्न रहे। पिता-माता यदि पुत्रके गुणोंसे भलीभांति प्रसन्न हों, तो वह पुत्र उनकी सेवारूप कर्मसे ही सम्पूर्ण धर्मोंका फल प्राप्त कर लेता है। माताके समान देवता और पिताके समान गुरु दूसरा नहीं है। उनके किये हुए उपकारोंका बदला भी किसी तरह नहीं हो सकता। अतः मन, वाणी और क्रियाद्वारा सदा उन दोनोंका प्रिय करना चाहिये; उनकी आज्ञाके बिना दूसरे किसी धर्मका आचरण न करे।* परन्तु यह निषेध मोक्षरूपी फल देनेवाले नित्य-नैमित्तिक कर्मोंको छोड़कर ही लागू होता है। [मोक्षके साधनभूत नित्य-नैमित्तिक कर्म अनिवार्य हैं, उनका अनुष्ठान होना ही चाहिये; उनके लिये किसीकी अनुमति लेना आवश्यक नहीं है।] यह धर्मके सार-तत्त्वका उपदेश किया गया है। यह मृत्युके बाद भी अनन्त फलको देनेवाला है। उपदेशक गुरुकी विधिवत् आराधना करके उनकी आज्ञासे घर लौटनेवाला शिष्य इस लोकमें विद्याका फल भोगता है और मृत्युके पश्चात् स्वर्गमें जाता है।

* गुरुणामपि सर्वेषां पञ्च पूज्या विशेषतः । तेषामाद्याख्यः श्रेष्ठस्तेषां माता सुपूजिता ॥
यो भावयति या सूते येन विद्योपदिश्यते । ज्येष्ठो भ्राता च भर्ता च पञ्चैते गुरवः स्मृताः ॥
आत्मनः सर्वयनेन प्राणत्यागेन वा पुनः । पूजनीया विशेषेण पञ्चैते भूतिमिच्छता ॥
यावत् पिता च माता च द्वावेतौ निर्विकारिणौ । तावत्सर्वै परित्यज्य पुत्रः स्यात्तप्तरायणः ॥
पिता माता च सुशीतौ स्यातां पुत्रगुणैर्यदि । स पुत्रः सकलं धर्मं प्राप्नुयातेन कर्मणा ॥
नास्ति मातृसं दैवं नास्ति पितृसमो गुरुः । तयोः प्रत्युपकारोऽपि न कथंचन विद्यते ॥
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्याद् कर्मणा मनसा गिरा । त तात्प्राप्ननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ॥(५१ । ३५—४१)

ज्येष्ठ आता पिताके समान है; जो मूर्ख उसका अपमान करता है, वह उस पापके कारण मृत्युके बाद घोर नरकमें पड़ता है। सत्पुरुषोंके मार्गपर चलनेवाले पुरुषको स्वामीका सदा सम्मान करना चाहिये। इस संसारमें माताका अधिक उपकार है; इसलिये उसका अधिक गौरव माना गया है। मामा, चाचा, श्वशु, ऋत्विज और गुरुजनोंसे 'मैं अमुक हूँ' ऐसा कहकर बोले और खड़ा होकर उनका स्वागत करे। यज्ञमें दीक्षित पुरुष यदि अवस्थामें अपनेसे छोटा हो, तो भी उसे नाम लेकर नहीं बुलाना चाहिये। धर्मज्ञ पुरुषको उचित है कि वह उससे 'भोः !' और 'भवत्' (आप) आदि कहकर बात करे। ब्राह्मण और क्षत्रिय आदिके द्वारा भी वह सदा सादर नमस्कारके योग्य और पूजनीय है। उसे मस्तक झुकाकर प्रणाम करना चाहिये। क्षत्रिय आदि यदि ज्ञान, उत्तम कर्म एवं श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त होते हुए अनेक शास्त्रोंके विद्वान् हों, तो भी ब्राह्मणके द्वारा नमस्कारके योग्य कदापि नहीं हैं। ब्राह्मण अन्य सभी वर्णोंके लोगोंसे स्वस्ति कहकर बोले—यह श्रुतिकी आज्ञा है। एक वर्णके पुरुषको अपने समान वर्णवालोंको प्रणाम ही करना चाहिये। समस्त वर्णोंके गुरु ब्राह्मण हैं, ब्राह्मणोंके गुरु अग्नि, हैं, स्त्रीका एकमात्र गुरु पति है और अतिथि सबका गुरु है। विद्या, कर्म, वय, भाई-बन्धु और कुल—ये पाँच सम्मानके कारण बताये गये हैं। इनमें पिछलोंकी अपेक्षा पहले उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं।*

ब्राह्मणादि तीन वर्णोंमें जहाँ इन पाँचोंमेंसे अधिक एवं प्रबल गुण होते हैं, वही सम्मानके योग्य समझा जाता है। दसवीं (९० वर्षसे ऊपरकी) अवस्थाको प्राप्त हुआ शूद्र भी सम्मानके योग्य होता है। ब्राह्मण, स्त्री, राजा, नेत्रहीन, वृद्ध, भारसे पीड़ित मनुष्य, रोगी तथा दुर्बलको जानेके लिये मार्ग देना चाहिये।†

ब्रह्मचारी प्रतिदिन मन और इन्द्रियोंको संयममें

रखते हुए शिष्ट पुरुषोंके घरोंसे भिक्षा ले आये तथा गुरुको निवेदन कर दे। फिर गुरु उसमेंसे जितना भोजनके लिये है, उनकी आज्ञाके अनुसार उतना ही लेकर मौनभावसे भोजन करे। उपनयन-संस्कारसे युक्त श्रेष्ठ ब्राह्मण 'भवत्' शब्दका पहले प्रयोग करके अर्थात् 'भवति भिक्षां मे देहि' कहकर भिक्षा माँगे। क्षत्रिय ब्रह्मचारी वाक्यके बीचमें और वैश्य अन्तमें 'भवत्' शब्दका प्रयोग करे, अर्थात् क्षत्रिय 'भिक्षां भवति मे देहि' और वैश्य 'भिक्षां मे देहि भवति' कहे। ब्रह्मचारी सबसे पहले अपनी माता, बहिन अथवा मौसीसे भिक्षा माँगे। अपने सजातीय लोगोंके घरोंमें ही भिक्षा माँगे अथवा सभी वर्णोंके घरसे भिक्षा ले आये। भिक्षाके सम्बन्धमें दोनों ही प्रकारका विधान मिलता है। किन्तु पतित आदिके घरसे भिक्षा लाना वर्जित है। जिनके यहाँ वेदाध्ययन और यज्ञोंकी परम्परा बंद नहीं है, जो अपने कर्मके लिये सर्वत्र प्रशंसित हैं, उन्हें घरोंसे जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी प्रतिदिन भिक्षा ले आये। गुरुके कुलमें भिक्षा न माँगे। अपने कुदुम्ब, कुल और सम्बन्धियोंके यहाँ भी भिक्षाके लिये न जाय। यदि दूसरे घर न मिलें तो यथासम्भव ऊपर बताये हुए पूर्व-पूर्व गृहोंका परित्याग करके भिक्षा ले सकता है। यदि पूर्वकथनानुसार योग्य घर मिलना असम्भव हो जाय तो समुचे गाँवमें भिक्षाके लिये विचरण करे। उस समय मनको काबूमें रखकर मौन रहे और इधर-उधर दृष्टि न डाले।

इस प्रकार सरलभावसे आवश्यकतानुसार भिक्षाका संग्रह करके भोजन करे। सदा जितेन्द्रिय रहे। मौन रहकर एवं एकाग्रचित्त हो व्रतका पालन करनेवाला ब्रह्मचारी प्रतिदिन भिक्षाके अन्तर्से ही जीवन-निर्वाह करे, एक स्थानका अन्त न खाय। भिक्षासे किया हुआ निर्वाह ब्रह्मचारीके लिये उपवासके समान माना गया है। ब्रह्मचारी भोजनको सदा सम्मानकी दृष्टिसे देखे। गर्वमें

* गुरुग्रिद्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः। पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः॥

विद्या कर्म वयो बन्धुः कुलं भवति पञ्चमम्। मान्यस्थानानि पञ्चाहुः पूर्वं पूर्वं गुरुत्तरात्॥(५१।५१-५२)

† पन्था देयो ब्राह्मणाय स्त्रिये राजे विचक्षुपे। वृद्धाय भारभग्राय रोगिणे दुर्बलाय च॥(५१।५४)

आकर अन्रकी गर्हणा न करे। उसे देखकर हर्ष प्रकट करे। मनमें प्रसन्न हो और सब प्रकारसे उसका अभिनन्दन करे। अधिक भोजन आरोग्य, आयु और स्वर्गलोककी प्राप्तिमें हानि पहुँचानेवाला है; वह पुण्यका नाशक और लोक-निन्दित है। इसलिये उसका परित्याग कर देना चाहिये। पूर्वाभिमुख होकर अथवा सूर्यकी ओर मुँह करके अन्रका भोजन करना उचित है। उत्तराभिमुख होकर कदापि भोजन न करे। यह भोजनकी सनातन विधि है। भोजन करनेवाला पुरुष हाथ-पैर धो, शुद्ध स्थानमें बैठकर पहले जलसे आचमन करे; फिर भोजनके पश्चात् भी उसे दो बार आचमन करना चाहिये।

भोजन करके, जल पीकर, सोकर उठनेपर और स्नान करनेपर, गलियोंमें धूमनेपर, ओठ चाटने या स्पर्श करनेपर, वस्त्र पहननेपर, वीर्य, मूत्र और मलका त्याग करनेपर, अनुचित बात कहनेपर, थूकनेपर, अध्ययन आरम्भ करनेके समय, खाँसी तथा दम उठनेपर, चौराहे या श्मशानभूमिमें घूमकर लैटनेपर तथा दोनों संध्याओंके समय श्रेष्ठ द्विज आचमन किये होनेपर भी फिर आचमन करे। चाप्डालों और म्लेच्छोंके साथ बात करनेपर, स्त्रियों, शूद्रों तथा जूठे मुँहवाले पुरुषोंसे वार्तालाप होनेपर, जूठे मुँहवाले पुरुष अथवा जूठे भोजनको देख लेनेपर तथा आँसू या रक्त गिरनेपर भी आचमन करना चाहिये। अपने शरीरसे स्त्रियोंका स्पर्श हो जानेपर, अपने बालों तथा खिसककर गिरे हुए वस्त्रका स्पर्श कर लेनेपर धर्मकी दृष्टिसे आचमन करना उचित है। आचमनके लिये जल ऐसा होना चाहिये, जो गर्म न हो, जिसमें फेन न हो तथा जो खारा न हो। पवित्रताकी इच्छा रखनेवाला पुरुष सर्वदा पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठकर ही आचमन करे। उस समय सिर अथवा गलेको ढके रहे तथा बाल और चोटीको खुला रखे। कहींसे आया हुआ पुरुष दोनों पैरोंको धोये बिना पवित्र नहीं होता। विद्वान् पुरुष सीढ़ीपर या जलमें खड़ा होकर अथवा पगड़ी बाँधे आचमन न करे। बरसती हुई धारके जलसे अथवा खड़ा होकर या हाथसे उल्टीचे हुए जलके द्वारा आचमन करना उचित नहीं है। एक हाथसे

दिये हुए जलके द्वारा अथवा बिना यजोपवीतके भी आचमन करना निषिद्ध है। खड़ाऊँ पहने हुए अथवा घुटनोंके बाहर हाथ करके भी आचमन नहीं करना चाहिये। बोलते, हँसते, किसीकी ओर देखते तथा बिछौनेपर लेटे हुए भी आचमन करना निषिद्ध है। जिस जलको अच्छी तरह देखा न गया हो, जिसमें फेन आदि हों, जो शूद्रके द्वारा अथवा अपवित्र हाथोंसे लाया गया हो तथा जो खारा हो, ऐसे जलसे भी आचमन करना अनुचित है। आचमनके समय अँगुलियोंसे शब्द न करे, मनमें दूसरी कोई बात न सोचे। हाथसे बिलोड़े हुए जलके द्वारा भी आचमन करना निषिद्ध है। ब्राह्मण उतने ही जंलसे आचमन करनेपर पवित्र हो सकता है, जो हृदयतक पहुँच सके। क्षत्रिय कण्ठतक पहुँचनेवाले आचमनके जलसे शुद्ध होता है। वैश्य जिह्वासे जलका आस्वादन मात्र कर लेनेसे पवित्र होता है और स्त्री तथा शूद्र जलके स्पर्शमात्रसे शुद्ध हो जाते हैं।

अँगूठेकी जड़के भीतरकी रेखामें ब्राह्मतीर्थ बताया जाता है। अँगूठे और तर्जनीके बीचके भागको पितृतीर्थ कहते हैं। कानी अँगुलीके मूलसे पीछेका भाग प्राजापत्यतीर्थ कहलाता है। अँगुलियोंका अग्रभाग देवतीर्थ माना गया है। उसीको आर्षतीर्थ भी कहते हैं। अथवा अँगुलियोंके मूलभागमें दैव और आर्षतीर्थ तथा मध्यमें आग्रेय तीर्थ है। उसीको सौमिक तीर्थ भी कहते हैं। यह जानकर मनुष्य मोहमें नहीं पड़ता। ब्राह्मण सदा ब्राह्मतीर्थसे ही आचमन करे अथवा देवतीर्थसे आचमनकी इच्छा रखे। किन्तु पितृ-तीर्थसे कदापि आचमन न करे। पहले मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर ब्राह्मतीर्थसे तीन बार आचमन करे। फिर अँगूठेके मूलभागसे मुँहको पोंछते हुए उसका स्पर्श करे। तत्पश्चात् अँगूठे और अनामिका अँगुलियोंसे दोनों नेत्रोंका स्पर्श करे। फिर तर्जनी और अँगूठेके योगसे नाकके दोनों छिद्रोंका, कनिष्ठा और अँगूठेके संयोगसे दोनों कानोंका, सम्पूर्ण अँगुलियोंके योगसे हृदयका, करतलसे मस्तकका और अँगूठेसे दोनों कंधोंका स्पर्श करे।

द्विज तीन बार जो जलका आचमन करता है, उससे ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी तृप्त होते हैं—ऐसा हमारे सुननेमें आया है। मुखका परिमार्जन करनेसे गङ्गा और यमुनाको तृप्ति होती है। दोनों नेत्रोंके स्पर्शसे सूर्य और चन्द्रमा प्रसन्न होते हैं। नासिकाके दोनों छिद्रोंका स्पर्श करनेसे अश्विनीकुमारोंकी तथा कानोंके स्पर्शसे वायु और अग्निकी तृप्ति होती है। हृदयके स्पर्शसे सम्पूर्ण देवता प्रसन्न होते हैं और मस्तकके स्पर्शसे वह अद्वितीय पुरुष (अन्तर्यामी) प्रसन्न होता है। मधुपर्क, सोमरस, पान, फल, मूल तथा गत्रा—इन सबके खाने-पीनेमें मनुजीने दोष नहीं बताया है—उससे मुँह जूठा नहीं होता। अन्न खाने या जल पीनेके लिये प्रवृत्त होनेवाले मनुष्यके हाथमें यदि कोई वस्तु हो तो उसे पृथ्वीपर रखकर आचमनके पश्चात् उसपर भी जल छिड़क देना चाहिये। जिस-जिस वस्तुको हाथमें लिये हुए मनुष्य अपना मुँह जूठा करता है, उसे यदि पृथ्वीपर न रखे तो वह स्वयं भी अशुद्ध ही रह जाता है। वस्त्र आदिके विषयमें विकल्प है—उसे पृथ्वीपर रखा भी जा सकता है और नहीं भी। उसका स्पर्श करके आचमन करना चाहिये। रातके समय जंगलमें चोर और व्याघ्रोंसे भरे हुए रास्तेपर चलनेवाला पुरुष द्रव्य हाथमें लिये हुए भी मल-मूत्रका त्याग करके दूषित नहीं होता। यदि दिनमें शौच जाना हो तो जनेऊको दाहिने कानपर चढ़ाकर उत्तरभिमुख हो मल-मूत्रका त्याग करे। यदि रात्रिमें जाना पड़े तो दक्षिणकी ओर मुँह करके बैठना चाहिये। पृथ्वीको लकड़ी, पत्ते, मिट्टी, ढेले अथवा घाससे ढककर तथा अपने मस्तकको भी वस्त्रसे आच्छादित करके मल-

मूत्रका त्याग करना चाहिये। किसी पेड़की छायामें, कुएँके पास, नदीके किनारे, गोशाला, देवमन्दिर तथा जलमें, रास्तेपर, राखपर, अग्निमें तथा शमशान-भूमिमें भी मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये। गोबरपर, काठपर, बहुत बड़े वृक्षपर तथा हरी-भरी घासमें भी मल-मूत्र करना निषिद्ध है। खड़े होकर तथा नग्न होकर भी मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये। पर्वतमण्डलमें, पुराने देवालयमें, बाँबीपर तथा किसी भी गड्ढमें मल-मूत्रका त्याग वर्जित है। चलते-चलते भी पाखाना और पेशाब नहीं करना चाहिये। भूसी, कोयले तथा ठीकरेपर, खेतमें, बिलमें, तीर्थमें, चौराहेपर अथवा सड़कपर, बगीचेमें, जलके निकट, ऊसर भूमिमें तथा नगरके भौतर—इन सभी स्थानोंमें मल-मूत्रका त्याग मना है।

खड़ाऊँ या जूता पहनकर, छाता लगाकर, अन्तरिक्षमें, स्त्री, गुरु, ब्राह्मण, गौ, देवता, देवालय तथा जलकी ओर मुँह करके, नक्षत्रों तथा ग्रहोंको देखते हुए अथवा उनकी ओर मुँह करके तथा सूर्य, चन्द्रमा और अग्निकी ओर दृष्टि करके भी कभी मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये। शौच आदि होनेके पश्चात् कहीं किनारेसे लेप और दुर्गन्धको मिटानेवाली मिट्टी लेकर आलस्यरहित हो विशुद्ध एवं बाहर निकाले हुए जलसे हाथ आदिकी शुद्धि करे। ब्राह्मणको उचित है कि वह रेत मिली हुई अथवा कीचड़की मिट्टी न ले। रास्तेसे, ऊसर भूमिसे तथा दूसरोंके शौचसे बची हुई मिट्टीको भी काममें न ले। देवमन्दिरसे, कुएँसे, घरकी दीवारसे और जलसे भी मिट्टी न ले। तदनन्तर, हाथ-पैर धोकर प्रतिदिन पूर्वोक्त विधिसे आचमन करना चाहिये।



ब्रह्मचारी शिष्यके धर्म

व्यासजी कहते हैं—महर्षियो ! इस प्रकार दण्ड, मेखला, मृगचर्म आदिसे युक्त तथा शौचाचारसे सम्पन्न ब्रह्मचारी गुरुके मुँहकी ओर देखता रहे और जब वे बुलायें तभी उनके पास जाकर अध्ययन करे। सदा हाथ जोड़े रहे, सदाचारी और संयमी बने। जब गुरु बैठनेकी

आज्ञा दें, तब उनके सामने बैठे। गुरुकी बातका श्रवण और गुरुके साथ वार्तालाप—ये दोनों कार्य लेटे-लेटे न करे और भोजन करते समय भी न करे। उस समय न तो खड़ा रहे और न दूसरी ओर मुख ही फेरे। गुरुके समीप शिष्यकी शर्व्या और आसन सदा नीचे रहने

चाहिये। जहाँतक गुरुकी दृष्टि पड़ती हो, वहाँतक मनमाने आसनपर न बैठे। गुरुके परोक्षमें भी उनका नाम न ले। उनकी चाल, उनकी बोली तथा उनकी चेष्टाका अनुकरण न करे। जहाँ गुरुपर लाञ्छन लगाया जाता हो अथवा उनकी निन्दा हो रही हो, वहाँ कान मूँद लेने चाहिये अथवा वहाँसे अन्यत्र हट जाना चाहिये। दूर खड़ा होकर, क्रोधमें भरकर अथवा खीके समीप रहकर गुरुकी पूजा न करे। गुरुकी बातोंका प्रत्युत्तर न दे। यदि गुरु पास ही खड़े हों तो स्वयं भी बैठा न रहे। गुरुके लिये सदा पानीका घड़ा, कुश, फूल और समिधा लाया करे। प्रतिदिन उनके आँगनमें झाड़ू देकर उसे लीप-पोत दे। गुरुके उपभोगमें आयी हुई वस्तुओंपर, उनकी शश्या, खड़ाऊँ, जूते, आसन तथा छाया आदिपर कभी पैर न रखे। गुरुके लिये दाँतन आदि ला दिया करे। जो कुछ ग्रास हो, उन्हें निवेदन कर दे। उनसे पूछे बिना कहीं न जाय और सदा उनके प्रिय एवं हितमें संलग्न रहे। गुरुके समीप कभी पैर न फैलाये। उनके सामने जँभाई लेना, हँसना, गला ढँकना और अँगड़ाई लेना सदाके लिये छोड़ दे। समयानुसार गुरुसे, जबतक कि वे पढ़ानेसे उदासीन न हो जायें, अध्ययन करे। गुरुके पास नीचे बैठे। एकाग्र चित्तसे उनकी सेवामें लगा रहे। गुरुके आसन, शश्या और सवारीपर कभी न बैठे। गुरु यदि दौड़ते हों तो उनके पीछे-पीछे स्वयं भी दौड़े। वे चलते हों तो स्वयं भी पीछे-पीछे जाय। बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी, कैटगाड़ी, महलकी अटारी, कुशकी चटाई, शिलाखण्ड तथा नावपर गुरुके साथ शिष्य भी बैठ सकता है।

शिष्यको सदा जितेन्द्रिय, जितात्मा, क्रोधहीन और पवित्र रहना चाहिये। वह सदा मधुर और हितकारी वचन बोले। चन्दन, माला, स्वाद, शूङ्गार, सीपी, ग्राणियोंकी हिसा, तेलकी मालिश, सुरमा, शर्बत आदि पेय, छत्रधारण, काम, लोभ, भय, निद्रा, गाना-ब़जाना, दूसरोंको फटकारना, किसीपर लाञ्छन लगाना, खींकी ओर देखना, उसका स्पर्श करना, दूसरेका घात करना तथा चुगली खाना—इन दोषोंका यत्पूर्वक परित्याग करे। जलसे भरा हुआ घड़ा, फूल, गोबर, मिठी और

कुश—इन वस्तुओंका आवश्यकताके अनुसार संग्रह करे तथा अन्नकी भिक्षा लेनेके लिये प्रतिदिन जाय। धी, नमक और बासी अन्न ब्रह्मचारीके लिये वर्जित हैं। वह कभी नृत्य न देखे। सदा सङ्गीत आदिसे निःस्पृह रहे। न सूर्यकी ओर देखे न दाँतन करे। उसके लिये खियोंके साथ एकान्तमें रहना और शूद्र आदिके साथ वार्तालाप करना भी निषिद्ध है। वह गुरुके उच्छिष्ट औषध और अन्नका स्वेच्छासे उपयोग न करे।

ब्राह्मण गुरुके परित्यागका किसी तरह विचार भी मनमें न लाये। यदि मोह या लोभवश वह उन्हें त्याग दे तो पतित हो जाता है। जिनसे लौकिक, वैदिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया जाता है, उन गुरुदेवसे कभी द्रोह न करे। गुरु यदि घमंडी, कर्तव्य-अकर्तव्यको न जाननेवाला और कुमार्गामी हो तो मनुजीने उसका त्याग करनेका आदेश दिया है। गुरुके गुरु समीप आ जायें तो उनके प्रति भी गुरुकी ही भाँति बर्ताव करना चाहिये। नमस्कार करनेके पश्चात् जब वे गुरुजी आज्ञा दें, तब आकर अपने गुरुओंको प्रणाम करना चाहिये। जो विद्यागुरु हों, उनके प्रति भी यही बर्ताव करना चाहिये। जो योगी हों, जो अधर्मसे रोकने और हितका उपदेश करनेवाले हों, उनके प्रति भी सदा गुरुजनोचित बर्ताव करना चाहिये। गुरुके पुत्र, गुरुकी पत्नी तथा गुरुके बन्धु-बन्धवोंके साथ भी सदा अपने गुरुके समान ही बर्ताव करना उचित है। इससे कल्याण होता है। बालक अथवा शिष्य यज्ञकर्ममें माननीय पुरुषोंका आदर करे। यदि गुरुका पुत्र भी पढ़ाये तो गुरुके समान ही सम्मान पानेका अधिकारी है। किन्तु गुरुपुत्रके शरीर दबाने, नहलाने, उच्छिष्ट भोजन करने तथा चरण धोने आदिका कार्य न करे। गुरुकी खियोंमें जो उनके समान वर्णकी हों, उनका गुरुकी भाँति सम्मान करना चाहिये तथा जो समान वर्णकी न हों, उनका अभ्युत्थान और प्रणाम आदिके द्वारा ही सत्कार करना चाहिये। गुरुपत्रीके प्रति तेल लगाने, नहलाने, शरीर दबाने और केशोंका शूङ्गार करने आदिकी सेवा न करे। यदि गुरुकी खींकी युक्ती हो तो उसका चरण-स्पर्श करके

प्रणाम नहीं करना चाहिये; अपितु 'मैं अमुक हूँ', यह कहकर पृथ्वीपर ही मस्तक टेकना चाहिये। सत्पुरुषोंके धर्मका निरन्तर स्मरण करनेवाले शिष्यको उचित है कि वह बाहरसे आनेपर प्रतिदिन गुरुपत्नीका चरण-स्पर्श एवं प्रणाम करे। मौसी, मामी, सास, बुआ—ये सब गुरुपत्नीके समान हैं। अतः गुरुपत्नीकी भाँति इनका भी आदर करना चाहिये। अपने बड़े भाइयोंकी सर्वणि स्त्रियोंका प्रतिदिन चरण-स्पर्श करना उचित है। परदेशसे आनेपर अपने कुटुम्बी और सम्बन्धियोंकी सभी श्रेष्ठ स्त्रियोंके चरणोंमें मस्तक झुकाना चाहिये। बुआ, मौसी तथा बड़ी बहिनके साथ माताकी ही भाँति बर्ताव करना चाहिये, इन सबकी अपेक्षा माताका गौरव अधिक है।

जो इस प्रकार सदाचारसे सम्पन्न, अपने मनको वशमें रखनेवाला और दम्भहीन शिष्य हो, उसे प्रतिदिन वेद, धर्मशास्त्र और पुण्योंका अध्ययन कराना चाहिये। जब शिष्य सालभरतक गुरुकुलमें निवास कर ले और उस समयतक गुरु उसे ज्ञानका उपदेश न करे तो वह अपने पास रहनेवाले शिष्यके सारे पापोंको हर लेता है। आचार्यका पुत्र, सेवापरायण, ज्ञान देनेवाला, धर्मात्मा, पवित्र, शक्तिशाली, अन्न देनेवाला, पानी पिलानेवाला, साधु पुरुष और अपना शिष्य—ये दस प्रकारके पुरुष धर्मतः पढ़ानेके योग्य हैं।* कृतज्ञ, द्रोह न रखनेवाला, मेधावी, गुरु बनानेवाला, विश्वासपात्र और प्रिय—ये छः प्रकारके द्विज विधिपूर्वक अध्ययन करानेके योग्य हैं। शिष्य आचमन करके संयमशील हो उत्तराभिमुख बैठकर प्रतिदिन स्वाध्याय करे। गुरुके चरणोंमें प्रणाम करके उनका मुँह जोहता रहे। जब गुरु कहें—'सौम्य ! आओ, पढ़ो,' तब उनके पास जाकर पाठ पढ़े और जब वे कहें कि 'अब याठ बंद करना चाहिये', तब पाठ बंद कर दे। अग्रिके पूर्व आदि दिशाओंमें कुश बिछाकर उनकी उपासना करे। तीन प्राणायामोंसे पवित्र होकर ब्रह्मचारी ३ँकारके जपका अधिकारी होता है।

ब्राह्मणो ! विप्रको अध्ययनके आदि और अन्तमें भी विधिपूर्वक प्रणवका जप करना चाहिये। प्रतिदिन पहले वेदको अञ्जलि देकर उसका अध्ययन कराना चाहिये। वेद सम्पूर्ण भूतोंके सनातन नेत्र हैं; अतः प्रतिदिन उनका अध्ययन करे अन्यथा वह ब्राह्मणत्वसे गिर जाता है। जो नित्यप्रति ऋग्वेदका अध्ययन करता है, वह दूधकी आहुतिसे; जो यजुर्वेदका पाठ करता है, वह दहीसे; जो सामवेदका अध्ययन करता है, वह घीकी आहुतियोंसे तथा जो अर्थवेदका पाठ करता है, वह सदा मधुसे देवताओंको तृप्त करता है। उन देवताओंके समीप नियमपूर्वक नित्यकर्मका आश्रय ले वनमें जा एकाग्र चित्त हो गायत्रीका जप करे। प्रतिदिन अधिक-से-अधिक एक हजार, मध्यम स्थितिमें एक सौ अथवा कम-से-कम दस बार गायत्री देवीका जप करना चाहिये; यह जपयज्ञ कहा गया है। भगवान् गायत्री और वेदोंको तराजूपर रखकर तोला था, एक ओर चारों वेद थे और एक ओर केवल गायत्री-मन्त्र। दोनोंका पलड़ा बराबर रहा।† द्विजको चाहिये कि वह श्रद्धालु एवं एकाग्र चित्त होकर पहले ओङ्कारका और फिर व्याहतियोंका उच्चारण करके गायत्रीका उच्चारण करे। पूर्व कल्पमें 'भूः', 'भुवः' और 'स्वः'—ये तीन सनातन महाव्याहतियाँ उत्पन्न हुईं, जो सब प्रकारके अमङ्गलका नाश करनेवाली हैं। ये तीनों व्याहतियाँ क्रमशः प्रधान, पुरुष और कालका, विष्णु, ब्रह्मा और महादेवजीका तथा सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणका प्रतीक मानी गयी हैं। पहले 'ओ' उसके बाद 'ब्रह्म' तथा उसके पश्चात् गायत्रीमन्त्र—इन सबको मिलाकर यह महायोग नामक मन्त्र बनता है, जो सारसे भी सार बताया गया है। जो ब्रह्मचारी प्रतिदिन इस वेदमाता गायत्रीका अर्थ समझकर जप करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। गायत्री वेदोंकी जननी है, गायत्री सम्पूर्ण संसारको पवित्र करनेवाली है। गायत्रीसे बढ़कर दूसरा कोई जपने योग्य

* आचार्यपत्रः शश्रूषानिदो धार्मिकः शुचिः। शक्तोऽन्नदोऽन्नबुदः साधुः स्वोऽध्याप्या दश धर्मतः ॥(५३ । ४०)

† गायत्रीं चैव वेदांश्च तुलयातोल्यत्रभुः। एकतश्चतुरो वेदा गायत्री च तथैकतः ॥(५३ । ५२)

मन्त्र नहीं है। यह जानकर मनुष्य मुक्त हो जाता है।*

द्विजवरो! आषाढ़, श्रावण अथवा भादोंकी पूर्णिमाको वेदोंका उपाकर्म बताया गया है अर्थात् उक्त तिथिसे वेदोंका स्वाध्याय प्रारम्भ किया जाता है। जबतक सूर्य दक्षिणायनके मार्गपर चलते हैं, तबतक अर्थात् साढ़े चार महीने प्रतिदिन पवित्र स्थानमें बैठकर ब्रह्मचारी एकाग्रतापूर्वक वेदोंका स्वाध्याय करे। तत्पश्चात् द्विज पुष्ट्यनक्षत्रमें घरके बाहर जाकर वेदोंका उत्सर्ग—स्वाध्यायकी समाप्ति करे। शुक्रपक्षमें प्रातःकाल और कृष्णपक्षमें संध्याके समय वेदोंका स्वाध्याय करना चाहिये।

वेदोंका अध्ययन, अध्यापन प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करनेवाले पुरुषको नीचे लिखे अनध्यायोंके समय सदा ही अध्ययन बंद रखना चाहिये। यदि रातमें ऐसी तेज हवा चले, जिसकी सनसनाहट कानोंमें गूँज उठे तथा दिनमें धूल उड़ानेवाली आँधी चलने लगे तो अनध्याय होता है। यदि बिजलीकी चमक, मेघोंकी गर्जना, वृष्टि तथा महान् उल्कापात हो तो प्रजापति मनुने अकालिक अनध्याय बताया है—ऐसे अवसरोंपर उस समयसे लेकर दूसरे दिन उसी समयतक अध्ययन रोक देना उचित है। यदि अग्निहोत्रके लिये अग्नि प्रज्वलित करनेपर इन उत्पातोंका उदय जान पड़े तो वर्षाकालमें अनध्याय समझना चाहिये तथा वर्षासे भिन्न ऋतुमें यदि बादल दीख भी जाय तो अध्ययन रोक देना चाहिये। वर्षाऋतुमें और उससे भिन्न कालमें भी यदि उत्पात-सूचक शब्द, भूकम्प, चन्द्र-सूर्यादि ज्योतिर्मय ग्रहोंके उपद्रव हों तो अकालिक (उस समयसे लेकर दूसरे दिन उसी समयतक) अनध्याय समझना चाहिये। यदि प्रातःकालमें होमाग्नि प्रज्वलित होनेपर बिजलीकी गङ्गाझाहट और मेघकी गर्जना सुनायी दे तो सज्योति अनध्याय होता है अर्थात् ज्योति—सूर्यके रहनेतक ही

अध्ययन बंद रहता है। इसी प्रकार रातमें भी अग्नि प्रज्वलित होनेके पश्चात् यदि उक्त उत्पात हो तो दिनको ही भाँति सज्योति—ताराओंके दीखनेतक अनध्याय माना जाता है। धर्मकी निपुणता चाहनेवाले पुरुषोंके लिये गाँवों, नगरों तथा दुर्गन्ध्यपूर्ण स्थानोंमें सदा ही अनध्याय रहता है। गाँवके भीतर मुर्दा रहनेपर, शूद्रकी समीपता होनेपर, रोनेका शब्द कानमें पड़नेपर तथा मनुष्योंकी भारी भीड़ रहनेपर भी सदा ही अनध्याय होता है। जलमें, आधी रातके समय, मल-मूत्रका त्याग करते समय, जूठा मुँह रहनेपर तथा श्राद्धका भोजन कर लेनेपर मनसे भी वेदका चिन्तन नहीं करना चाहिये। विद्वान् ब्राह्मण एकोद्दिष्ट श्राद्धका निमन्त्रण लेकर तीन दिनोंतक वेदोंका अध्ययन बंद रखे। राजाके यहाँ सूतक (जननाशौच) हो या ग्रहणका सूतक लगा हो, तो भी तीन दिनोंतक वेद-मन्त्रोंका उच्चारण न करे। एकोद्दिष्टमें सम्मिलित होनेवाले विद्वान् ब्राह्मणके शरीरमें जबतक श्राद्धके चन्दनकी सुगन्ध और लेप रहे, तबतक वह वेद-मन्त्रका उच्चारण न करे। लेटकर, पैर फैलाकर, घुटने मोड़कर तथा शूद्रका श्राद्धान्त्र भोजन करके वेदाध्ययन न करे। कुहरा पड़नेपर, बाणका शब्द होनेपर, दोनों संध्याओंके समय, अमावास्या, चतुर्दशी, पूर्णिमा तथा अष्टमीको भी वेदाध्ययन निषिद्ध है। वेदोंके उपाकर्मके पहले और उत्सर्गके बाद तीन राततक अनध्याय माना गया है। अष्टका तिथियोंको एक दिन-रात तथा ऋतुके अन्तकी रात्रियोंको रातभर अध्ययन निषिद्ध है। मार्गशीर्ष, पौष और माघ मासके कृष्णपक्षमें जो अष्टमी तिथियाँ आती हैं, उन्हें विद्वान् पुरुषोंने तीन अष्टकाओंके नामसे कहा है। बहेड़ा, सेमल, महुआ, कचनार और कैथ—इन वृक्षोंकी छायामें कभी वेदाध्ययन नहीं करना चाहिये। अपने सहपाठी अथवा साथ रहनेवाले ब्रह्मचारी या आचार्यकी

* ओऽक्षुरस्तपरं ब्रह्म साक्षिं स्यात्दुत्तरम्। एष मन्त्रो महायोगः सारात् सार उदाहृतः ॥
योऽधीतेऽहन्यहन्येतां गायत्रीं वेदमातरम्। विज्ञायार्थं ब्रह्मचारी स याति परमां गतिम् ॥
गायत्रीं वेदजननी गायत्रीं लोकपावनी। गायत्रा न परं जप्यमेतद्विज्ञाय मुच्यते ॥ (५३ । ५६—५८)

मृत्यु हो जानेपर तीन राततक अनध्याय माना गया है। ये अवसर वेदपाठी ब्राह्मणोंके लिये छिद्ररूप हैं, अतः अनध्याय कहे गये हैं। इनमें अध्ययन करनेसे रक्षस हिंसा करते हैं; अतः इन अनध्यायोंका त्याग कर देना चाहिये। नित्य कर्ममें अनध्याय नहीं होता। संध्योपासन भी बराबर चलता रहता है। उपाकर्ममें, उत्सर्गमें, होमके अन्तमें तथा अष्टकाकी आदि तिथियोंको वायुके चलते रहनेपर भी स्वाध्याय करना चाहिये। वेदाङ्गों, इतिहास-पुराणों तथा अन्य धर्मशास्त्रोंके लिये भी अनध्याय नहीं हैं। इन सबको अनध्यायकी कोटिसे पृथक् समझना चाहिये।

यह मैंने ब्रह्मचारीके धर्मका संक्षेपसे वर्णन किया है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने शुद्ध अन्तःकरणवाले ऋषियोंके सामने इस धर्मका प्रतिपादन किया था। जो द्विज वेदका अध्ययन न करके दूसरे शास्त्रोंमें परिश्रम करता है, वह मूढ़ और वेदबाह्य माना गया है। द्विजातियोंको उससे

बात नहीं करनी चाहिये। द्विजको केवल वेदोंके पाठ मात्रसे ही संतोष नहीं कर लेना चाहिये। जो केवल पाठ मात्रमें लगा रह जाता है, वह कीचड़में फँसी हुई गौकी भाँति कष्ट उठाता है। जो विधिपूर्वक वेदका अध्ययन करके उसके अर्थका विचार नहीं करता, वह मूढ़ एवं शूद्रके समान है। वह सुपात्र नहीं होता*। यदि कोई सदाके लिये गुरुकुलमें वास करना चाहे तो सदा उद्यत रहकर शरीर छूटनेतक गुरुकी सेवा करता रहे। वनमें जाकर विधिवत् अग्निमें होम करे तथा ब्रह्मनिष्ठ एवं एकाग्रचित् होकर सदा स्वाध्याय करता रहे। वह भिक्षाके अन्नपर निर्भर रहकर योगयुक्त हो सदा गायत्रीका जप और शतरुद्रिय तथा विशेषतः उपनिषदोंका अभ्यास करता रहे। वेदाध्ययनके विषयमें जो यह परम प्राचीन विधि है, इसका भलीभाँति मैंने आपलेगोंसे वर्णन किया है। पूर्वकालमें श्रेष्ठ महर्षियोंके पूछनेपर दिव्यशक्तिसम्पन्न स्वायम्भुव मनुने इसका प्रतिपादन किया था।



स्नातक और गृहस्थके धर्मोंका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! श्रेष्ठ ब्रह्मचारी अपनी शक्तिके अनुसार एक, दो, तीन अथवा चारों वेदों तथा वेदाङ्गोंका अध्ययन करके उनके अर्थको भलीभाँति हृदयङ्गम करके ब्रह्मचर्य-व्रतकी समाप्तिका स्नान करे । गुरुको। दक्षिणारूपमें धन देकर उनकी आज्ञा ले स्नान करना चाहिये। व्रतको पूरा करके मनको काबूमें रखनेवाला समर्थ पुरुष स्नातक होनेके योग्य है। वह बाँसकी छड़ी, अधोवस्त्र तथा उत्तरीय (चादर) धारण करे। एक जोड़ा यज्ञोपवीत और जलसे भरा हुआ कमण्डलु धारण करे। बाल और नख कटाकर स्नान आदिसे शुद्ध हो उसे छाता, साफ पगड़ी, खड़ाऊँ या

जूता तथा सोनेके कुण्डल धारण करने चाहिये। ब्राह्मण सोनेकी मालाके सिवा दूसरी कोई लाल रङ्गकी माला न धारण करे। वह सदा श्वेत वस्त्र पहने, उत्तम गन्धका सेवन करे और वेष-भूषा ऐसी रखे, जो देखनेमें प्रिय जान पड़े। धन रहते हुए फटे और मैले वस्त्र न पहने। अधिक लाल और दूसरेके पहने हुए वस्त्र, कुण्डल, माला, जूता और खड़ाऊँको अपने काममें न लाये। यज्ञोपवीत, आभूषण, कुश और काला मृगचर्म—इन्हें अपसव्य भावसे न धारण करे। अपने योग्य स्त्रीसे विधिपूर्वक विवाह करे। स्त्री शुभ गुणोंसे युक्त, रूपवती, सुलक्षणा और योनिगत दोषोंसे रहित होनी चाहिये।

* योऽन्यत्र कुरुते यत्नमनधीत्य श्रुति द्विजः। स सम्मूढो न सम्बाष्यो वेदबाह्यो द्विजातिभिः ॥

न वेदपाठमात्रेण संतुष्टो वै भवेत् द्विजः। पाठमात्रावसन्नस्तु पङ्के गौरिव सीदति ॥

योऽधीत्य विधिवदेव वेदार्थं न विचारयेत्। स सम्मूढः शूद्रकल्पः पात्रतां न प्रपद्यते ॥ (५३। ८४—८६)

† वेदं वेदौ तथा वेदान् वेदाङ्गानि तथा द्विजाः। अधीत्य चाधिगम्यार्थं ततः स्नायाद् द्विजोत्तमः ॥ (५४। १)

माताके गोत्रमें जिसका जन्म न हुआ हो, जो अपने गोत्रमें उत्पन्न न हुई हो तथा उत्तम शील और पवित्रतासे युक्त हो, ऐसी भाव्यसे ब्राह्मण विवाह करे। जबतक पुत्रका जन्म न हो, तबतक केवल ऋतुकालमें खीके साथ समागम करे। इसके लिये शास्त्रोंमें जो निषिद्ध दिन हैं, उनका यत्नपूर्वक त्याग करे। षष्ठी, अष्टमी, पूर्णिमा, द्वादशी तथा चतुर्दशी—ये तिथियाँ खी-समागमके लिये निषिद्ध हैं। उक्त नियमोंका पालन करनेसे गृहस्थ भी सदा ब्रह्मचारी ही माना जाता है। विवाह-कालकी अग्रिमोंसे सदा स्थापित रखे और उसमें अभिदेवताके निमित्त प्रतिदिन हवन करे। खातक पुरुष इन पावन नियमोंका सदा ही पालन करे।

अपने [वर्ण और आश्रमके लिये विहित] वेदोक्त कर्मका सदा आलस्य छोड़कर पालन करना चाहिये। जो नहीं करता, वह अत्यन्त भयंकर नरकोंमें पड़ता है। सदा संयमशील रहकर वेदोंका अध्यास करे, पञ्च महायज्ञोंका त्याग न करे, गृहस्थोचित समस्त शुभ कार्य और संध्योपासन करता रहे। अपने समान तथा अपनेसे बड़े पुरुषोंके साथ मित्रता करे, सदा ही भगवान्की शरणमें रहे। देवताओंके दर्शनके लिये यात्रा करे तथा पलीका पालन-पोषण करता रहे। विद्वान् पुरुष लोगोंमें अपने किये हुए धर्मकी प्रसिद्धि न करे तथा पापको भी न छिपाये। सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करते हुए सदा अपने हितका साधन करे। अपनी वय, क्रम, धन, विद्या, उत्तम कुल, देश, वाणी और बुद्धिके अनुरूप आचरण करते हुए सदा विचरण करता रहे। श्रुतियों और सूत्रियोंमें जिसका विधान हो तथा साधु पुरुषोंने जिसका भलीभाँति सेवन किया हो, उसी आचारका पालन करे; अन्य कार्योंके लिये कदापि चेष्टा न करे। जिसका उसके पिताने अनुसरण किया हो तथा जिसका पितामहोंने किया हो, उसी वृत्तिसे वह भी सत्पुरुषोंके मार्गपर चले; उसका अनुसरण करनेवाला पुरुष दोषका भागी नहीं होता। प्रतिदिन स्वाध्याय करे, सदा यज्ञोपवीत धारण किये रहे तथा सर्वदा सत्य बोले। क्रोधको जीते और लोभ-मोहका परित्याग कर दे। गायत्रीका जप तथा

पितरोंका श्राद्ध करनेवाला गृहस्थ मुक्त हो जाता है। माता-पिताके हितमें संलग्न, ब्राह्मणोंके कल्याणमें तत्पर, दाता, याज्ञिक और वेदभक्त गृहस्थ ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। सदा ही धर्म, अर्थ एवं कामका सेवन करते हुए प्रतिदिन देवताओंका पूजन करे और शुद्धभावसे उनके चरणोंमें मस्तक झुकाये। बलिवैश्वदेवके द्वारा सबको अन्नका भाग दे। निरन्तर क्षमाभाव रखे और सबपर दयाभाव बनाये रहे। ऐसे पुरुषको ही गृहस्थ कहा गया है; केवल घरमें रहनेसे कोई गृहस्थ नहीं हो सकता।

क्षमा, दया, विज्ञान, सत्य, दम, शम, सदा अध्यात्मचिन्तन तथा ज्ञान—ये ब्राह्मणके लक्षण हैं। श्रेष्ठ ब्राह्मणको उचित है कि वह विशेषतः इन गुणोंसे कभी च्युत न हो। अपनी शक्तिके अनुसार धर्मका अनुष्ठान करते हुए निन्दित कर्मोंको त्याग दे। मोहरूपी कीचड़को धोकर परम उत्तम ज्ञानयोगको प्राप्त करके गृहस्थ पुरुष संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है—इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये।

निर्दा, पराजय, आक्षेप, हिंसा, बन्धन और वधको तथा दूसरोंके क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंको सह लेना क्षमा है। अपने दुःखमें करुणा तथा दूसरोंके दुःखमें सौहार्द—स्नेहपूर्ण सहानुभूतिके होनेको मुनियोंने दया कहा है, जो धर्मका साक्षात् साधन है। छहों अङ्ग, चारों वेद, मीमांसा, विस्तृत न्याय-शास्त्र, पुराण और धर्मशास्त्र—ये चौदह विद्याएँ हैं। इन चौदह विद्याओंको यथार्थरूपसे धारण करना—इसीको विज्ञान समझना चाहिये। जिससे धर्मकी वृद्धि होती है। विधिपूर्वक विद्याका अध्ययन करके तथा धनका उपार्जन कर धर्म-कार्यका अनुष्ठान करे—इसे भी विज्ञान कहते हैं। सत्यसे मनुष्यलोकपर विजय पाता है, वह सत्य ही परम पद है। जो बात जैसे हुई हो उसे उसी रूपमें कहनेको मनीषी पुरुषोंने सत्य कहा है। शरीरकी उपरामताका नाम दम है। बुद्धिकी निर्मलतासे शम सिद्ध होता है। अक्षर (अविनाशी) पदको अध्यात्म समझना चाहिये; जहाँ जाकर मनुष्य शोकमें नहीं पड़ता। जिस विद्यासे षड्विधि

ऐश्वर्ययुक्त परम देवता साक्षात् भगवान् हृषीकेशका ज्ञान होता है, उसे ज्ञान कहा गया है। जो विद्वान् ब्राह्मण उस ज्ञानमें स्थित, भगवत्परायण, सदा ही क्रोधसे दूर रहनेवाला, पवित्र तथा महायज्ञके अनुष्ठानमें तत्पर रहनेवाला है, वह उस उत्तम पदको प्राप्त कर लेता है। यह मनुष्य-शरीर धर्मका आश्रय है, इसका यत्पूर्वक पालन करना चाहिये; क्योंकि देहके बिना कोई भी पुरुष परमात्मा श्रीविष्णुका ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। द्विजको चाहिये कि वह सदा नियमपूर्वक रहकर धर्म, अर्थ और कामके साधनमें लगा रहे। धर्महीन काम या अर्थका कभी

मनसे चिन्तन भी न करे। धर्मपर चलनेसे कष्ट हो, तो भी अधर्मका आचरण नहीं करना चाहिये; क्योंकि धर्म-देवता साक्षात् भगवान्के स्वरूप हैं; वे ही सब प्राणियोंकी गति हैं। द्विज सब भूतोंका प्रिय करनेवाला बने; दूसरोंके प्रति द्रोहभावसे किये जानेवाले कर्ममें मन न लगाये; वेदों और देवताओंकी निन्दा न करे तथा निन्दा करनेवालोंके साथ निवास भी न करे। जो ब्राह्मण प्रतिदिन नियमपूर्वक रहकर पवित्रताके साथ इस धर्माध्यायको पढ़ता, पढ़ाता अथवा सुनाता है, वह ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है।*



* श्रुतिसूत्रयुक्त: सम्यक्साधुभिर्यश सेवितः । तमाचारं निषेवेत नेहेतान्यत्र कर्हिचित् ॥
 येनास्य पितरो यता येन याताः पितामहाः । तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन्न दुष्यति ॥
 नित्यं स्वाध्यायशीलः स्यान्त्रित्यं यज्ञोपवीतवान् । सत्यवादी जितक्रोधो लोभमोहविवर्जितः ॥
 सावित्रीजापनिरतः श्राद्धकृन्मुच्यते गृही । मातापित्रोहिते युत्तो ब्राह्मणस्य हिते रतः ॥
 दाता यज्वा वेदभक्तो ब्रह्मलोके महीयते । व्रिवर्गसेवी सततं देवानां च समर्चनम् ॥
 कुर्यादहरहर्नित्यं नमस्येत्यतः सुरान् । विभागशीलः सततं क्षमायुक्तो दयालुकः ॥
 गृहस्थस्तु समाख्यातो न गृहेण गृही भवेत् ॥
 क्षमा दया च विज्ञानं सत्यं चैव दमः शमः । अध्यात्मनित्यता ज्ञानमेतद् ब्राह्मणलक्षणम् ॥
 एतस्मान्न प्रमाद्येत विशेषेण द्विजोत्तमः । यथाशक्ति चरन् धर्मं निन्दितानि विवर्जयेत् ॥
 विधूय मोहकलिङ्गं लब्ध्वा योगमनुत्तमम् । गृहस्थो मुच्यते बन्धानात्र कार्या विचारणा ॥
 विगर्हीतिजयाक्षेपहिसाबन्धवधात्मनाम् । अन्यमन्युसमुत्थानां दोषाणां मर्षणं क्षमा ॥
 स्वदुःखेषु च कारुण्यं परदुःखेषु सौहदम् । दयेति मुनयः प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य साधनम् ॥
 अङ्गानि वेदाश्तत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः । पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या एताश्तुर्दशा ॥
 चतुर्दशानां विद्यानां धारणा हि यथार्थतः । विज्ञानमिति तद्विद्याद्येन धर्मो विवर्धते ॥
 अधीत्य विधिवद्विद्यामर्थं चैवोपलभ्य तु । धर्मकर्मणि कुर्वीत ह्येतद्विज्ञानमुच्यते ॥
 सत्येन लोकं जयति सत्यं तत् परमं पदम् । यथाभूताप्रमादं तु सत्यमाहुर्मनीषिणः ॥
 दमः शरीरोपतिः शमः प्रज्ञाप्रसादतः । अध्यात्ममक्षरं विद्यात्तत्र गत्वा न शोचति ॥
 यया स देवो भगवान् विद्यया विद्यते परः । साक्षादेव हृषीकेशस्तज्ज्ञानमिति कीर्तितम् ॥
 तत्रिष्ठस्तत्परो विद्वान् नित्यमक्रोधनः शुचिः । महायज्ञपरो विप्रो लभते तदनुत्तमम् ॥
 धर्मस्यायतनं यताच्छीरं परिपालयेत् । न हि देहं विना विष्णुः पुरुषविद्यते परः ॥
 नित्यं धर्मार्थकामेषु युज्येत नियतो द्विजः । न धर्मवर्जितं काममर्थं वा मनसा स्मरेत् ॥
 सीदन्नपि हि धर्मेण न व्यधर्मं समाचरेत् । धर्मो हि भगवान् देवो गतिः सर्वेषु जन्मुषु ॥
 भूतानां प्रियकारी स्यान् परद्रोहकर्मणीः । न वेददेवतानिन्दा कुर्यात्तैश्च न संवर्सेत् ॥
 यस्त्वमं नियतो विप्रो धर्माध्यायं पठेच्छुचिः । अध्यापयेच्छावयेद् वा ब्रह्मलोके महीयते ॥

व्यावहारिक शिष्टाचारका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! किसी भी प्राणीकी हिंसा न करे । कभी झूठ न बोले । अहित करनेवाला तथा अप्रिय वचन मुँहसे न निकाले । कभी चोरी न करे । किसी दूसरेकी वस्तु—चाहे वह तिनका, साग, मिठ्ठी या जल ही क्यों न हो—चुरानेवाला मनुष्य नरकमें पड़ता है । राजासे, शूद्रसे, पतितसे, तथा दूसरे किसीसे भी दान न ले । यदि विद्वान् ब्राह्मण असमर्थ हो—उसका दान लिये बिना काम न चले, तो भी उसे निन्दित पुरुषोंको तो त्याग ही देना चाहिये । कभी याचक न बने; [याचना करे भी, तो] एक ही पुरुषसे दुबारा याचना न करे । इस प्रकार सदा या बारंबार माँगनेवाला याचक कभी-कभी दुर्बिद्ध दाताका प्राण भी ले लेता है । श्रेष्ठ द्विज विशेषतः देवसम्बन्धी द्रव्यका अपहरण न करे तथा ब्राह्मणका धन तो कभी आपत्ति पड़नेपर भी न ले । विषको विष नहीं कहते; ब्राह्मण और देवताका धन ही विष कहलाता है; अतः सर्वदा प्रयत्नपूर्वक उससे बचा रहे ।*

द्विजो ! देवपूजाके लिये सदा एक ही स्थानसे मालिककी आज्ञा लिये बिना फूल नहीं तोड़ने चाहिये । विद्वान् पुरुष केवल धर्मकार्यके लिये दूसरेके घास, लकड़ी, फल और फूल ले सकता है; किन्तु इन्हें सबके सामने—दिखाकर ले जाना चाहिये । जो इस प्रकार नहीं करता, वह गिर जाता है । विप्रगण ! जो लोग कहीं मार्गमें हों और भूखसे पीड़ित हों, वे ही किसी खेतसे मुझीभर तिल, मूँग या जौ आदि ले सकते हैं अन्यथा जो भूखे एवं राहीं न हों, वे उन वस्तुओंको लेनेके

अधिकारी नहीं हैं—यही मर्यादा है । जो वास्तवमें अलिङ्गी है—जिसने किसी आश्रमका चिह्न नहीं ग्रहण किया है, वह भी यदि दिखावेके तौरपर आश्रमविशेषका चिह्न—उसकी वेष-भूषा धारण करके जीविका चलाता है तो वह वास्तविक लिङ्गी (आश्रमचिह्नधारी) पुरुषके पापको ग्रहण करता है तथा तिर्यग्योनिमें जन्म लेता है । नीच पुरुषसे याचना, योनिसम्बन्ध, सहवास और बातचीत करनेवाला द्विज गिर जाता है; अतः इन सब बातोंसे यत्पूर्वक दूर रहना चाहिये । देवद्रोह और गुरुद्रोह न करे; देवद्रोहसे भी गुरुद्रोह कोटि-कोटिगुना अधिक है । तथा उससे भी करोड़गुना अधिक है दूसरे लोगोंपर लाञ्छन लगाना और ईश्वर तथा परलोकपर अविश्वास करना । कुत्सित विचार, क्रियालोप, वेदोंके न पढ़ने और ब्राह्मणका तिरस्कार करनेसे उत्तम कुल भी अधम हो जाते हैं । असत्यभाषण, परस्तीसंगम, अभक्ष्यभक्षण तथा अपने कुलधर्मके विरुद्ध आचरण करनेसे कुलका शीघ्र ही नाश हो जाता है । †

जो गाँव अधार्मिकोंसे भरा हो तथा जहाँ रोगोंकी अधिकता हो, वहाँ निवास न करे । शूद्रके राज्यमें तथा पाखण्डियोंसे घिरे हुए स्थानमें भी न रहे । द्विज हिमालय और विश्वाचलके तथा पूर्वसमुद्र और पश्चिमसमुद्रके बीचके पवित्र देशको छोड़कर अन्यत्र निवास न करे । जिस देशमें कृष्णसार मृग सदा स्वभावतः विचरण करता है अथवा पवित्र एवं प्रसिद्ध नदियाँ प्रवाहित होती हैं, वहीं द्विजको निवास करना चाहिये । श्रेष्ठ द्विजको उचित है कि नदी-तटसे आधे कोसकी भूमि छोड़कर अन्यत्र

* न हिस्यात् सर्वभूतानि नानृतं वा वदेत् कच्चित् । नाहिते नाश्रियं वाच्यं न स्तेनः स्यात् कदाचन ॥
तृणं वा यदि वा शाकं मृदं वा जलमेव वा । परस्यापहरज्जन्मनुरकं प्रतिपद्यते ॥

न राज्ञः प्रतिगृहीयात् शूद्रात् पतितादपि । न चान्यस्मादशक्तश्चेत्रिन्दितान् वर्जयेद् बुधः ॥

नित्यं याचनको न स्यात् पुनस्तो नैव याचयेत् । प्राणानपहरत्येवं याचकस्तस्य दुर्मतेः ॥

न देवद्रव्यहारी स्याद् विशेषेण द्विजोत्तमः । ब्रह्मस्वं वा नापहरेदापत्वपि कदाचन ॥

न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते । देवस्वं चापि यत्न सदा परिहरेत्ततः ॥ (५५ । १—६)

† अनुत्तम् पारदार्याश्च तथाभक्ष्यस्य भक्षणात् । अगोत्रधर्माचरणात् क्षिप्रं नश्यति वै कुलम् ॥ (५५ । १८)

निवास न करे। चाप्डालोंके गाँवके समीप नहीं रहना चाहिये। पतित, चाप्डाल, पुल्कन्स (निषादसे शूद्रामें उत्पन्न), मूर्ख, अभिमानी, अन्त्यज तथा अन्त्यावसायी (निषादकी खीमें चाप्डालसे उत्पन्न) पुरुषोंके साथ कभी निवास न करे। एक शश्यापर सोना, एक आसनपर स्थित होना, एक पंक्तिमें बैठना, एक बर्तनमें खाना, दूसरोंके पके हुए अन्नको अपने अन्नमें मिलाकर भोजन करना, यज्ञ करना, पढ़ाना, विवाह-सम्बन्ध स्थापित करना, साथ बैठकर भोजन करना, साथ-साथ पढ़ाना और एक साथ यज्ञ करना ये संकरताका प्रसार करनेवाले ग्यारह सांकर्यदोष बताये गये हैं। समीप रहनेसे भी मनुष्योंके पाप एक-दूसरेमें फैल जाते हैं। इसलिये पूरा प्रयत्न करके सांकर्यदोषसे बचना चाहिये। जो राख आदिसे सीमा बनाकर एक पंक्तिमें बैठते और एक-दूसरेका स्पर्श नहीं करते, उनमें संकरताका दोष नहीं आता। अग्नि, भस्म, जल, विशेषतः द्वार, खंभा तथा मार्ग—इन छःसे पंक्तिका भेद (पृथक्करण) होता है।

अकारण वैर न करे, विवादसे दूर रहे, किसीकी चुगली न करे, दूसरेके खेतमें चरती हुई गौका समाचार कदापि न कहे। चुगलखोरके साथ न रहे, किसीको चुभूनेवाली बात न कहे। सूर्यमण्डलका धेरा, इन्द्रधनुष-बाणसे प्रकट हुई आग, चन्द्रमा तथा सोना—इन सबकी ओर विद्वान् पुरुष दूसरेका ध्यान आकृष्ट न करे। बहुत-से मनुष्यों तथा भाई-बन्धुओंके साथ विरोध न करे। जो बर्ताव अपने लिये प्रतिकूल जान पड़े, उसे दूसरोंके लिये भी न करे। द्विजवरो! रजस्वला खी अथवा अपवित्र मनुष्यके साथ बातचीत न करे। देवता,

गुरु और ब्राह्मणके लिये किये जानेवाले दानमें रुकावट न डाले। अपनी प्रशंसा न करे तथा दूसरेकी निन्दाका त्याग कर दे। वेदनिन्दा और देवनिन्दाका यत्पूर्वक त्याग करे। * मुनीश्वरो! जो द्विज देवताओं, ऋषियों अथवा वेदोंकी निन्दा करता है, शास्त्रोंमें उसके उद्धारका कोई उपाय नहीं देखा गया है। जो गुरु, देवता, वेद अथवा उसका विस्तार करनेवाले इतिहास-पुराणकी निन्दा करता है, वह मनुष्य सौ करोड़ कल्पसे अधिक कालतक रौरव नरकमें पकाया जाता है। जहाँ इनकी निन्दा होती हो, वहाँ चुप रहे; कुछ भी उत्तर न दे। कान बंद करके वहाँसे चला जाय। निन्दा करनेवालेकी ओर दृष्टिपात न करे। † विद्वान् पुरुष दूसरोंकी निन्दा न करे। अच्छे पुरुषोंके साथ कभी विवाद न करे, पापियोंके पापकी चर्चा न करे। जिनपर झूठा कलङ्क लगाया जाता है; उन मनुष्योंके रोनेसे जो आँसू गिरते हैं, वे मिथ्या कलङ्क लगानेवालोंके पुत्रों और पशुओंका विनाश कर डालते हैं। ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी और गुरुपलीगमन आदि पापोंसे शुद्ध होनेका उपाय वृद्ध पुरुषोंने देखा है; किन्तु मिथ्या कलङ्क लगानेवाले मनुष्यकी शुद्धिका कोई उपाय नहीं देखा गया है। ‡

बिना किसी निमित्तके सूर्य और चन्द्रमाको उदयकालमें न देखे; उसी प्रकार अस्त होते हुए, जलमें प्रतिबिम्बित, मेघसे ढके हुए, आकाशके मध्यमें स्थित, छिपे हुए तथा दर्पण आदिमें छायाके रूपमें दृष्टिगोचर होते हुए सूर्य-चन्द्रमाको भी न देखे। नंगी खी और नंगे पुरुषकी ओर भी कभी दृष्टिपात न करे। मल-मूत्रको न देखे; मैथुनमें प्रवृत्त पुरुषकी ओर दृष्टि न डाले। विद्वान् पुरुष अपवित्र अवस्थामें सूर्य, चन्द्रमा आदि ग्रहोंकी

* न चात्मानं प्रशंसेद्वा परनिन्दां च वर्जयेत्। वेदनिन्दां देवनिन्दां प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥ (५५।३५)

† निन्दयेद्वा गुरुं देवं वेदं वा सोपबृहणम्। कल्पकोटिशतं साम्र रौरवे पच्यते नरः॥

तृष्णीमासीत निन्दायां न ब्रूयात् किञ्चिदुत्तरम्। कर्णौ पिधाय गन्तव्यं न चैनमवलोकयेत्॥ (५५।३७-३८)

‡ नृणां मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यशूणि रोदनात्। तानि पुत्रान् पशून् ग्रन्ति तेषां मिथ्याभिशंसिनाम्॥

ब्रह्महत्यासुरापाने स्तेये गुर्वज्जनागमे। दृष्टं वै शोधनं वृद्धैर्नास्ति मिथ्याभिशंसिनि॥ (५५।४१-४२)

ओर न देखे। उच्छिष्ट अवस्थामें या कपड़ेसे अपने सारे बदनको ढककर दूसरेसे बात न करे। क्रोधमें भरे हुए गुरुके मुखपर दृष्टि न डाले। तेल और जलमें अपनी परछाई न देखे। भोजन समाप्त हो जानेपर जूठी पंक्तिकी ओर दृष्टिपात न करे। बन्धनसे खुले हुए और मतवाले हाथीकी ओर दृष्टि न डालें। पलीके साथ भोजन न करे। भोजन करती, छींकती, जंभाई लेती और अपनी मौजसे आसनपर बैठी हुई भार्याकी ओर दृष्टिपात न करे। बुद्धिमान् पुरुष किसी शुभ या अशुभ वस्तुको न तो लाँघे और न उसपर पैर ही रखे। कभी क्रोधके अधीन नहीं होना चाहिये। राग और द्वेषका त्याग करना चाहिये तथा लोभ, दम्भ, अवज्ञा, दोषदर्शन, ज्ञाननिन्दा, ईर्ष्या, मद, शोक और मोह आदि दोषोंको छोड़ देना चाहिये। किसीको पीड़ा न दे। पुत्र और शिष्यको शिक्षाके लिये ताड़ना दे। नीच पुरुषोंकी सेवा न करे तथा कभी तृष्णामें मन न लगाये। दीनताको यत्पूर्वक त्याग दे। विद्वान् पुरुष किसी विशिष्ट व्यक्तिका अनादर न करे।

नखसे धरती न कुरेदे। गौको जबर्दस्ती न बिठाये। साथ-साथ यात्रा करनेवालेको कहीं ठहरने या भोजन करनेके समय छोड़ न दे। नग्न होकर जलमें प्रवेश न करे। अग्निको न लाँघे। मस्तकपर लगानेसे बचे हुए तेलको शरीरमें न लगाये।* साँपों और हथियारोंसे खिलवाड़ न करे। अपनी इन्द्रियोंका स्पर्श न करे। रोमावलियों तथा गुप्त अङ्गोंको भी न छूए। अशिष्ट मनुष्यके साथ यात्रा न करे। हाथ, पैर, वाणी, नेत्र, शिश्र, ऊदर तथा कान आदिको चश्चल न होने दे। अपने शरीर और नख आदिसे बाजेका काम न ले। अङ्गलिसे जल न पीये। पानीपर कभी पैर या हाथसे आघात न करे। इंटेमारकर कभी फल या मूल न तोड़े। म्लेच्छोंकी भाषा न सीखे। पैरसे आसन न खींचे। बुद्धिमान् पुरुष अकारण नख तोड़ना, ताल ठोकना, धरतीपर रेखा खींचना या अङ्गोंको मसलना आदि व्यर्थका कार्य न करे। खाद्य

पदार्थको गोदमें लेकर न खाय। व्यर्थकी चेष्टा न करे। नाच-गान न करे। बाजे न बजाये। दोनों हाथ सटाकर अपना सिर न खुजलाये। जुआ न खेले। दौड़ते हुए न चले। पानीमें पेशाब या पाखाना न करे। जूठे मुँह बैठना या लेटना निषिद्ध है। नग्न होकर स्नान न करे। चलते हुए न पढ़े। दाँतोंसे नख और रोएँ न काटे। सोये हुएको न जगाये। सबेरेकी धूपका सेवन न करे। चिताके धुएँसे बचकर रहे। सूने घरमें न सोये। अकारण न थूके। भजाओंसे तैरकर नदी पार न करे। पैरसे कभी पैर न धोये। पैरोंको आगमें न तपाये। काँसीके बर्तनमें पैर न धुलाये। देवता, ब्राह्मण, गौ, वायु, अग्नि, राजा, सूर्य तथा चन्द्रमाकी ओर पाँव न पसारे। अशुद्ध अवस्थामें शयन, यात्रा, स्वाध्याय, स्नान, भोजन तथा बाहर प्रस्थान न करे। दोनों संध्याओं तथा मध्याह्नके समय शयन, क्षौरकर्म, स्नान, उबटन, भोजन तथा यात्रा न करे। ब्राह्मण जूठे मुँह गौ, ब्राह्मण तथा अग्निका स्पर्श न करे। उन्हें पैरसे कभी न छेड़े तथा देवताकी प्रतिमाका भी जूठे मुँह स्पर्श न करे। अशुद्धावस्थामें अग्निहोत्र तथा देवता और ऋषियोंका कीर्तन न करे। अगाध जलमें न घुसे तथा अकारण न दौड़े। बायें हाथसे जल उठाकर या पानीमें मुँह लगाकर न पिये। आचमन किये बिना जलमें न उतरे। पानीमें वीर्य न छोड़े। अपवित्र तथा बिना लिपी हुई भूमि, रक्त तथा विषको लाँঁघकर न चले। रजस्वला खींके साथ अथवा जलमें मैथुन न करे। देवालय या इमशानभूमिमें स्थित वृक्षको न काटे। जलमें न थूके। हड्डी, राख, ठीकरे, बाल, काँटे, भूसी, कोयले तथा कंडोंपर कभी पैर न रखे।

बुद्धिमान् पुरुष न तो अग्निको लाँघे और न कभी उसे नीचे रखे। अग्निकी ओर पैर न करे तथा मुँहसे उसे कभी न फूँके।† फेड़पर न चढ़े। अपवित्रावस्थामें किसीकी ओर दृष्टिपात न करे। आगमें आग न डाले तथा उसे पानी डालकर न बुझाये। अपने किसी सुहदकी

* नावगाहेदो नग्ने वहि नतिवजेतथा । शिरोऽभ्यन्नवशिष्टेन तैलेनाङ्गं न लेपयेत् ॥ (५५। ५६-५७)

† न चाग्नि लङ्घयेद्दीमान् नोपदध्यादधः क्वचित् । न चैनं पादतः कुर्यामुखेन न धमेद् बुधः ॥ (५५। ७७)

मृत्युका समाचार स्वयं दूसरोंको न सुनाये। माल बेचते समय बेमोलका भाव अथवा जूठा मूल्य न बतावे। विद्वान्‌को उचित है कि वह मुखके निःश्वाससे और अपवित्रावस्थामें अग्निको प्रज्वलित न करे। पहलेकी की हुई प्रतिज्ञा भङ्ग न करे। पशुओं, पक्षियों तथा व्याघ्रोंको परस्पर न लड़ाये। जल, वायु, और धूप आदिके द्वारा दूसरेको कष्ट न पहुँचाये। पहले अच्छे कर्म करवाकर बादमें गुरुजनोंको धोखा न दे। सबैरे और सायंकालको रक्षाके लिये घरके दरवाजोंको बंद कर दे। विद्वान् ब्राह्मणको भोजन करते समय खड़ा होना और बातचीत करते समय हँसना उचित नहीं है। अपनेद्वारा स्थापित अग्निको हाथसे न छूए तथा देरतक जलके भीतर न रहे। अग्निको पंखेसे, सूपसे, हाथसे अथवा मुँहसे न फूँके। विद्वान् पुरुष परायी स्त्रीसे वार्तालाप न करे। जो यज्ञ

कराने योग्य नहीं है, उसका यज्ञ न कराये। ब्राह्मण कभी अकेला न चले और समुदायसे भी दूर रहे। कभी देवालयको बायें रखकर न जाय, वस्त्रोंको कूटे नहीं और देवमन्दिरमें सोये नहीं। अधार्मिक मनुष्योंके साथ भी न चले। रोगी, शूद्र तथा पतित मनुष्योंके साथ भी यात्रा करना मना है। द्विज बिना जूतेके न चले। जल आदिका प्रबन्ध किये बिना यात्रा न करे। मार्गमें चिताको बायें करके न जाय। योगी, सिद्ध, ब्रतधारी, संन्यासी, देवालय, देवता तथा याज्ञिक पुरुषोंकी कभी निन्दा न करे। जान-बूझकर गौ तथा ब्राह्मणकी छायापर पैर न रखे। झाड़ीकी धूलसे बचकर रहे। स्नान किया हुआ वस्त्र तथा घड़ेसे छलकता हुआ जल—इन दोनोंके स्पर्शसे बचना चाहिये। द्विजको उचित है कि वह अभक्ष्य वस्तुका भक्षण और नहीं पीने योग्य वस्तुका पान न करे।



गृहस्थधर्ममें भक्ष्याभक्ष्यका विचार तथा दान-धर्मका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—द्विजवरो ! ब्राह्मणको शूद्रका अन्न नहीं खाना चाहिये; जो ब्राह्मण आपत्तिकालके बिना ही मोहवश या स्वेच्छासे शूद्रान्न भक्षण करता है, वह मरकर शूद्र-योनिमें जन्म लेता है। जो द्विज छः मासतक शूद्रके कुत्सित अन्नका भोजन करता है, वह जीते-जी ही शूद्रके समान हो जाता है और मरनेपर कुत्ता होता है। मुनीश्वरो ! मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—जिसके अन्नको पेटमें रखकर प्राण-त्याग करता है, उसीकी योनिमें जन्म लेता है। नट, नाचनेवाला, चाण्डाल, चमार, समुदाय तथा वैश्या—इन छःके अन्नका परित्याग करना चाहिये। तेली, धोबी, चोर, शराब बेचनेवाले, नाचने-गानेवाले, लुहार तथा मरणाशौचसे युक्त मनुष्यका अन्न भी त्याग देना चाहिये।* कुम्हार, चित्रकार, सूदर्खोर, पतित, द्वितीय पति स्त्रीकार करनेवाली स्त्रीके पुत्र,

अभिशापग्रस्त, सुनार, सङ्गमञ्चपर खेल दिखाकर जीवन-निर्वाह करनेवाले, व्याध, वस्त्र्या, रोगी, चिकित्सक (वैद्य या डाक्टर), व्यभिचारिणी स्त्री, हाकिम, नास्तिक, देवनिन्दक, सोमरसका विक्रय करनेवाले, स्त्रीके वशीभूत रहनेवाले, स्त्रीके उपपतिको घरमें रखनेवाले, पुरुष-परित्यक्त, कृपण, जूठा, खानेवाले, महापापी, शास्त्रोंसे जीविका चलानेवाले, भयभीत तथा रोनेवाले मनुष्यका अन्न भी त्याज्य है। ब्रह्मदेवी और पापमें रुचि रखनेवालेका अन्न, मृतकके श्राद्धका अन्न, बलिवैश्वदेवरहित रसोईका अन्न तथा रोगीका अन्न भी नहीं खाना चाहिये। संतानहीन स्त्री, कृतघ्न, कारीगर और नाजिर तथा परिवेता (बड़े भाईको अविवाहित छोड़कर अपना विवाह करनेवाले) का अन्न भी खाने योग्य नहीं है। पुनर्विवाहिता स्त्री तथा दिधिषू-पतिका † अन्न भी त्याज्य है। अवहेलना,

* नटान्नं नर्तकान्नं च चाण्डालचर्मकारिणाम्। गणान्नं गणिकान्नं च षडन्नं च विवर्जयेत्॥

चक्रोपजीविरजकतस्करध्वजिनां तथा। गान्धर्वलोहकारान्नं मृतकान्नं विवर्जयेत्॥ (५६।४-५)

† जो कामवश भाईकी विधवा पतीके साथ सभ्योग करता है, उसे 'दिधिषू-पति' कहते हैं। बड़ी बहिनके अविवाहित होनेपर भी यदि छोटी बहिन विवाह कर ले तो बड़ी बहिन 'दिधिषू' कहलाती है, उसका पति 'दिधिषू-पति' है।

अनादर तथा रोषपूर्वक मिला हुआ अन्न भी नहीं खाना चाहिये। गुरुका अन्न भी यदि संस्काररहित हो तो वह भोजन करनेयोग्य नहीं है। क्योंकि मनुष्यका सारा पाप अन्नमें स्थित होता है। जो जिसका अन्न खाता है, वह उसका पाप भोजन करता है।

आर्थिक (किसान), कुलमित्र (कुर्मी), गोपाल (ग्वाला), दास, नाई तथा आत्मसमर्पण करनेवाला पुरुष—इनका अन्न भोजन करनेके योग्य है। कुशीलब—चारण और क्षेत्रकर्मक—(खेतमें काम करनेवाले) इनका भी अन्न खानेयोग्य है। विद्वान् पुरुष इन्हें थोड़ी कीमत देकर इनका अन्न ग्रहण कर सकते हैं। तेलमें पकायी हुई वस्तु, गोरस, सतू, तिलकी खली और तेल—ये वस्तुएँ द्विजातियोद्वारा शूद्रसे ग्रहण करने योग्य हैं। भाँटा, कमलनाल, कुसुम, प्याज, लहसुन, शुक्त और गोंदका त्याग करना चाहिये। छत्राक तथा यन्त्रसे निकाले हुए आसव आदिका भी परित्याग करना उचित है। गाजर, मूली, कुम्भा, गूलर और लौकी खानेसे द्विज गिर जाता है। रातमें तेल और दहीका यलपूर्वक त्याग करना चाहिये। दूधके साथ मट्ठा और नमकीन अन्न नहीं मिलाना चाहिये।

जिस अन्नके प्रति दूषित भावना हो गयी हो, जो दुष्ट पुरुषोंके सम्पर्कमें आ गया हो, जिसे कुत्तेने सूँघ लिया हो, जिसपर चाप्डाल, रजस्वला खी अथवा पतितोंकी दृष्टि पड़ गयी हो, जिसे गायने सूँघ लिया हो, जिसे कौए अथवा मुर्गेने छू लिया हो, जिसमें कीड़े पड़ गये हों, जो मनुष्योद्वारा सूँधा अथवा कोढ़ीसे छू गया हो, जिसे रजस्वला, व्यभिचारिणी अथवा रोगिणी खीने दिया हो, ऐसे अन्नको त्याग देना चाहिये। दूसरेका वस्त्र भी त्याज्य है। बिना बछड़ेकी गायका, ऊँटनीका, एक खुवाले पशु—घोड़ी आदिका, भेड़का तथा हथिनीका

दूध पीने योग्य नहीं है—यह मनुका कथन है। मास-भक्षण न करे। द्विजातियोंके लिये मदिरा किसीको देना, स्वयं उसे पीना, उसका स्पर्श करना तथा उसकी ओर देखना भी मना है—पाप है; उससे सदा दूर ही रहना चाहिये—यही सनातन मर्यादा है। इसलिये पूर्ण प्रथल करके सर्वदा मद्यका त्याग करे। जो द्विज मद्य-पान करता है, वह द्विजोचित कर्मोंसे ब्रष्ट हो जाता है; उससे बात भी नहीं करनी चाहिये।* अतः ब्राह्मणको सदा यलपूर्वक अभक्ष्य एवं अपेय वस्तुओंका परित्याग करना उचित है। यदि त्याग न करके उक्त निषिद्ध वस्तुओंका सेवन करता है तो वह रौरव नरकमें जाता है।†

अब मैं परम उत्तम दानधर्मका वर्णन करूँगा। इसे पूर्वकालमें ब्रह्माजीने ब्रह्मवादी ऋषियोंको उपदेश किया था। योग्य पात्रको श्रद्धापूर्वक धन अर्पण करना दान कहलाता है। ओंकारके उच्चारणपूर्वक किया हुआ दान भोग और मोक्षरूपी फल प्रदान करनेवाला होता है। दान तीन प्रकारका बतलाया जाता है—नित्य, नैमित्तिक और काम्य। एक चौथा प्रकार भी है, जिसे 'विमल' नाम दिया गया है। विमल दान सब प्रकारके दानोंमें परमोत्तम है। जिसका अपने ऊपर कोई उपकार न हो, ऐसे ब्राह्मणको फलकी इच्छा न रखकर प्रतिदिन जो कुछ दिया जाता है, वह नित्यदान है। जो पापोंकी शान्तिके लिये विद्वानोंके हाथमें अर्पण किया जाता है, उसे श्रेष्ठ पुरुषोंने नैमित्तिक दान बताया है; वह भी उत्तम दान है। जो सन्तान, विजय, ऐश्वर्य और सुखकी प्राप्तिके उद्देश्यसे दिया जाता है, उसे धर्मका विचार करनेवाले ऋषियोंने 'काम्य' दान कहा है तथा जो भगवान्की प्रसन्नताके लिये धर्मयुक्त चित्तसे ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंको कुछ अर्पण किया जाता है, वह कल्याणमय दान 'विमल' (सात्त्विक) माना गया है।‡

* अदेयं वायपेयं च तथैवासुर्यपेव वा। द्विजातीनामनालोक्य नित्यं मद्यमिति स्थितिः ॥

† तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मद्यं नित्यं विवर्जयेत्। पीत्वा पतति कर्मभ्यस्त्वसंभाष्यो भवेद् द्विजः ॥ (५६ । ४३-४४)

‡ तस्मात् परिहेत्रित्यमधक्षयाणि प्रयत्नतः। अपेयानि च विप्रो वै तथा चेद् याति रौरवम् ॥ (५६ । ४६)

‡ नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं दानमुच्यते। चतुर्थं विमलं प्रोक्तं सर्वदानोत्तमोत्तमम् ॥

अहन्यहनि यत्किञ्चिद् दीयतेऽनुपकारिणे। अनुदिश्य फलं तस्माद् ब्राह्मणाय तु नित्यकम् ॥

सुयोग्य पात्रके मिलनेपर अपनी शक्तिके अनुसार दान अवश्य करना चाहिये। कुटुम्बको भोजन और वस्त्र देनेके बाद जो बच रहे, उसीका दान करना चाहिये; अन्यथा कुटुम्बका भरण-पोषण किये बिना जो कुछ दिया जाता है, वह दान दानका फल देनेवाला नहीं होता। वेदपाठी, कुलीन, विनीत, तपस्वी, व्रतपरायण एवं दरिद्रको भक्तिपूर्वक दान देना चाहिये।* जो अग्निहोत्री ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक पृथ्वीका दान करता है; वह उस परमधामको प्राप्त होता है जहाँ जाकर जीव कभी शोक नहीं करता। जो मनुष्य वेदवेत्ता ब्राह्मणको गत्रोंसे भरी हुई तथा जौ और गेहूँकी खेतीसे लहलहाती हुई भूमि दान करता है, वह फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता। जो दरिद्र ब्राह्मणको गौके चमड़े बराबर भूमि भी प्रदान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। भूमिदानसे बढ़कर इस संसारमें दूसरा कोई दान नहीं है। केवल अन्नदान उसकी समानता करता है और विद्यादान उससे अधिक है। जो शान्त, पवित्र और धर्मात्मा ब्राह्मणको विधिपूर्वक विद्यादान करता है, वह ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। गृहस्थ ब्राह्मणको अन्नदान करके मनुष्य उत्तम फलको प्राप्त होता है। गृहस्थको अन्न ही देना चाहिये, उसे देकर मानव परमगतिको प्राप्त होता है। वैशाखकी पूर्णिमाको विधिपूर्वक उपवास करके शान्त, पवित्र एवं एकाग्रचित्त होकर काले तिलों और विशेषतः मधुसे सात या पाँच ब्राह्मणोंकी पूजा करे तथा इससे धर्मराज प्रसन्न हों—ऐसी भावना करे। जब मनमें यह भाव स्थिर हो जाता है, उसी क्षण मनुष्यके जीवनभरके किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। काले मृगचर्मपर तिल, सोना, मधु और घी रखकर जो ब्राह्मणको दान देता है, वह सब पापोंसे तर जाता है। जो विशेषतः वैशाखकी पूर्णिमाको धर्मराजके उद्देश्यसे

ब्राह्मणोंको घी और अन्नसहित जलका घड़ा दान करता है, वह भयसे छुटकारा पा जाता है। जो सुवर्ण और तिलसहित जलके पात्रोंसे सात या पाँच ब्राह्मणोंको तृप्त करता है, वह ब्रह्महत्यासे छूट जाता है। माघ मासके कृष्णपक्षमें द्वादशी तिथिको उपवास करे और श्वेत वस्त्र धारण करके काले तिलोंसे अग्निमें हवन करे। तत्पश्चात् एकाग्रचित्त हो ब्राह्मणोंको तिलोंका ही दान करे। इससे द्विज जन्मभरके किये हुए सब पापोंको पार कर जाता है। अमावास्या आनेपर देवदेवेश्वर भगवान् श्रीविष्णुके उद्देश्यसे जो कुछ भी बन पड़े, तपस्वी ब्राह्मणको दान दे और सबका शासन करनेवाले इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् श्रीविष्णु प्रसन्न हों, यह भाव रखे। ऐसा करनेसे सात जन्मोंका किया हुआ पाप तत्काल नष्ट हो जाता है।

जो कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको स्नान करके ब्राह्मणके मुखमें अन्न डालकर इस प्रकार भगवान् शङ्करकी आराधना करता है, उसका पुनः इस संसारमें जन्म नहीं होता। विशेषतः कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिको स्नान करके चरण धोने आदिके द्वारा विधिपूर्वक पूजा करनेके पश्चात् धार्मिक ब्राह्मणको 'मुझपर महादेवजी प्रसन्न हों' इस उद्देश्यसे अपना द्रव्य दान करना चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो परमगतिको प्राप्त होता है। भक्त द्विजोंको उचित है कि वे कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, अष्टमी तथा विशेषतः अमावास्याके दिन भगवान् महादेवजीकी पूजा करें। जो एकादशीको निराहार रहकर द्वादशीको ब्राह्मणके मुखमें अन्न दे इस प्रकार पुरुषोत्तमकी अर्चना करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। यह शुक्लपक्षकी द्वादशी भगवान् विष्णुकी तिथि है। इस दिन भगवान् जनार्दनकी प्रयत्नपूर्वक आराधना करनी चाहिये। भगवान् शङ्कर अथवा श्रीविष्णुके उद्देश्यसे जो कुछ भी पवित्र ब्राह्मणको दान

यतु पापशान्त्यर्थं दीयते विदुषां करे। नैमित्तिकं अपत्यविजयैश्वर्यसुखार्थं यद्यदीयते। दानं यदीश्वरस्य प्रीत्यर्थं ब्रह्मवित्सु प्रदीयते। चेतसा धर्मयुक्तेन दानं तद् विमलं शिवम्॥ (५७।४—८)

* श्रोत्रियाय कुलीनाय विनीताय तपस्विने। व्रतस्थाय दरिजाय प्रदेयं भक्तिपूर्वकम्॥ (५७।११)

दिया जाता है, उसका अक्षय फल माना गया है। जो उद्देश्यसे ब्राह्मणोंका ही यत्पूर्वक पूजन करे, इससे वह उस देवताको संतुष्ट कर लेता है। देवता सदा ब्राह्मणोंके शरीरका आश्रय लेकर ही रहते हैं। ब्राह्मणोंके न मिलनेपर वे कहीं-कहीं प्रतिमा आदिमें भी पूजित होते हैं। प्रतिमा आदिमें बहुत यत्पूर्वक पूजन करनेपर अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। अतः सदा विशेषतः द्विजोंमें ही देवताओंका पूजन करना उचित है।

ऐश्वर्य चाहनेवाला मनुष्य इन्द्रकी पूजा करे। ब्रह्मतेज और ज्ञान चाहनेवाला पुरुष ब्रह्माजीकी आराधना करे। आरोग्यकी अभिलाषा रखनेवाला पुरुष सूर्यकी, धनकी कामनावाला मनुष्य अग्निकी तथा कर्मोंकी सिद्धि चाहनेवाला पुरुष गणेशजीका पूजन करे। जो भग चाहता हो, वह चन्द्रमाकी, बल चाहनेवाला वायुकी तथा सम्पूर्ण संसार-बन्धनसे छूटनेकी अभिलाषा रखनेवाला मनुष्य यत्पूर्वक श्रीहरिकी आराधना करे। जो योग, मोक्ष तथा ईश्वरीय ज्ञान—तीनोंकी इच्छा रखता हो, वह यत्पूर्वक देवताओंके स्वामी महादेवजीकी अर्चना करे। जो महान् भोग तथा विविध प्रकारके ज्ञान चाहते हैं, वे भोगी पुरुष श्रीभूतनाथ महेश्वर तथा भगवान् श्रीविष्णुकी भी पूजा करते हैं। जल देनेवाले मनुष्यकी तृप्ति होती है; अतः जलदानका महत्त्व अधिक है। तेल दान करनेवालेको अनुकूल संतान और दीप देनेवालेको उत्तम नेत्रकी प्राप्ति होती है। भूमि-दान करनेवालोंको सब कुछ सुलभ होता है। सुवर्ण-दाताको दीर्घ आयु प्राप्त होती है। गृह-दान करनेवालेको श्रेष्ठ भवन और चाँदी दान करनेवालेको उत्तम रूप मिलता है। वस्त्र-दान करनेवाला चन्द्रमाके लोकमें जाता है। अश्व-दान करनेवालेको उत्तम सवारी मिलती है। अन्न-दाताको अभीष्ट सम्पत्ति और गोदान करनेवालेको सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। सवारी और शश्या-दान

करनेवाले पुरुषको पली मिलती है। अभय-दान करनेवालेको ऐश्वर्य प्राप्त होता है। धान्य-दाताको सनातन सुख और ब्रह्म (वेद) दान करनेवालेको शाश्वत ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है।

जो वेदविद्याविशिष्ट ब्राह्मणोंको अपनी शक्तिके अनुसार अनाज देता है, वह मृत्युके पश्चात् स्वर्गका सुख भोगता है। गौओंको अन्न देनेसे मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है; इंधन दान करनेसे मनुष्यकी जठरग्नि दीप्ति होती है। जो ब्राह्मणोंको फल, मूल, पीनेयोग्य पदार्थ और तरह-तरहके शाक-दान करता है, वह सदा आनन्दित होता है। जो रोगीके रोगको शान्त करनेके लिये उसे औषध, तेल और आहार प्रदान करता है, वह रोगहीन, सुखी और दीर्घायु होता है। जो छत्र और जूते दान करता है, वह नरकोंके अन्तर्गत असिपत्रवन, छूरेकी धारसे युक्त मार्ग तथा तीखे तापसे बच जाता है। संसारमें जो-जो वस्तु अत्यन्त प्रिय मानी गयी है तथा जो मनुष्यके घरमें अपेक्षित है, उसीको यदि अक्षय बनानेकी इच्छा हो तो गुणवान् ब्राह्मणको उसका दान करना चाहिये। अयन-परिवर्तनके दिन, विषुव^१ नामक योग आनेपर, चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें तथा संक्रान्ति आदिके अवसरोंपर दिया हुआ दान अक्षय होता है। [†] प्रयाग आदि तीर्थों, पुण्य-मन्दिरों, नदियों तथा वनोंमें भी दान करके मनुष्यं अक्षय फलका भागी होता है। प्राणियोंके लिये इस संसारमें दानधर्मसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। इसलिये द्विजातियोंको चाहिये कि वे श्रोत्रिय ब्राह्मणको अवश्य दान दें। ऐश्वर्यकी इच्छा रखनेवाले पुरुष स्वर्गकी प्राप्तिके लिये तथा मुमुक्षु पुरुष पापोंकी शान्तिके लिये प्रतिदिन ब्राह्मणोंको दान देते रहें।

जो पापात्मा मानव गौ, ब्राह्मण, अग्नि और देवताके लिये दी जानेवाली वस्तुको मोहवश रोक देता है, उसे पशु-पक्षियोंकी योनिमें जाना पड़ता है। जो द्रव्यका उपार्जन करके ब्राह्मणों और देवताओंका पूजन नहीं

१. तुल और मेघकी संक्रान्तिको, जब कि दिन और रात बराबर होते हैं, 'विषुव' कहते हैं।

[†] अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। संक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम्॥ (५७ । ५३)

करता, उसका सर्वस्व छीनकर राजा उसे राज्यसे बाहर निकाल दे। जो अकालके समय ब्राह्मणोंके मरते रहनेपर भी अन्न आदिका दान नहीं करता, वह ब्राह्मण निन्दित है। ऐसे ब्राह्मणसे दान नहीं लेना चाहिये तथा उसके साथ निवास भी नहीं करना चाहिये। राजाको उचित है वह उसके शरीरमें कोई चिह्न अङ्गित करके उसे अपने राज्यसे बाहर कर दे। द्विजोत्तमगण ! जो ब्राह्मण स्वाध्यायशील, विद्वान्, जितेन्द्रिय तथा सत्य और संयमसे युक्त हों, उन्हें दान करना चाहिये। जो सम्मानपूर्वक देता और सम्मानपूर्वक ग्रहण करता है, वे दोनों स्वर्गमें जाते हैं; इसके विपरीत आचरण करनेपर उन्हें नरकमें गिरना पड़ता है, यदि अविद्वान् ब्राह्मण चाँदी, सोना, गौ; घोड़ा, पृथिवी और तिल आदिका दान ग्रहण करे तो सूखे ईधनकी भाँति भस्म हो जाता है। श्रेष्ठ ब्राह्मणको उचित है कि वह उत्तम ब्राह्मणोंसे धन लेनेकी इच्छा रखे। क्षत्रिय और वैश्योंसे भी वह धन ले सकता है; किन्तु शूद्रसे तो वह किसी प्रकार धन न ले।

अपनी जीविका-वृत्तिको कम करनेकी ही इच्छा रखे, धन बढ़ानेकी चेष्टा न करे; धनके लोभमें फँसा हुआ ब्राह्मण ब्राह्मणत्वसे ही भ्रष्ट हो जाता है। सम्पूर्ण वेदोंको पढ़कर और सब प्रकारके यज्ञोंका पुण्य पाकर भी ब्राह्मण उस गतिको नहीं पा सकता, जिसे वह

संतोषसे पा लेता है।* दान लेनेकी रुचि न रखे। जीवन-निर्वाहके लिये जितना आवश्यक है, उससे अधिक धन ग्रहण करनेवाला ब्राह्मण अधोगतिको प्राप्त होता है। जो संतोष नहीं धारण करता, वह स्वर्गलोकको पानेका अधिकारी नहीं है। वह लोभवश प्राणियोंको उद्धिग्र करता है; चोरकी जैसी स्थिति है, वैसी ही उसकी भी है।† गुरुजनों और भूत्यजनोंके उद्धारकी इच्छा रखनेवाला पुरुष देवताओं और अतिथियोंका तर्पण करनेके लिये सब ओरसे प्रतिग्रह ले; किन्तु उसे अपनी तृप्तिका साधन न बनाये—स्वयं उसका उपभोग न करे। इस प्रकार गृहस्थ पुरुष मनको वशमें करके देवताओं और अतिथियोंका पूजन करता हुआ जितेन्द्रियभावसे रहे तो वह परमपदको प्राप्त होता है।

तदनन्तर गृहस्थ पुरुषको उचित है कि पलीको पुत्रोंके हवाले कर दे और स्वयं वनमें जाकर तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करके सदा एकाग्रचित्त हो उदासीन भावसे अकेला विचरे। द्विजवरो ! यह गृहस्थोंका धर्म है, जिसका मैंने आपलोगोंसे वर्णन किया है। इसे जानकर नियमपूर्वक आचरणमें लाये और दूसरे द्विजोंसे भी इसका अनुष्ठान कराये। जो इस प्रकार गृहस्थधर्मके द्वारा निरन्तर एक, अनादि देव ईश्वरका पूजन करता है, वह सम्पूर्ण भूतयोनियोंका अतिक्रमण करके परमात्माको प्राप्त होता है, फिर संसारमें जन्म नहीं लेता।

वानप्रस्थ-आश्रमके धर्मका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—द्विजवरो ! इस प्रकार आयुके दो भाग व्यतीत होनेतक गृहस्थ-आश्रममें रहकर पली तथा अग्रिसहित वानप्रस्थ-आश्रममें प्रवेश करे अथवा पलीका भार पुत्रोंपर रखकर या पुत्रके पुत्रको देख लेनेके पश्चात् जरा-जीर्ण कलेवरको लेकर वनके लिये प्रस्थान करे। उत्तरायणका श्रेष्ठ काल आनेपर शुक्रपक्षके

पूर्वाह्न-भागमें वनमें जाय और वंहाँ नियमोंका पालन करते हुए एकाग्रचित्त होकर तपस्या करे। प्रतिदिन फल-मूलका पवित्र आहार ग्रहण करे। जैसा अपना आहार हो, उसीसे देवताओं और पितरोंका पूजन किया करे। नित्यप्रति अतिथि-सत्कार करता रहे। ज्ञान करके देवताओंकी पूजा करे। घरसे लाकर एकाग्रचित्त हो आठ

* वेदानधीत्य सकलान् यज्ञांश्वावाप्य सर्वशः। न तां गतिमवाप्नेति संतोषाद् यामवाप्न्यात् ॥ (५७।७१)

† यस्तु याति न संतोषं न स स्वर्गस्य भाजनम्। उद्देजयति भूतानि यथा चौरस्तथैव सः ॥ (५७।७३)

ग्रास भोजन करे। सदा जटा धारण किये रहे। नख और रोएँ न कटाये। सर्वथा स्वाध्याय किया करे। अन्य समयमें मौन रहे। अग्निहोत्र करता रहे। तथा अपने-आप उत्पन्न हुए भाँति-भाँतिके पदार्थों और शाक या मूल-फलके द्वारा पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान करे। सदा फटा-पुराना वस्त्र पहने। तीनों समय स्नान करे। पवित्रतासे रहे। प्रतिग्रह न लेकर सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करता रहे।

द्विजको चाहिये कि वह नियमपूर्वक दर्श एवं पौर्णमास नामक यज्ञोंका अनुष्ठान करे। ऋत्विष्ट, आग्रयण तथा चातुर्मास्य ब्रतोंका भी आचरण करे। क्रमशः उत्तरायण और दक्षिणायण यज्ञ करे। वसन्त और शरद, ऋत्विष्टोंमें उत्पन्न हुए पवित्र पदार्थोंको स्वयं लाकर उनके द्वारा पुरोडाश और चरु बनाये और विधिपूर्वक पृथक्-पृथक् देवताओंको अर्पण करे। परम पवित्र जंगली अनन्दारा निर्मित हविष्यका देवताओंके निर्मित हवन करके स्वयं भी यज्ञ-शेष अन्नका भोजन करे। मद्य-मांसका त्याग करे। जमीनपर उगा हुआ तृण, घास तथा बहेड़ेके फल न खाय। हलसे जोते हुए खेतका अन्न किसीके देनेपर भी न खाय, कष्टमें पड़नेपर भी ग्रामीण फूलों और फलोंका उपभोग न करे। श्रौत-विधिके अनुसार सदा अग्निदेवकी उपासना—अग्निहोत्र करता रहे। किसी भी प्राणीसे द्रोह न करे। निर्द्वन्द्व और निर्भय रहे। गतमें कुछ भी न खाय, उस समय केवल परमात्माके ध्यानमें संलग्न रहे। इन्द्रियोंको वशमें क़रके क्रोधको काबूमें रखे। तत्त्वज्ञानका चिन्तन करे। सदा ब्रह्मचर्यका पालन करता रहे। अपनी पलीसे भी संसर्ग न करे। जो पलीके साथ वनमें जाकर कामनापूर्वक मैथुन करता है, उसका वानप्रस्थ-ब्रत नष्ट हो जाता है तथा वह द्विज प्रायश्चित्तका भागी होता है। वहाँ उससे जो बच्चा पैदा होता है, वह द्विजातियोंके स्पर्श करनेयोग्य नहीं रहता। उस बालकका वेदाध्ययनमें अधिकार नहीं होता। यही बात उसके वंशमें होनेवाले अन्य लोगोंके लिये भी लागू होती है। वानप्रस्थीको सदा भूमिपर शयन करना और गायत्रीके जपमें तत्पर रहना चाहिये। वह

सब भूतोंकी रक्षामें तत्पर रहे तथा सत्-पुरुषोंको सदा अन्नका भाग देता रहे। उसे निन्दा, मिथ्या अपवाद, अधिक निन्दा और आलस्यका परित्याग करना चाहिये। वह एकमात्र अग्निका सेवन करे। कोई घर बनाकर न रहे। भूमिपर जल छिड़ककर बैठे। जितेन्द्रिय होकर मृगोंके साथ विचरे और उन्हींके साथ निवास करे। एकाग्रचित्त होकर पत्थर या कंकड़पर सो रहे। वानप्रस्थ-आश्रमके नियममें स्थित होकर केवल फूल, फल और मूलके द्वारा सदा जीवन-निर्वाह करे। वह भी तोड़कर नहीं; जो स्वभावतः पककर अपने-आप झङ्ग गये हों, उन्हींका उपभोग करे। पृथ्वीपर लोटता रहे अथवा पंजोंके बलपर दिनभर खड़ा रहे। कभी धैर्यका त्याग न करे।

गर्मीमें पञ्चाग्रिका सेवन करे। वर्षके समय खुले मैदानमें रहे। हेमन्त ऋतुमें भीगा वस्त्र पहने रहे। इस प्रकार क्रमशः अपनी तपस्याको बढ़ाता रहे। तीनों समय स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण करे। एक पैरसे खड़ा रहे अथवा सदा सूर्यकी किरणोंका पान करे। पञ्चाग्रिके धूम, गर्मी अथवा सोमरसका पान करे। शुक्रपक्षमें जल और कृष्णपक्षमें गोबरका पान करे अथवा सूखे पत्ते चबाकर रहे अथवा और किसी क्लेशमय वृत्तिसे सदा जीवन-निर्वाह करे। योगाभ्यासमें तत्पर रहे। प्रतिदिन रुद्राष्टाध्यायीका पाठ किया करे। अथर्ववेदका अध्ययन और वेदान्तका अभ्यास करे। आलस्य छोड़कर सदा यम-नियमोंका सेवन करे। काला मृगचर्म और उत्तरीय वस्त्र धारण करे। श्वेत यज्ञोपवीत पहने। अग्नियोंको अपने आत्मामें आरोपित करके ध्यानपरायण हो जाय अथवा अग्नि और गृहसे रहित हो मुनिभावसे रहते हुए मोक्षपरायण हो जाय। यात्राके समय तपस्वी ब्राह्मणोंसे ही भिक्षा ग्रहण करे अथवा वनमें निवास करनेवाले अन्य गृहस्थ द्विजोंसे भी वैह भिक्षा ले सकता है। यह भी सम्भव न हो तो वह गाँवसे ही आठ ग्रास लाकर भोजन करे और सदा वनमें ही रहे। दोनोंमें, हाथमें अथवा ढुकड़ेमें लेकर खाय। आत्मज्ञानके लिये नाना प्रकारके उपनिषदोंका अभ्यास

करे। किसी विशेष मन्त्र, गायत्रीमन्त्र तथा रुद्राष्टाध्यायीका आरम्भ करके निरन्तर उपवास करे अथवा ब्रह्मार्पण-जप करता रहे अथवा वह महाप्रस्थान आमरण यात्रा विधिमें स्थित होकर और कोई ऐसा ही कार्य करे।



संन्यास-आश्रमके धर्मका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार आयुके तीसरे भागको वानप्रस्थ-आश्रममें व्यतीत करके क्रमशः चतुर्थ भागको संन्यासके द्वारा बिताये। उस समय द्विजको उचित है कि वह अग्नियोंको अपनेमें स्थापित करके परिव्राजक—संन्यासी हो जाय और योगाभ्यासमें तत्पर, शान्त तथा ब्रह्मविद्या-परायण रहे। जब मनमें सब वस्तुओंकी ओरसे वैराग्य हो जाय, उस समय संन्यास लेनेकी इच्छा करे। इसके विपरीत आचरण करनेपर वह गिर जाता है। प्राजापत्य अथवा आग्रेयी इष्टिका अनुष्ठान करके मनकी वासना धुल जानेपर जितेन्द्रियभावसे ब्रह्माश्रम—संन्यासमें प्रवेश करे। संन्यासी तीन प्रकारके बताये गये हैं—कोई तो ज्ञानसंन्यासी होते हैं, कुछ वेदसंन्यासी होते हैं तथा कुछ दूसरे कर्मसंन्यासी होते हैं। जो सब ओरसे मुक्त, निर्द्वन्द्व और निर्भय होकर आत्मामें ही स्थित रहता है, उसे 'ज्ञानसंन्यासी' कहा जाता है। जो कामना और परिग्रहका त्याग करके मुक्तिकी इच्छासे जितेन्द्रिय होकर सदा वेदका ही अभ्यास करता रहता है, वह 'वेदसंन्यासी' कहलाता है। जो द्विज अग्निको अपनेमें लीन करके स्वयं ब्रह्ममें समर्पित हो जाता है, उसे महायज्ञपरायण 'कर्मसंन्यासी' जानना चाहिये।*

इन तीनोंमें ज्ञानी सबसे श्रेष्ठ माना गया है। उस विद्वान्के लिये कोई कर्तव्य या आश्रम-चिह्न आवश्यक नहीं रहता। संन्यासीको ममता और भयसे रहित, शान्त एवं निर्द्वन्द्व होना चाहिये। वह पत्ता खाकर रहे, पुराना कौपीन पहने अथवा नंगा रहे। उसे ज्ञानपरायण होना

चाहिये। वह ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए आहारको जीते और भोजनके लिये बस्तीसे अन्न माँग लाया करे। वह अध्यात्मतत्त्वके चिन्तनमें अनुरूप हो सब ओरसे निरपेक्ष रहे और भोग्य वस्तुओंका परित्याग कर दे। केवल आत्माको ही सहायक बनाकर आत्मसुखके लिये इस संसारमें विचरता रहे। जीवन या मृत्यु—किसीका अभिनन्दन न करे। जैसे सेवक स्वामीके आदेशकी प्रतीक्षा करता रहता है, उसी प्रकार संन्यासी कालकी ही प्रतीक्षा करे। उसे कभी अध्ययन, प्रवचन अथवा श्रवण नहीं करना चाहिये।

इस प्रकार ज्ञानपरायण योगी ब्रह्मभावका अधिकारी होता है। विद्वान् संन्यासी एक वस्त्र धारण करे अथवा केवल कौपीन धारण किये रहे। सिर मुँडाये रहे या बाल बढ़ाये रखे। त्रिदण्ड धारण करे, किसी वस्तुका संग्रह न करे। गेरु रङ्गका वस्त्र पहने और सदा ध्यानयोगमें तत्पर रहे। गाँवके समीप किसी वृक्षके नीचे अथवा देवालयमें रहे। शत्रु और मित्रमें तथा मान और अपमानमें समानभाव रखे। सदा भिक्षासे ही जीवन-निर्वाह करे। कभी एक स्थानके अन्नका भोजन न करे। जो संन्यासी मोहवशा या और किसी कारणसे एक जगहका अन्न खाने लगता है, धर्मशास्त्रोंमें उसके उद्धारका कोई उपाय नहीं देखा गया है। संन्यासीका चित्त राग-द्वेषसे रहित होना चाहिये। उसे मिट्टीके ढेले, पत्थर और सुवर्णको एक-सा समझना चाहिये तथा प्राणियोंकी हिंसासे दूर रहना चाहिये। वह मौनभावका

* ज्ञानसंन्यासिनः केचिद् वेदसंन्यासिनोऽपरे । कर्मसंन्यासिनस्त्वन्ये त्रिविधः परिकीर्तिः ॥
यः सर्वत्र विनिर्मुक्तो निर्द्वन्द्वश्वेत निर्भयः । प्रोच्यते ज्ञानसंन्यासी आत्मन्येव व्यवस्थितः ॥
वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं निराशीर्निष्परिग्रहः । प्रोच्यते वेदसंन्यासी मुमुक्षुर्विजितेन्द्रियः ॥
यस्त्वग्रिमात्मसात् कृत्वा ब्रह्मार्पणपरो द्विजः । ज्ञेयः स कर्मसंन्यासी सूहायज्ञपरायणः ॥ (५९।५—८)

आश्रय ले सबसे निःस्पृह रहे। संन्यासी भलीभाँति देख-भालकर आगे पैर रखे। वस्त्रसे छानकर जल पिये। सत्यसे पवित्र हुई वाणी बोले तथा मनसे जो पवित्र जान पड़े, उसीका आचरण करे।*

संन्यासीको उचित है कि वह वर्षाकालके सिवा और किसी समय एक स्थानपर निवास न करे। स्नान करके शौचाचारसे सम्पन्न रहे। सदा हाथमें कमण्डलु लिये रहे। ब्रह्मचर्य-पालनमें संलग्न होकर सदा वनमें ही निवास करे। मोक्षसम्बन्धी शास्त्रोंके विचारमें तत्पर रहे। ब्रह्मसूत्रका ज्ञान रखे और जितेन्द्रियभावसे रहे। संन्यासी यदि दध्व एवं अहङ्कारसे मुक्त, निन्दा और चुगलीसे रहित तथा आत्मज्ञानके अनुकूल गुणोंसे युक्त हो तो वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। यति विधिपूर्वक स्नान और आचमन करके पवित्र हो देवालय आदिमें प्रणव नामक सनातन देवताका निरन्तर जप करता रहे। वह

यज्ञोपवीतधारी एवं शान्त-चित्त होकर हाथमें कुश धारण करके धुला हुआ गेरुआ वस्त्र पहने, सारे शरीरमें भस्म रमाये, वेदान्तप्रतिपादित अधियज्ञ, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक ब्रह्मका एकाग्रभावसे चिन्तन करे। जो सदा वेदका ही अध्यास करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। अहिंसा, सत्य, चोरीका अभाव, ब्रह्मचर्य, उत्तम तप, क्षमा, दया और संतोष—ये संन्यासीके विशेष व्रत हैं। वह प्रतिदिन स्वाध्याय तथा दोनों संध्याओंके समय गायत्रीका जप करे। एकान्तमें बैठकर निरन्तर परमेश्वरका ध्यान करता रहे। सदा एक स्थानके अन्तर्का त्याग करे; साथ ही काम, क्रोध तथा संग्रहको भी त्याग दे। वह एक या दो वस्त्र पहनकर शिखा और यज्ञोपवीत धारण किये हाथमें कमण्डलु लिये रहे। इस प्रकार त्रिष्टु धारण करनेवाला विद्वान् संन्यासी परमपदको प्राप्त होता है।

— ★ — संन्यासीके नियम

व्यासजी कहते हैं—द्विजवरो! इस प्रकार आश्रममें निष्ठा रखनेवाले तथा नियमित जीवन बितानेवाले संन्यासियोंके लिये फल-मूल अथवा भिक्षासे जीवन-निर्वाहकी बात कही गयी। उसे एक ही समय भिक्षा माँगनी चाहिये। अधिक भिक्षाके संग्रहमें आसक्त नहीं होना चाहिये; क्योंकि भिक्षामें आसक्त होनेवाला संन्यासी विषयोंमें भी आसक्त हो जाता है। सात घण्टेतक भिक्षाके लिये जाय। यदि उनमें न मिले तो फिर न माँगे। भिक्षुको चाहिये कि वह एक बार भिक्षाका नाम लेकर चुप हो जाय और नीचे मुँह किये एक द्वारपर उतनी ही देरतक सड़ा रहे, जितनी देरमें एक गाय दुही जाती है। भिक्षा मिल जानेपर हाथ-पैर धोकर विधिपूर्वक आचमन करे और पवित्र हो मौन-भावसे

भोजन करे।† पहले वह अन्न सूर्यको दिखा ले; फिर पूर्वाभिमुख हो पाँच बार प्राणाग्निहोत्र करके अर्थात् ‘प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा’ इन मन्त्रोंसे पाँच ग्रास अन्न मुँहमें डालकर एकाग्र चित्त हो आठ ग्रास अन्न भोजन करे। भोजनके पश्चात् आचमन करके भगवान् ब्रह्माजी एवं परमेश्वरका ध्यान करे। तूँबी, लकड़ी, मिट्टी तथा बाँस—इन्हीं चारोंके बने हुए पात्र संन्यासीके उपयोगमें आते हैं, ऐसा प्रजापति मनुका कथन है। रातके पहले पहरमें, मध्यरात्रिमें तथा रातके पिछले पहरमें विश्वकी उत्पत्तिके कारण एवं विश्व-नामसे प्रसिद्ध ईश्वरको अपने हृदय-कमलमें स्थापित करके ध्यान-सम्बन्धी विशेष इलोकों एवं मन्त्रोंके द्वारा उनका इस प्रकार

* दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्। सत्यपूतां वदेद्वाणीं मनःपूतं समाचरेत्॥ (५९। १९)

† सप्तागारं चोद् भैश्यमलाभं न पुनश्चरेत्। गोदोहमात्रं तिष्ठेत् कालं भिक्षुरधोमुखः॥

भिक्षेत्पुक्त्वा सकृत्तूष्णीमश्रीयाद् वाग्यतः शुचिः। प्रक्षालयं पाणिपादं च समाचम्य यथाविधि॥ (६०। ३-४)

चिन्तन करे। परमेश्वर सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा, अज्ञानमय अन्यकारसे परे विराजमान, सबके आधार, अव्यक्त-स्वरूप, आनन्दमय, ज्योतिर्मय, अविनाशी, प्रकृति और पुरुषसे अतीत, आकाशकी भाँति निलेंप, परम कल्याण-मय, समस्त भावोंकी चरम सीमा, सबका शासन करने-वाले तथा ब्रह्मरूप हैं।

तदनन्तर प्रणव-जपके पश्चात् आत्माको आकाश-स्वरूप परमात्मामें लीन करके उनका इस प्रकार ध्यान करे—‘परमात्मदेव सबके ईश्वर, हृदयाकाशके बीच विराजमान, समस्त भावोंकी उत्पत्तिके कारण, आनन्दके एकमात्र आधार तथा पुराणपुरुष श्रीविष्णु हैं। इस प्रकार ध्यान करनेवाला पुरुष भव-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो समस्त प्राणियोंका जीवन है, जहाँ जगत्का लय होता है तथा मुमुक्षु पुरुष जिसे ब्रह्मका सूक्ष्म आनन्द समझते हैं, उस परम व्योमके भीतर केवल—अद्वितीय ज्ञान-स्वरूप ब्रह्म स्थित है, जो अनन्त, सत्य एवं ईश्वररूप है।’ इस प्रकार ध्यान करके मौन हो जाय। यह संन्यासियोंके लिये गोपनीयसे भी अत्यन्त गोपनीय ज्ञानका वर्णन किया गया। जो सदा इस ज्ञानमें स्थित रहता है, वह इसके द्वारा ईश्वरीय योगका अनुभव करता है। इसलिये संन्यासीको उचित है कि वह सदा ज्ञानके अभ्यासमें तत्पर और आत्मविद्यापरायण होकर ज्ञानस्वरूप ब्रह्मका चिन्तन करे, जिससे भव-बन्धनसे छुटकारा मिले।

पहले आत्माको सब (दृश्य-पदार्थों) से पृथक्, केवल—अद्वितीय, आनन्दमय, अक्षर—अविनाशी एवं ज्ञानस्वरूप जान ले; इसके बाद उसका ध्यान करे। जिनसे सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति होती है, जिन्हें जानकर मनुष्य पुनः इस संसारमें जन्म नहीं लेता, वे परमात्मा इसलिये ईश्वर कहलाते हैं कि वे सबसे परे स्थित हैं—सबके ऊपर अध्यक्षस्वरूपसे विराजमान हैं। उन्हींके भीतर उस शाश्वत, कल्याणमय अविनाशी ब्रह्मका ज्ञान होता है, जो इस दृश्य जगत्के रूपमें प्रत्यक्ष और स्वस्वरूपसे परोक्ष है, वे ही महेश्वर देव हैं। संन्यासियोंके जो व्रत बताये गये हैं, वैसे ही उनके भी व्रत हैः उन व्रतोंमेंसे एक-एकका उल्लङ्घन करनेपर भी प्रायश्चित्त करना पड़ता है।

संन्यासी यदि कामनापूर्वक खीके पास चला जाय तो एकाग्रचित्त होकर प्रायश्चित्त करे। उसे पवित्र होकर प्राणायामपूर्वक सांतपन^३-व्रत करना चाहिये। सांतपनके बाद चित्तको एकाग्र करके शौच-संतोषादि नियमोंका पालन करते हुए वह कृच्छ्रव्रतका^४ अनुष्ठान करे। तदनन्तर आश्रममें आकर पुनः आलस्यरहित हो भिक्षुरूपसे विचरता रहे। असत्यका प्रयोग कभी नहीं करना चाहिये; क्योंकि यह झूठका प्रसङ्ग बड़ा भयङ्कर होता है। धर्मकी अभिलाषा रखनेवाला संन्यासी यदि झूठ बोल दे तो उसके प्रायश्चित्तके लिये एक रात

१- ओंकारान्तेऽथ चात्मानं समाप्य परमात्मनि। आकाशे देवमीशानं ध्यायेदाकाशमध्यगम् ॥

कारणं सर्वभावानामानन्दैकसमाश्रयम्। पुराणपुरुषं विष्णुं ध्यायन्मुच्येत् बन्धनात् ॥

जीवनं सर्वभूतानां यत्र लोकः प्रलीयते। आनन्दं ब्रह्मणः सूक्ष्मं यत्पश्यन्ति मुमुक्षवः ॥

तन्मध्ये निहितं ब्रह्म केवलं ज्ञानलक्षणम्। अनन्तं सत्यमीशानं विचिन्त्यासीत वाग्यतः ॥

गुह्याद् गुह्यतमं ज्ञानं यतीनामेतदीरितम्। योऽत्र तिष्ठेत्सदानेन सोऽश्रुते योगमैश्वरम् ॥

तस्माज्जानरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः। ज्ञानं समभ्यसेद् ब्रह्म येन मुच्येत् बन्धनात् ॥

मत्वा पृथक् तमात्मानं सर्वस्मादेव केवलम्। आनन्दमक्षरं ज्ञानं ध्यायेत् च ततः परम् ॥

यस्माद् भवन्ति भूतानि यज्ञात्वा नेह जायते ।

स तस्मादीश्वरो देवः परस्ताद् योऽधितिष्ठति। यदन्तरे तदगमनं शाश्वतं शिवमव्ययम् ॥

य इदं स्वपरोक्षस्तु स देवः स्यान्महेश्वरः। ब्रतानि यानि भिक्षूणां तथैवास्य ब्रतानि च ॥ (६०। ११-१२, १४—२०)

२- गोमूत्र, गोबर, गायका दूध, गायका दही, गायका शी और कुशका जल—इन सबको मिलाकर पी ले तथा उस दिन और कुछ भी न खाय, फिर दूसरे दिन चौबीस घंटे उपवास करे। यह दो दिनका सांतपन-व्रत होता है। ३- यदि उपर्युक्त छः वस्तुओंमेंसे एक-एकको एक-एक दिन खाकर रहे और सातवें दिन उपवास करे तो यह कृच्छ्र या महासांतपन-व्रतं कहलाता है।

उपवास और सौ प्राणायाम करने चाहिये।

बहुत बड़ी आपत्तिमें पड़नेपर भी संन्यासीको किसी दूसरेके यहाँसे चोरी नहीं करनी चाहिये। स्मृतियोंका कथन है कि चोरीसे बढ़कर दूसरा कोई अधर्म नहीं है* हिसा, तृष्णा और याचना—ये आत्मज्ञानका नाश करनेवाली हैं। जिसे धन कहते हैं, वह मनुष्योंका बाह्य प्राण ही है। जो जिसके धनका अपहरण करता है, वह मानो उसके प्राण ही हर लेता है। ऐसा करके दुष्टात्मा पुरुष आचारप्रष्ट हो अपने व्रतसे गिर जाता है। यदि संन्यासी अकस्मात् किसी जीवकी हिसा कर बैठे तो कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र अथवा चान्द्रायण व्रतका अनुष्ठान करे।† यदि भिक्षुका उसकी अपनी इन्द्रियोंकी दुर्बलताके कारण किसी स्त्रीको देखकर वीर्यपात हो जाय तो उसे सोलह प्राणायाम करने चाहिये। विद्वानो ! दिनमें वीर्यपात होनेपर वह तीन रातका व्रत और सौ प्राणायाम करे। यदि वह एक स्थानका अन्न, मधु, नवीन श्राद्धका अन्न तथा खाली नमक खा ले तो उसकी शुद्धिके लिये प्राजापत्यव्रत‡ बताया गया है।

सदा ध्यानमें स्थित रहनेवाले पुरुषके सारे पातक नष्ट

हो जाते हैं। इसलिये महेश्वरका चिन्तन करते हुए सदा उन्हींके ध्यानमें संलग्न रहना चाहिये। जो परम ज्योतिः—स्वरूप ब्रह्म, सबका आश्रय, अक्षर, अव्यय, अन्तरात्मा तथा परब्रह्म हैं, उन्हींको भगवान् महेश्वर समझना चाहिये। ये महादेवजी केवल परम शिवरूप हैं। ये ही अक्षर, अद्वैत एवं सनातन परमपद हैं। वे देव स्वप्रकाशस्वरूप हैं, ज्ञान उनकी संज्ञा है, वे ही आत्मयोगरूप तत्त्व हैं, उनमें सबकी महिमा—प्रतिष्ठा होती है, इसलिये उन्हें महादेव कहा गया है। § जो महादेवजीके सिवा दूसरे किसी देवताको नहीं देखता, अपने आत्मस्वरूप उन महादेवजीका ही अनुसरण करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। जो अपनेको उन परमेश्वरसे भिन्न मानते हैं, वे उन महादेवजीका दर्शन नहीं पाते; उनका परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। एकमात्र परब्रह्म ही जानने योग्य अविनाशी तत्त्व है, वे ही देवाधिदेव महादेवजी हैं। इस बातको जान लेनेपर मनुष्य कभी बन्धनमें नहीं पड़ता। इसलिये संन्यासी अपने मनको वशमें करके नियमपूर्वक साधनमें लगा रहे तथा शान्तभावसे महादेवजीके शरणागत होकर ज्ञानयोगमें तत्पर रहे। ×

* परमापद्मतेनापि न कार्यं स्तेयमन्यतः। स्तेयादभ्यधिकः कश्चित्त्रास्त्यर्थम् इति सृतिः ॥ (६० । २५)

† कृच्छ्रव्रत पहले बताया जा चुका है। तीन दिन सबैरे, तीन दिन शामको और तीन दिन बिना माँगे एक-एक ग्रास अन्न खाय और अन्तमें तीन दिनोंतक उपवास करे—यह अतिकृच्छ्रव्रत है। चान्द्रायणव्रत कई प्रकारका होता है; एक वृद्धि-क्रमसे किया जाता है और दूसरा हास-क्रमसे। प्रतिदिन सायं, प्रातः और मध्याह्नकालमें ज्ञान करते हुए, पूर्णिमाको पंद्रह ग्रास भोजन करे; तदनन्तर कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे एक-एक ग्रास घटाये। चतुर्दशीको एक ग्रास भोजन करके अमावास्याको उपवास करे। फिर शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको एक ग्रास भोजन करके प्रतिदिन एक-एक ग्रास बढ़ाता रहे। पूर्णिमाको पंद्रह ग्रास खाकर व्रत पूर्ण किया जाता है। यह एक प्रकार है। दूसरा अमावास्याको उपवास करके आरम्भ किया जाता है; इसमें पहले एक-एक ग्रास बढ़ाया जाता है, फिर पूर्णिमाके बाद एक-एक ग्रास घटाते हुए अमावास्याको उपवास करके समाप्त किया जाता है।

‡ तीन दिन सबैरे, तीन दिन शामको और तीन दिन अयाचित अन्न भोजन करके अन्तमें तीन दिनोंतक लगातार उपवास करे; यह प्राजापत्यव्रत है।

§ ध्याननिष्ठस्य सततं नश्यते सर्वपातकम्। तस्मान्महेश्वरं ध्यात्वा तस्य ध्यानपरो भवेत् ॥

यद् ब्रह्म परमं ज्योतिः प्रतिष्ठाक्षरमव्ययम्। योऽन्तरात्मा परं ब्रह्म स विज्ञेयो महेश्वरः ॥

एष देवो महादेवः केवलः परमः शिवः। तदेवाक्षरमद्वैतं सदानित्यं परं पदम् ॥

तस्मिन्महीयते देवे स्वधाम्नि ज्ञानसंज्ञिते। आत्मयोगात्मके तत्त्वे महादेवस्ततः सृतः ॥ (६० । ३२—३५)

× एक्लेव परं ब्रह्म विज्ञेयं तत्त्वमव्ययम्। स देवस्तु महादेवो नैतद् विज्ञाय बध्यते ॥
तस्माद् यतेत नियतं यतिः संयतमानसः। ज्ञानयोगरतः शान्तो महादेवपरायणः ॥ (६० । ३८-३९)

ब्राह्मणो ! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे संन्यासियोंके कल्याणमय आश्रम-धर्मका वर्णन किया । इसे मुनिवर भगवान् ब्रह्माजीने पूर्वकालमें उपदेश किया था । संन्यास-धर्मसे संबन्ध रखनेवाला यह परम उत्तम कल्याणमय ज्ञान साक्षात् स्वयम्भू ब्रह्माजीका बताया हुआ है; अतः पुनः

शिष्य तथा योगियोंके सिवा दूसरे किसीको इसका उपदेश नहीं करना चाहिये । द्विजवरो ! इस प्रकार मैंने संन्यासियोंके नियमोंका विधान बताया है; यह देवेश्वर ब्रह्माजीके संतोषका एकमात्र साधन है । जो मन लगाकर प्रतिदिन इन नियमोंका पालन करते हैं, उनका जन्म अथवा मरण नहीं होता ।



भगवद्भक्तिकी प्रशंसा, स्त्री-सङ्गकी निन्दा, भजनकी महिमा, ब्राह्मण, पुराण और गङ्गाकी महत्ता, जन्म आदिके दुःख तथा हरिभजनकी आवश्यकता

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! पूर्वकालमें अमित तेजस्वी व्यासजीने इस प्रकार आश्रम-धर्मका वर्णन किया था । इतना उपदेश करनेके पश्चात् उन सत्यवती-नन्दन भगवान् व्यासने समस्त मुनियोंको भलीभाँति आश्वासन दिया और जैसे आये थे, वैसे ही वे चले गये । वही यह वर्णाश्रम-धर्मकी विधि है, जिसका मैंने आपलोगोंसे वर्णन किया है । इस प्रकार वर्ण-धर्म तथा आश्रम-धर्मका पालन करके ही मनुष्य भगवान् विष्णुका प्रिय होता है, अन्यथा नहीं । द्विजवरो ! अब इस विषयमें मैं आपलोगोंको रहस्यकी बात बताता हूँ सुनिये । यहाँ वर्ण और आश्रमसे सम्बन्ध रखनेवाले जो धर्म बताये गये हैं, वे सब हरि-भक्तिकी एक कलाके अंशके अंशकी भी समानता नहीं कर सकते । कलियुगमें मनुष्योंके लिये इस मर्त्यलोकमें एकमात्र हरि-भक्ति ही साध्य है । जो कलियुगमें भगवान् नारायणका पूजन करता है, वह धर्मके फलका भागी होता है । अनेकों नामोद्वारा जिन्हें पुकारा जाता है तथा जो इन्द्रियोंके नियन्ता हैं, उन परम शान्त सनातन भगवान् दामोदरको हृदयमें स्थापित करके मनुष्य तीनों लोकोंपर विजय पा जाता है । जो द्विज हरिभक्तिरूपी अमृतका पान कर लेता है, वह कलिकालरूपी साँपके डँसनेसे फैले

हुए पापरूपी भयंकर विषसे आत्मरक्षा करनेके योग्य हो जाता है । यदि मनुष्योंने श्रीहरिके नामका आश्रय ग्रहण कर लिया तो उन्हें अन्य मन्त्रोंके जपकी क्या आवश्यकता है ।* जो अपने मस्तकपर श्रीविष्णुका चरणोदक धारण करता है, उसे स्नानसे क्या लेना है । जिसने अपने हृदयमें श्रीहरिके चरणकमलोंको स्थापित कर लिया है, उसको यज्ञसे क्या प्रयोजन है । जिन्होंने सभामें भगवान्‌की लीलाओंका वर्णन किया है, उन्हें दानकी क्या आवश्यकता है । जो श्रीहरिके गुणोंका श्रवण करके बारंबार हर्षित होता है, भगवान् श्रीकृष्णमें चित्त लगाये रखनेवाले उस भक्त पुरुषको वही गति प्राप्त होती है, जो समाधिमें आनन्दका अनुभव करनेवाले योगीको मिलती है । पाखण्डी और पापासक्त पुरुष उस आनन्दमें विघ्न डालनेवाले बताये गये हैं । नारियाँ तथा उनका अधिक सङ्ग करनेवाले पुरुष भी हरिभक्तिमें बाधा पहुँचानेवाले हैं ।

स्त्रियाँ नेत्रोंके कटाक्षसे जो संकेत करती हैं, उसका उल्लङ्घन करना देवताओंके लिये भी कठिन होता है । जिसने उसपर विजय पा ली है, वही संसारमें भगवान्‌का भक्त कहलाता है । मुनि भी इस लोकमें नारीके चरित्रपर लुभाकर मतवाले हो उठते हैं । ब्राह्मणो ! जो लोग

* कलौ नारायणं देवं यजते यः स धर्मभाक् । दामोदरं हृषीकेशं पुरुहूतं सनातनम् ॥

द्विदि कृत्वा परं शान्तं जितमेव जगत्त्रयम् । कलिकालोरगादंशात् किल्बिषात् कालकूटतः ॥

हरिभक्तिसुधां पीत्वा उल्लङ्घ्यो भवति द्विजः । किं जपैः श्रीहरेनाम गृहीतं यदि मानुषैः ॥

नारीकी भक्तिका आश्रय लेते हैं, उन्हें भगवान्‌की भक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है ? * द्विजो ! बहुत-सी राक्षसियाँ कामिनीका वेष धारण करके इस संसारमें विचरती रहती हैं, वे सदा मनुष्योंकी बुद्धि एवं विवेकको अपना ग्रास बनाया करती हैं।

विग्रण ! जबतक किसी सुन्दरी स्त्रीके चञ्चल नेत्रोंका कटाक्ष, जो सम्पूर्ण धर्मोंका लोप करनेवाला है, मनुष्यके ऊपर नहीं पड़ता तभीतक उसकी विद्या कुछ करनेमें समर्थ होती है, तभीतक उसे ज्ञान बना रहता है। तभीतक सब शास्त्रोंको धारण करनेवाली उसकी मेधा-शक्ति निर्मल बनी रहती है। तभीतक जप-तप और तीर्थसेवा बन पड़ती है। तभीतक गुरुकी सेवा संभव है और तभीतक इस संसार-सागरसे पार होनेके साधनमें मनुष्यका मन लगता है। इतना ही नहीं, बोध, विवेक, सत्सङ्गकी रुचि तथा पौराणिक बातोंको सुननेकी लालसा भी तभीतक रहती है।

जो भगवच्चरणारविन्दोंके मकरन्दका लेशमात्र भी पाकर आनन्दमग्न हो जाते हैं, उनके ऊपर नारियोंके चञ्चल कटाक्ष-पातका प्रभाव नहीं पड़ता। द्विजो ! जिन्होंने प्रत्येक जन्ममें भगवान्‌हृषीकेशका सेवन किया है, ब्राह्मणोंको दान दिया है तथा अग्रिमें हवन-किया है, उन्होंको उन-उन विषयोंकी ओरसे वैराग्य होता है। † स्त्रियोंमें सौन्दर्य नामकी वस्तु ही क्या है ? पीब, मूत्र, विष्टा, रक्त, त्वचा, मेदा, हड्डी और मज्जा—इन सबसे युक्त जो ढाँचा है, उसीका नाम है शरीर। भला, इसमें सौन्दर्य कहाँसे आया। उपर्युक्त वस्तुओंको पृथक्-पृथक् करके यदि छू लिया जाय तो स्नान करके ही मनुष्य शुद्ध

होता है। किन्तु ब्राह्मणो ! इन सभी वस्तुओंसे युक्त जो अपवित्र शरीर है, वह लोगोंको सुन्दर दिखायी देता है। अहो ! यह मनुष्योंकी अत्यन्त दुर्दशा है, जो दुर्भाग्यवश घटित हुई है। पुरुष उभरे हुए कुचोंसे युक्त शरीरमें स्त्री-बुद्धि करके प्रवृत्त होता है; किन्तु कौन स्त्री है ? और कौन पुरुष ? विचार करनेपर कुछ भी सिद्ध नहीं होता। इसलिये साधु पुरुषको सब प्रकारसे स्त्रीके सङ्गका परित्याग करना चाहिये। भला, स्त्रीका आश्रय लेकर कौन पुरुष इस पृथ्वीपर सिद्धि पा सकता है। कामिनी और उसका सङ्ग करनेवाले पुरुषका सङ्ग भी त्याग देना चाहिये। उनके सङ्गसे रौरव नरककी प्राप्ति होती है, यह बात प्रत्यक्ष प्रतीत होती है। ‡ जो लोग अज्ञानवश स्त्रियोंपर लुभाये रहते हैं, उन्हें दैवने ठग लिया है। नारीकी योनि साक्षात् नरकका कुण्ड है। कामी पुरुषको उसमें पकना पड़ता है। क्योंकि जिस भूमिसे उसका आविर्भाव हुआ है, वहीं वह फिर रमण करता है। अहो ! जहाँसे मलजनित मूत्र और रज बहता है, वहीं मनुष्य रमण करता है ! उससे बढ़कर अपवित्र कौन होगा। वहाँ अत्यन्त कष्ट है; फिर भी मनुष्य उसमें प्रवृत्त होता है ! अहो ! यह दैवकी कैसी विडम्बना है ? उस अपवित्र योनिमें बारंबार रमण करना—यह मनुष्योंकी कितनी निर्लज्जता है ! अतः बुद्धिमान्‌ पुरुषको स्त्री-प्रसङ्गसे होनेवाले बहुतेरे दोषोंपर विचार करना चाहिये।

मैथुनसे बलकी हानि होती है और उससे उसको अत्यन्त निद्रा (आलस्य) आने लगती है। फिर नींदसे बेसुध रहनेवाले मनुष्यकी आयु कम हो जाती है। इसलिये बुद्धिमान्‌ पुरुषको उचित है कि वह नारीको

* नारीणं नयनादेशः सुरणामपि दुर्जयः। स येन विजितो लोके हरिभक्तः स उच्यते ॥
माद्यन्ति मुनयोऽप्यत्र नारीचरितलोलुपाः। हरिभक्तिः कुतः पुंसां नारीभक्तिजुंशां द्विजाः ॥

† तत्र ये हरिपादाब्जमधुलेशप्रयोदिताः। तेषां न नारीलोलक्षिक्षेपणं हि प्रभुर्भवेत् ॥
जन्म जन्म हृषीकेशसेवनं यैः कृतं द्विजाः। द्विजे दत्तं हुतं वहौ विरतिस्तत्र तत्र हि ॥

‡ कामिनीकामिनीसङ्गिसङ्गमित्यपि संत्यजेत्। तत्सङ्गाद् रौरवमिति साक्षादेव प्रतीयते ॥

अपनी मृत्युके समान समझे और मनको प्रयत्नपूर्वक भगवान् गोविन्दके चरण-कमलोंमें लगावे । श्रीगोविन्दके चरणोंकी सेवा इहलोक और परलोकमें भी सुख देनेवाली है । उसे छोड़कर कौन महामूर्ख पुरुष स्त्रीके चरणोंका सेवन करेगा । भगवान् जनार्दनके चरणोंकी सेवा मोक्ष प्रदान करनेवाली है तथा स्त्रियोंकी योनिका सेवन योनिके ही संकटमें डालनेवाला है । * योनिसेवी पुरुषको बार-बार योनिमें ही गिरना पड़ता है; यन्त्रमें कसे जानेवालेको जैसा कष्ट होता है, वैसी ही यातना उसे भी भोगनी पड़ती है । परन्तु फिर भी वह योनिकी ही अभिलाषा करता है । यह पुरुषकी कैसी विडम्बना है । इसे जानना चाहिये । मैं अपनी भुजाएँ ऊपर उठाकर कहता हूँ, मेरी उत्तम बात सुनो—श्रीगोविन्दमें मन लगाओ, यातना देनेवाली योनिमें नहीं । †

जो स्त्रीकी आसक्ति छोड़कर विचरता है, वह मानव पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल पाता है । यदि दैवयोगसे उत्तम कुलमें उत्पन्न सती-साध्वी स्त्रीसे मनुष्यका विवाह हो जाय तो उससे पुत्रका जन्म होनेके पश्चात् फिर उसके साथ समागम न करे । ऐसे पुरुषपर भगवान् जगदीश्वर संतुष्ट होते हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । धर्मज्ञ पुरुष स्त्रीके सङ्गको असत्सङ्ग कहते हैं । उसके रहते भगवान् श्रीहरिमें सुदृढ़ भक्ति नहीं होती । इसलिये सब प्रकारके सङ्गोंका परित्याग करके भगवान्‌की भक्ति ही करनी चाहिये ।

मेरे विचारसे इस संसारमें श्रीहरिकी भक्ति दुर्लभ है । जिसकी भगवान्‌में भक्ति होती है, वह मनुष्य निःसंदेह कृतार्थ हो जाता है । उसी-उसी कर्मका अनुष्ठान करना चाहिये, जिससे भगवान् प्रसन्न हों । भगवान्‌के संतुष्ट और तृप्त होनेपर सम्पूर्ण जगत् संतुष्ट एवं तृप्त होता है । श्रीहरिकी भक्तिके बिना मनुष्योंका जन्म व्यर्थ बताया गया है । जिनकी प्रसन्नताके लिये ब्रह्मा आदि देवता भी यजन करते हैं, उन आदि-अन्तरहित भगवान् नारायणका भजन कौन नहीं करेगा ? जो अपने हृदयमें श्रीजनार्दनके युगल चरणोंकी स्थापना करता है, उसकी माता परम सौभाग्यशालिनी और पिता महापुण्यात्मा हैं । 'जगद्वन्द्व जनार्दन ! शरणागतवत्सल !' आदि कहकर जो मनुष्य भगवान्‌को पुकारते हैं, उनको नरकमें नहीं जाना पड़ता ।‡

विशेषतः ब्राह्मणोंका, जो साक्षात् भगवान्‌के स्वरूप हैं, जो लोग यथायोग्य पूजन करते हैं, उनके ऊपर भगवान् प्रसन्न होते हैं । भगवान् विष्णु ही ब्राह्मणोंके रूपमें इस पृथ्वीपर विचरते हैं । ब्राह्मणके बिना कोई भी कर्म सिद्ध नहीं होता । जिन्होंने भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंका चरणोदक पीकर उसे मस्तकपर चढ़ाया है, उन्होंने अपने पितरोंको तृप्त कर दिया तथा आत्माका भी उद्धार कर लिया । जिन्होंने ब्राह्मणोंके मुखमें सम्मानपूर्वक मधुर अन्न अर्पित किया है, उनके द्वारा साक्षात् श्रीकृष्णके ही मुखमें वह अन्न दिया गया है ।

* मैथुनाद् बलहानिः स्यान्निद्रातितरुणायते । निद्र्यापहतज्ञानो ह्याल्पायुर्जायते नरः ॥
तस्मात् प्रयत्नतो धीमात्रार्थं मृत्युमिवात्मनः । पश्येद्गोविन्दपादाब्जे मनो वै रमयेद् बुधः ॥
इहामुत्र सुखं तद्धि गोविन्दपदसेवनम् । विहाय को महामृदो नारीपादं ही सेवते ॥
जनार्दनाङ्गिसेवा हि ह्यपुनर्भवदायिनी । नारीणां योनिसेवा हि योनिसंकटकारिणी ॥ (६१ । ३२—३५)

† ऊर्ध्वबाहुरहं वच्च शृणु मे परमं वचः । गोविन्दे धेहि हृदयं न योनौ यातनाजुषि ॥ (६१ । ३७)

‡ हरिभक्तिश्च लोकेऽत्र दुर्लभा हि मता मम । हरै यस्य भवेद् भक्तिः स कृतार्थो न संशयः ॥

तत्तदेवाचरेत्कर्म हरिः प्रीणति येन हि । तस्मिंस्तुष्टे जगत्तुष्टे प्रीणिते प्रीणितं जगत् ॥

हरै भक्तिं विना नृणां वृथा जन्म प्रकीर्तिम् । ब्रह्मादयः सुरा यस्य यजन्ते प्रीतिहेतवे ॥

नारायणमनाद्यन्तं न तं सेवेत को जनः ।

तस्य माता महाभागा पिता तस्य महाकृती । जनार्दनपद्वन्द्वं हृदये येन धार्यते ॥

जनार्दन जगद्वन्द्व शरणागतवत्सल । इतीरयन्ति ये मर्त्यां न तेषां निरये गतिः ॥ (६१ । ४२—४६)

इसमें सन्देह नहीं कि साक्षात् श्रीहरि ही उस अन्नको भोग लगाते हैं। ब्राह्मणोंके रहनेसे ही यह पृथ्वी धन्य मानी गयी है। उनके हाथमें जो कुछ दिया जाता है, वह भगवान्‌के हाथमें ही समर्पित होता है। उनको नमस्कार करनेसे पापोंका नाश होता है। ब्राह्मणकी वन्दना करनेसे मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है। इसलिये ब्राह्मण सत्युरुषोंके लिये विष्णुबुद्धिसे आराधना करनेके योग्य हैं। भूखे ब्राह्मणके मुखमें यदि कुछ अन्न दिया जाय तो दाता मृत्युके पश्चात् परलोकमें जानेपर करोड़ कल्पोंतक अमृतकी धारासे अभिषिक्त होता है। ब्राह्मणोंका मुख ऊंसर और काँटोंसे रहित बहुत बड़ा है; वहाँ यदि कुछ बोया जाता है तो उसका कोटि-कोटिगुना अधिक फल प्राप्त होता है। ब्राह्मणको धृतसहित भोजन देकर मनुष्य एक कल्पतक अनन्दका अनुभव करता है। जो ब्राह्मणको संतुष्ट करनेके लिये नाना प्रकारके सुन्दर मिष्ठान दान करता है, उसे कोटि कल्पोंतक महान् भोग-सम्पन्न लोक प्राप्त होते हैं।

ब्राह्मणको आगे करके ब्राह्मणके द्वारा ही कही हुई पुराण-कथाका प्रतिदिन श्रवण करना चाहिये। पुराण बड़े-बड़े पापोंके वनको भस्म करनेके लिये महान् दावानलके समान है। पुराण सब तीर्थोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ तीर्थ बताया जाता है, जिसके चतुर्थांशका श्रवण करनेसे श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं। जैसे भगवान् श्रीहरि सम्पूर्ण जगत्को प्रकाश देने तथा सबको दृष्टि प्रदान करनेके लिये सूर्यका स्वरूप धारण करके विचरते हैं, उसी प्रकार श्रीहरि ही अन्तःकरणमें ज्ञानका प्रकाश फैलानेके लिये पुराणोंका रूप धारण करके जगत्में विचरते हैं। पुराण परम पावन शास्त्र है। अतः यदि श्रीहरिकी प्रसन्नता प्राप्त करनेका मन हो तो मनुष्योंको निरन्तर श्रीकृष्णरूपी परमात्माके पुराणका श्रवण करना चाहिये। विष्णुभक्ति पुरुषको शान्तभावसे पुराण सुनना उचित है; क्योंकि वह

अत्यन्त दुर्लभ है। पुराणकी कथा बड़ी निर्मल है तथा अन्तःकरणको निर्मल बनानेका उत्कृष्ट साधन है। व्यासरूपधारी श्रीहरिने वेदार्थोंका संग्रह करके पुराणकी रचना की है; अतः उसके श्रवणमें तत्पर रहना चाहिये। पुराणमें धर्मका निश्चय किया गया है और धर्म साक्षात् केशवका स्वरूप है; अतः विद्वान् पुरुष पुराण सुन लेनेपर विष्णुरूप हो जाता है। एक तो ब्राह्मण ही साक्षात् श्रीहरिका रूप है, दूसरे पुराण भी वैसा ही है; अतः उन दोनोंका सङ्ग पाकर मनुष्य विष्णुरूप ही हो जाता है।

इसी प्रकार गङ्गाजीके जलसे अभिषिक्त होनेपर मनुष्य अपने पापोंको दूर भगा देता है; भगवान् केशव ही जलके रूपमें इस भूमप्डलका पापसे उद्धार कर रहे हैं। यदि वैष्णव पुरुष विष्णुके भजनकी अभिलाषा रखता हो तो उसे गङ्गाजीके जलका निर्मल अभिषेक प्राप्त करना चाहिये; क्योंकि वह अन्तःकरणको शुद्ध करनेका उत्तम साधन है। इस पृथ्वीपर धगवती गङ्गा विष्णुभक्ति प्रदान करनेवाली बतायी जाती हैं। लोकोंका उद्धार करनेवाली गङ्गा वास्तवमें श्रीविष्णुका ही स्वरूप है। ब्राह्मणोंमें, पुराणोंमें, गङ्गामें, गौओंमें तथा पीपलके वृक्षमें नारायण-बुद्ध करके मनुष्योंको उनके प्रति निष्काम भक्ति करनी चाहिये।* तत्त्वज्ञ पुरुषोंने इन्हें विष्णुका प्रत्यक्ष स्वरूप निश्चित किया है। अतः विष्णु-भक्तिकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषोंको सदा इनकी पूजा करनी चाहिये।

विष्णुमें भक्ति किये बिना मनुष्योंका जन्म निष्कल बताया जाता है। कलिकाल ही जिसके भीतर जल-राशि है, जो पापरूपी ग्रहोंसे भरा हुआ है, विषयासक्ति ही जिसमें भैंवर है, दुर्बोध ही फेनका काम देता है, महादुषरूपी सर्पोंके कारण जो अत्यन्त भयानक प्रतीत होता है, उस दुस्तर भवसागरको हरिभक्तिकी नैकापर

* विष्णुभक्तिप्रदा देवी गङ्गा मुवि च गीयते। विष्णुरूपा हि सा गङ्गा लोकनिस्तारकारिणी ॥
ब्राह्मणेषु पुराणेषु गङ्गायां गोषु पिप्पले। नारायणधिया पुष्पिर्भक्तिः कार्या ह्यहैतुकी ॥

बैठे हुए मनुष्य पार कर जाते हैं। इसलिये लोगोंको हरिभक्तिकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करना चाहिये। लोग बुरी-बुरी बातोंको सुननेमें क्या सुख पाते हैं, जो अद्भुत लीलाओंवाले श्रीहरिकी लीलाकथामें आसक्त नहीं होते। यदि मनुष्योंका मन विषयमें ही आसक्त हो तो लोकमें नाना प्रकारके विषयोंसे मिश्रित उनकी विचित्र कथाओंका ही श्रवण करना चाहिये। द्विजो ! यदि निर्वाणमें ही मन रमता हो, तो भी भगवत्कथाओंको सुनना उचित है; उन्हें अवहेलनापूर्वक सुननेपर भी श्रीहरि संतुष्ट हो जाते हैं। भक्तवत्सल भगवान् हृषीकेश यद्यपि निष्क्रिय हैं, तथापि उन्होंने श्रवणकी इच्छावाले भक्तोंका हित करनेके लिये नाना प्रकारकी लीलाएँ की हैं। सौ वाजपेय आदि कर्म तथा दस हजार राजसूय यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी भगवान् उतनी सुगमतासे नहीं मिलते, जितनी सुगमतासे वे भक्तिके द्वारा प्राप्त होते हैं। जो हृदयसे सेवन करने योग्य, संतोंके द्वारा बारंबार सेवित तथा भवसागरसे पार होनेके लिये सार वस्तु है, श्रीहरिके उन चरणोंका आश्रय लो। रे विषयलोलुप पामरो ! और निष्ठुर मनुष्यो ! क्यों स्वयं अपने-आपको रैरेव नरकमें गिरा रहे हो। यदि तुम अनायास ही दुःखोंके पार जाना चाहते हो तो गोविन्दके चारु चरणोंका सेवन किये बिना नहीं जा सकोगे। भगवान् श्रीकृष्णके युगल चरण मोक्षके हेतु हैं; उनका भजन करो। मनुष्य कहाँसे आया है और कहाँ पुनः उसे जाना है, इस बातका विचार करके बुद्धिमान् पुरुष धर्मका संग्रह

करे। * क्योंकि नाना प्रकारके नरकोंमें गिरनेके पश्चात् यदि पुनः उत्थान होता है, तभी मनुष्यका जन्म मिलता है। वहाँ उसे गर्भवासका अत्यन्त दुःखदायी कष्ट तो भोगना ही पड़ता है। द्विजो ! फिर कर्मवश जीव यदि इस पृथ्वीपर जन्म लेता है, तो बाल्यावस्था आदिके अनेक दोषोंसे उसे पीड़ा सहनी पड़ती है। फिर युवावस्थामें पहुँचनेपर यदि दरिद्रता हुई तो उससे बहुत कष्ट होता है। भारी रोगसे तथा अनावृष्टि आदि आपत्तियोंसे भी फ़ेशा उठाना पड़ता है। वृद्धावस्थामें मनके इधर-उधर भटकनेसे जो कष्ट उसे प्राप्त होता है, उसका वर्णन नहीं हो सकता। तदनन्तर व्याधिके कारण समयानुसार मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है। संसारमें मृत्युसे बढ़कर दूसरे किसी दुःखका अनुभव नहीं होता।

तत्पश्चात् जीव अपने कर्मवश यमलोकमें पीड़ा भोगता है; वहाँ अत्यन्त दारूण यातना भोगकर फिर संसारमें जन्म लेता है। इस प्रकार वह बारंबार जन्मता और मरता तथा मरता और जन्मता रहता है। जिसने भगवान् गोविन्दके चरणोंकी आराधना नहीं की है, उसीकी ऐसी दशा होती है। गोविन्दके चरणोंकी आराधना न करनेवाले मनुष्यकी बिना कष्टके मृत्यु नहीं होती तथा बिना कष्टके उसे जीवन भी नहीं मिलता। यदि घरमें धन हो तो उसे रखनेसे क्या फल हुआ। जिस समय यमराजके दूत आकर जीवको खींचते हैं, उस समय धन क्या उसके पीछे-पीछे जाता है ? अतः ब्राह्मणोंके सत्कारमें लगाया हुआ धन ही सब प्रकारके

* कि सुखं लभते जन्मुसद्वार्तावधारणे । हरेद्भुतलीलस्य लीलाख्याने न सज्जते ॥
तद्विचित्रकथा लोके नाना विषयमिश्रिताः । श्रोतव्या यदि वै नृणां विषये सज्जते मनः ॥
निर्वाणं यदि वा चित्तं श्रोतव्या तदपि द्विजाः । हेल्या श्रवणाच्चापि तस्य तुष्टो भवेद्धरः ॥
निष्क्रियोऽपि हृषीकेशो नाना कर्म चकार सः । शुश्रूषूणां हितार्थाय भक्तानां भक्तवत्सलः ॥
न लभ्यते कर्मणापि वाजपेयशतादिना । राजसूयायुतेनापि यथा भक्त्या स लभ्यते ॥
यत्पदं चेत्सा सेव्यं सद्विराचरितं मुहुः । भवाव्यितरणे सारमाश्रयध्यं हरेः पदम् ॥
रे रे विषयसंलुप्ताः पामरा निष्ठुरा नराः । रैरेवे हि किमात्मानमात्मना पातयिष्यथ ॥
विना गोविन्दसौम्याद्घ्रिसेवनं मा गमिष्यथ । अनायासन दुःखानां तरणं यदि वाञ्छथ ॥
भजध्यं कृष्णचरणावपुनर्भवकारणे । कुत एवागतो मर्त्यः कुत एव पुनर्व्रेजत् ॥
एतद्विचार्य मतिमानश्रव्येद् धर्मसंग्रहम् । (६१। ७५—८४)

सुख देनेवाला है। दान स्वर्गकी सीढ़ी है, दान सब पापोंका नाश करनेवाला है। गोविन्दका भक्तिपूर्वक किया हुआ भजन महान् पुण्यकी वृद्धि करनेवाला है। यदि मनुष्यमें बल हो तो उसे व्यर्थ ही नष्ट न करे। आलस्य छोड़कर भगवान्‌के सामने नृत्य करे और गीत गाये। मनुष्यके पास जो कुछ हो, उसे भगवान् श्रीकृष्णको समर्पित कर दे। श्रीकृष्णको समर्पित की हुई वस्तु कल्याणदायिनी होती है और किसीको दी हुई वस्तु केवल दुःख देनेवाली होती है। नेत्रोंसे श्रीहरिकी ही प्रतिमा आदिका दर्शन तथा कानोंसे श्रीकृष्णके गुण और नामोंका ही अहर्निश श्रवण करे। विद्वान् पुरुषोंको अपनी जिह्वासे श्रीहरिके चरणोदकका आस्वादन करना चाहिये। नासिकासे श्रीगोविन्दके चरणारविन्दोंपर चढ़े हुए श्रीतुलसीदलको सूधकर, त्वचासे हरिभक्तका स्पर्श कर

तथा मनसे भगवान्‌के चरणोंका ध्यान करके जीव कृतार्थ हो जाता है—इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। विद्वान् पुरुष भगवान्‌में ही मन लगाये और हृदयमें उन्हींकी भावना करे; ऐसा करनेवाला मनुष्य अन्तमें भगवान्‌को ही प्राप्त होता है—इसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। जो मनसे भी निरन्तर चिन्तन करनेपर भक्तको अपना पद प्रदान कर देते हैं, उन आदि-अन्तरहित भगवान् नारायणका कौन मनुष्य सेवन नहीं करेगा। जो श्रीविष्णुके चरणारविन्दोंमें निरन्तर चित्त लगाये रहता है, भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये अपनी शक्तिके अनुसार दान किया करता है तथा उन्हींके युगल चरणोंमें प्रणाम करता, मन लगाता और अनुराग रखता है, वह इस मनुष्यलोकमें निश्चय ही पूज्यभावक्ते प्राप्त होता है।*



श्रीहरिके पुराणमय स्वरूपका वर्णन तथा पद्मपुराण और स्वर्गखण्डका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! इस प्रकार संसारमें जिनकी महिमा समस्त लोकोंका उद्धार करनेवाली है, उन नानारूपधारी परमेश्वर विष्णुका एक विग्रह पुराण भी है। पुराणोंमें पद्मपुराणका बहुत बड़ा महत्व है। (१) ब्रह्मपुराण श्रीहरिका मस्तक है। (२) पद्मपुराण हृदय है। (३) विष्णुपुराण उनकी दाहिनी भुजा है। (४) शिवपुराण उन महेश्वरकी बायाँ भुजा है।

(५) श्रीमद्भागवतको भगवान्‌का ऊरुयुगल कहा गया है। (६) नारदीय पुराण नाभि है। (७) मार्कप्डेयपुराण दाहिना तथा (८) अग्निपुराण बायाँ चरण है। (९) भविष्यपुराण महात्मा श्रीविष्णुका दाहिना घुटना है। (१०) ब्रह्मवैर्तपुराणको बायाँ घुटना बताया गया है। (११) लिङ्गपुराण दाहिना और (१२) वाराहपुराण बायाँ गुल्फ (घुड़ी) है। (१३) स्कन्दपुराण रोएँ तथा

* यदासौ कृष्टते याम्यदूर्ते: किं धनमन्वियात् । तस्माद् द्विजातिसत्कार्यं द्रविणं सर्वसौख्यदम् ॥
 दानं स्वर्गस्य सोपानं दानं किञ्चिष्ठनाशनम् । गोविन्दभक्तिभजनं महापुण्यविवर्धनम् ॥
 बलं यदि भवेन्मर्ये न वृथा तदव्ययं चरेत् । हरेरग्रे नृत्यगीतं कुर्यादिवमतन्नितः ॥
 यत्किञ्चिद् विद्यते पुंसां तच्च कृष्णे समर्पयेत् । कृष्णार्पितं कुशलदमन्यार्पितमसौख्यदम् ॥
 चक्षुभ्यां श्रीहरेरेव प्रतिमादिनिरूपणम् । श्रोत्राभ्यां कलयेत्कृष्णगुणनामान्यहर्निशम् ॥
 जिह्वा हरिपादाम्बु स्वादितव्यं विचक्षणैः । ग्राणेनाद्याय गोविन्दपादाब्जतुलसीदलम् ॥
 लचाऽऽस्पृश्य हरेर्भक्तं मनसाऽध्याय तत्पदम् । कृतार्थों जायते जन्मनात्रि कार्या विचारणा ॥
 तत्पना हि भवेत्प्रस्तथा स्यात्तद्गताशयः । तमेवान्तेऽध्येति लोको नात्र कार्या विचारणा ॥
 चेतसा चायनुध्यातः स्वपदं यः प्रयच्छति । नारायणमनाद्यन्तं न तं सेवेत को जनः ॥
 सततनियतचित्तो विष्णुपादारविन्दे वितरणमनुशक्ति श्रीतये तस्य कुर्यात् ।
 नतिपतिर्गतिमस्याद्विद्यये संविदध्यात् स हि खलु नरलोके पूज्यतामामृथाच ॥

(१४) वामनपुराण त्वचा माना गया है। (१५) कूर्मपुराणको पौठ तथा (१६) मत्स्यपुराणको मेदा कहा जाता है। (१७) गरुड़पुराण मज्जा बताया गया है और (१८) ब्रह्माप्पुराणको अस्थि (हड्डी) कहते हैं। इसी प्रकार पुराणविग्रहधारी सर्वव्यापक श्रीहरिका आविर्भाव हुआ है।* उनके हृदय-स्थानमें पद्मपुराण है, जिसे सुनकर मनुष्य अमृतपद—मोक्ष-सुखका उपभोग करता है। यह पद्मपुराण साक्षात् भगवान् श्रीहरिका स्वरूप है; इसके एक अध्यायका भी पाठ करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

स्वर्गखण्डका श्रवण करके महापातकी मनुष्य भी केंचुलसे छूटे हुए सर्पकी भाँति समस्त पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। कितना ही बड़ा दुराचारी और सब धर्मोंसे बहिष्कृत क्यों न हो, स्वर्गखण्डका श्रवण करके वह पवित्र हो जाता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। द्विजो ! समस्त पुराणोंको सुनकर मनुष्य जिस फलको प्राप्त करता है, वह सब केवल पद्मपुराणको सुनकर ही प्राप्त कर लेता है। कैसी अद्भुत महिमा है ! समूचे पद्मपुराणको सुननेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही फल मनुष्य केवल स्वर्गखण्डको सुनकर प्राप्त कर लेता है। माघमासमें मनुष्य प्रतिदिन प्रयागमें स्नान करके जैसे पापसे मुक्त हो जाता है, उसी प्रकार इस स्वर्गखण्डके श्रवणसे भी वह पापोंसे छुटकारा पा जाता है। जिस पुरुषने भरी सभामें इस स्वर्गखण्डको सुना और सुनाया

है, उसने मानो समूची पृथ्वी दानमें दे दी है, निरन्तर भगवान् विष्णुके सहस्र-नामोंका पाठ किया है, सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन तथा उसमें बताये हुए भिन्न-भिन्न पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान कर लिया है, बहुत-से अध्यापकोंको वृत्ति देकर पढ़ानेके कार्यमें लगाया है, भयभीत मनुष्योंको अभयदान किया है, गुणवान् ज्ञानी तथा धर्मात्मा पुरुषोंको आदर दिया है, ब्राह्मणों और गौओंके लिये प्राणोंका परित्याग किया है तथा उस बुद्धिमान् और भी बहुतेरे उत्तम कर्म किये हैं। तात्पर्य यह कि स्वर्गखण्डके श्रवणसे उत्तम सभी शुभकर्मोंका फल प्राप्त हो जाता है। स्वर्गखण्डका पाठ करनेसे मनुष्यको नाना प्रकारके भोग प्राप्त होते हैं तथा वह तेजोमय शरीर धारण करके ब्रह्मलोकमें जाता और वहीं ज्ञान पाकर मोक्षको प्राप्त हो जाता है। बुद्धिमान् मनुष्य उत्तम पुरुषोंके साथ निवास, उत्तम तीर्थमें स्नान, उत्तम वार्तालिप तथा उत्तम शास्त्रका श्रवण करे।† उन शास्त्रोंमें पद्मपुराण महाशास्त्र है, यह सम्पूर्ण वेदोंका फल देनेवाला है। इसमें भी स्वर्गखण्ड महान् पुण्यका फल प्रदान करनेवाला है।

ओ संसारके मनुष्यो ! मेरी बात सुनो— गोविन्दको भजो और एकमात्र देवेश्वर विष्णुको प्रणाम करो। यदि कामनाकी उत्ताल तरङ्गोंको सुखपूर्वक पार करना चाहते हो तो एकमात्र हरिनामका, जिसकी कहीं तुलना नहीं है, उच्चारण करो।

————★————
स्वर्गखण्ड समाप्त
————★————

* एक पुराण रूपं वै तत्र पाद्यं परं महत्। ब्राह्मं मूर्धा हरेरेव हृदयं पद्मसंज्ञकम्॥

वैष्णवं दक्षिणो बाहुः शैवं वामो महेशितुः। ऊरु भागवतं प्रोक्तं नाभिः स्यान्नारदीयकम्॥

मार्कण्डेयं च दक्षाङ्गिर्वामो ह्याम्रेयमुच्यते। भविष्यं दक्षिणो जानुर्विष्णोरेव महात्मनः॥

ब्रह्मवैवर्तसंज्ञं तु वामजानुरुदाहतः। लैङ्गं तु गुल्फकं दक्षं वाराहं वामगुल्फकम्॥

स्कान्दं पुराणं लोमानि त्वगस्य वामनं स्मृतम्। कौमै पृष्ठं समाख्यातं मात्स्यं भेदः प्रकीर्त्यते॥

मज्जा तु गारुडं प्रोक्तं ब्रह्माप्पमस्थि गीयते। एवमेवाभवद्विष्णुः पुराणावयवो हरिः॥ (६२। २—७)

† सन्दिः सह वसेद्धीमान् सत्तीर्थे स्नानमाचरेत्। कुर्यादेव सदालापं सच्चास्त्रं शृण्यान्नः॥ (६२। २४)

संक्षिप्त पद्मपुराण

पाताल-खण्ड

शेषजीका वात्स्यायन मुनिसे रामाश्वमेधकी कथा आरम्भ करना, श्रीरामचन्द्रजीका लङ्कासे अयोध्याके लिये विदा होना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥*

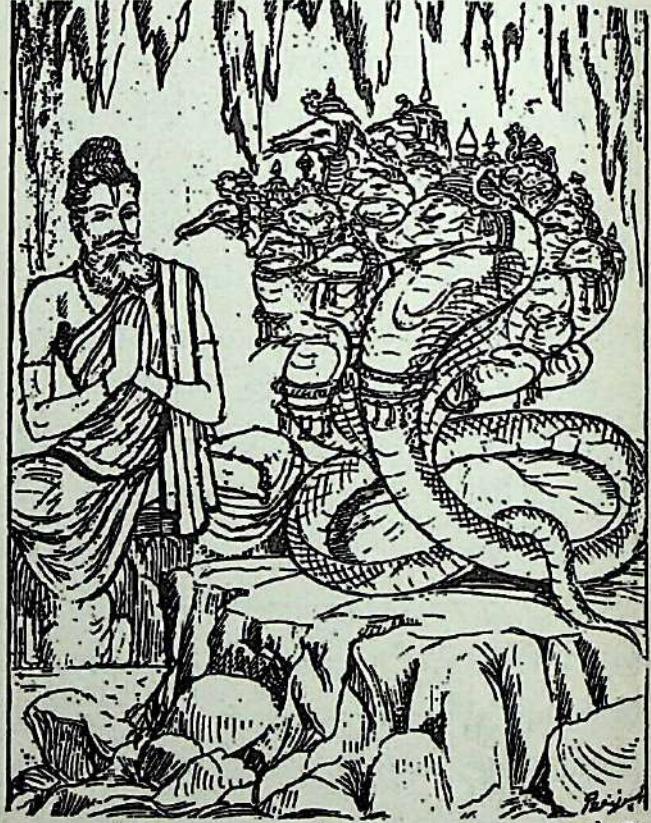
ऋषि बोले—महाभाग सूतजी ! हमने आपके मुखसे समूचे स्वर्ग-खण्डकी मनोहर कथा सुनी; आयुष्मन् ! अब हमलोगोंको श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र सुनाइये ।

सूतजीने कहा—महर्षिगण ! एक समय मुनिकर वात्स्यायनने पृथ्वीको धारण करनेवाले नागराज भगवान् अनन्तसे इस परम निर्झल कथाके विषयमें प्रश्न किया ।

श्रीवात्स्यायन बोले—भगवन् ! शेषनाग ! मैंने आपके मुखसे संसारकी सृष्टि और प्रलय आदिके विषयकी सब बातें सुनीं; भूगोल, खगोल, ग्रह-तारे और नक्षत्र आदिकी गतिका निर्णय, महत्त्व आदिकी सृष्टियोंके तत्त्वका पृथक्-पृथक् निरूपण तथा सूर्यवंशी राजाओंके अद्भुत चरित्रका भी मैंने श्रवण किया है। इसी प्रसङ्गमें आपने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी कथाका भी वर्णन किया है, जो अनेकों महापापोंको दूर करनेवाली है। परन्तु उन भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके अश्वमेध यज्ञकी कथा संक्षेपसे ही सुननेको मिली, अतः अब मैं उसे आपके द्वारा विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ। यह वही कथा है जो कहने, सुनने तथा स्मरण करनेसे बड़े-बड़े पातकोंको भी नष्ट कर डालती है। इतना ही नहीं, वह मनोवाच्छित वस्तुको देनेवाली तथा भक्तोंके चित्तको प्रसन्न करनेवाली है।

भगवान् शेषने कहा—ब्रह्मन् ! आप ब्राह्मणकुलमें श्रेष्ठ एवं धन्यवादके पात्र हैं; क्योंकि

आपको ऐसी बुद्धि प्राप्त हुई है, जो श्रीरामचन्द्रजीके युगल चरणारविन्दोंका मकरन्द पान करनेके लिये लोलुप रहती है। सभी ऋषि-महर्षि साधु पुरुषोंके



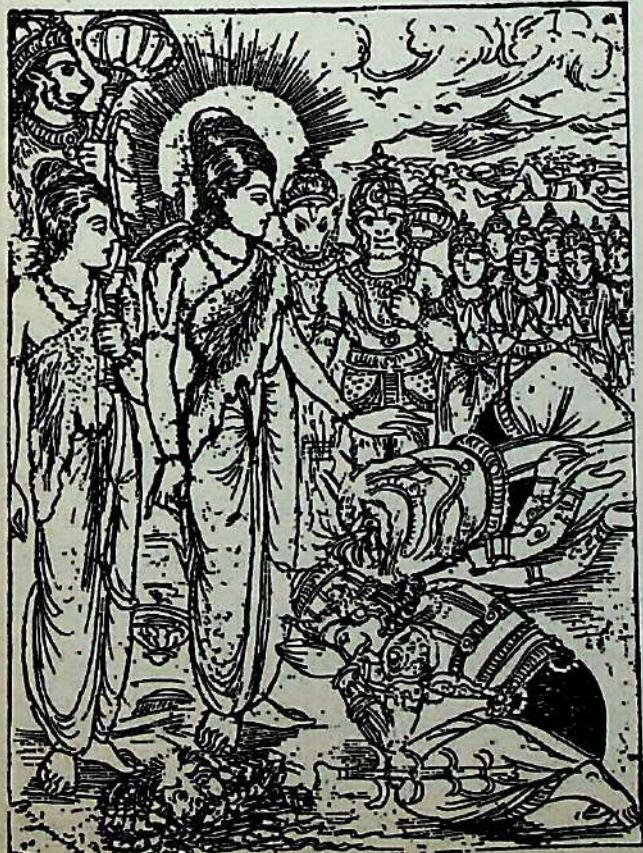
समागमको श्रेष्ठ बतलाते हैं; इसका कारण यही है कि सत्सङ्ग होनेपर श्रीरघुनाथजीकी उस कथाके लिये अवसर मिलता है, जो समस्त पापोंका नाश करनेवाली है। देवता और असुर प्रणाम करते समय अपने मुकुटोंकी मणियोंसे जिनके चरणोंकी आरती उतारते हैं, उन्हीं भगवान् श्रीरामका स्मरण कराकर आपने मुझपर बहुत बड़ा अनुग्रह किया है। जहाँ ब्रह्मा आदि देवता भी मोहित होकर कुछ नहीं जान पाते, उसी श्रीरघुनाथ-

* भगवान् नारायण, पुरुषश्रेष्ठ नर, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती तथा उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कर करके जय (इतिहास-पुराण) का पाठ करना चाहिये।

कथारूपी महासागरकी थाह लगानेके लिये मेरे-जैसे मशक-समान तुच्छ जीवकी कितनी शक्ति है। तथापि मैं अपनी शक्तिके अनुसार आपसे श्रीराम-कथाका वर्णन करूँगा; क्योंकि अत्यन्त विस्तृत आकाशमें भी पक्षी अपनी गमन-शक्तिके अनुसार उड़ते ही हैं। श्रीरघुनाथजीका चरित्र करोड़ों श्लोकोंमें वर्णित है। जिनकी जैसी बुद्धि होती है, वे वैसा ही उसका वर्णन करते हैं। जैसे अग्रिके सम्पर्कसे सोना शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार श्रीरघुनाथजीकी उत्तम कीर्ति मेरी बुद्धिको भी निर्मल बना देगी।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! मुनिवर वात्यायनसे यों कहकर भगवान् शेषने ध्यानस्थ हो अपनी आँखें बंद कर लीं और ज्ञानदृष्टिके द्वारा उस लोकोत्तर कल्याणमयी कथाका अवलोकन किया। फिर तो अत्यन्त हर्षके कारण उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया और वे गद्दवाणीसे युक्त होकर दशरथ-नन्दन श्रीरघुनाथजीकी विशद कथाका वर्णन करने लगे।

भगवान् शेष बोले—वात्यायनजी ! देवता और दानवोंको दुःख देनेवाले लङ्घापति रावणके मारे



जानेपर इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंको बड़ा सुख मिला। वे आनन्द-मग्न होकर दासकी भाँति भगवान्‌के चरणोंमें पड़ गये और उनकी स्तुति करने लगे।

तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी धर्मात्मा विभीषणको लङ्घाके राज्यपर स्थापित करके सीताके साथ पुष्पक विमानपर आरूढ़ हुए। उनके साथ लक्ष्मण, सुग्रीव और हनुमान् आदि भी विमानपर जा बैठे। उस समय भगवान्‌के विरहके भयसे विभीषणके मनमें भी साथ जानेकी उत्कण्ठा हुई और उन्होंने अपने मन्त्रियोंके साथ श्रीरघुनाथजीका अनुसरण किया। इसके बाद लङ्घा और अशोक-वाटिकापर दृष्टि डालते हुए भगवान् श्रीराम तुरंत ही अयोध्यापुरीकी ओर प्रस्थित हुए। साथ ही ब्रह्मा आदि देवता भी अपने-अपने विमानोंपर बैठकर यात्रा करने लगे। उस समय भगवान् श्रीराम कानोंको सुख पहुँचानेवाली देव-दुन्दुभियोंकी मधुर ध्वनि सुनते तथा मार्गमें सीताजीको अनेकों आश्रमोंसे युक्त तीर्थों, मुनियों, मुनि-पुत्रों तथा पतिव्रता मुनि-पत्नियोंका दर्शन कराते हुए चल रहे थे। परम बुद्धिमान् श्रीरघुनाथजीने पहले लक्ष्मणके साथ जिन-जिन स्थानोंपर निवास किया था, वे सभी सीताजीको दिखाये। इस प्रकार उन्हें मार्गके स्थानोंका दर्शन कराते हुए श्रीरामचन्द्रजीने अपनी पुरी अयोध्याको देखा; फिर उसके निकट नन्दिग्रामपर दृष्टिपात किया, जहाँ भाईके वियोग-जनित अनेकों दुःखमय चिह्नोंको धारण करके धर्मका पालन करते हुए राजा भरत निवास कर रहे थे। उन दिनों वे जमीनमें गड्ढा खोदकर उसीमें सोया करते थे। ब्रह्मचर्यके पालनपूर्वक मस्तकपर जटा और शरीरमें वल्कल वस्त्र धारण किये रहते थे। उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था। वे निरन्तर श्रीरामचन्द्रजीकी चर्चा करते हुए दुःखसे आतुर रहते थे। अन्नके नामपर तो वे जौ भी नहीं ग्रहण करते थे तथा पानी भी बारंबार नहीं पीते थे।

जब सूर्यदेवका उदय होता, तब वे उन्हें प्रणाम करके कहते—‘जगत्को नेत्र प्रदान करनेवाले भगवान् सूर्य ! आप देवताओंके स्वामी हैं; मेरे महान् पापको हर लीजिये [हाय ! मुझसे बढ़कर पापी कौन होगा]। मेरे

ही कारण जगत्पूज्य श्रीरामचन्द्रजीको भी वनमें जाना पड़ा। सुकुमार शरीरवाली सीतासे सेवित होकर वे इस समय वनमें रहते हैं। अहो ! जो सीता फूलकी शायापर पुष्पोंकी डंठलके स्पर्शसे भी व्याकुल हो उठती थीं और जो कभी सूर्यकी धूपमें घरसे बाहर नहीं निकलीं, वे ही पतिव्रता जनक-किशोरी आज मेरे कारण जंगलोंमें भटक रही हैं ! जिनके ऊपर कभी राजाओंकी भी दृष्टि नहीं पड़ी थी, उन्हीं सीताको आज किरणलोग प्रत्यक्ष देखते हैं। जो यहाँ मीठे-मीठे पकवानोंको भोजनके लिये आग्रह करनेपर भी नहीं खाना चाहती थीं, वे जानकी आज जंगली फलोंके लिये स्वयं याचना करती होंगी।' इस प्रकार श्रीरामके प्रति भक्ति रखनेवाले महाराज भरत प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्योपस्थानके पश्चात् उपर्युक्त बातें कहा करते थे। उनके दुःख-सुखमें समान रूपसे हाथ बँटानेवाले

शास्त्र-चतुर, नीतिज्ञ और विद्वान् मन्त्री जब भरतजीके सान्त्वना देते हुए कुछ कहते तब वे उन्हें इस प्रकार उत्तर देते थे—'अमात्यगण ! मुझ भाग्यहीनसे आपलोग क्यों बातचीत करते हैं ? मैं संसारके सब लोगोंसे अधम हूँ क्योंकि मेरे ही कारण मेरे बड़े भाई श्रीराम आज वनमें जाकर कष्ट उठा रहे हैं। मुझ अभागेके लिये अपने पापोंके प्रायश्चित्त करनेका यह अवसर प्राप्त हुआ है, अतः मैं श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका निरन्तर आदरपूर्वक स्मरण करते हुए अपने दोषोंका मार्जन करूँगा। इस जगत्में माता सुमित्रा भी धन्य हैं ! वे ही अपने पतिसे प्रेम करनेवाली तथा वीर पुत्रकी जननी हैं, जिनके पुत्र लक्ष्मण सदा श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी सेवामें रहते हैं।' इस प्रकार आतृ-वत्सल भरत जहाँ रहकर उच्चस्वरसे विलाप किया करते थे, उस नन्दिग्रामको भगवान् श्रीरामने देखा।



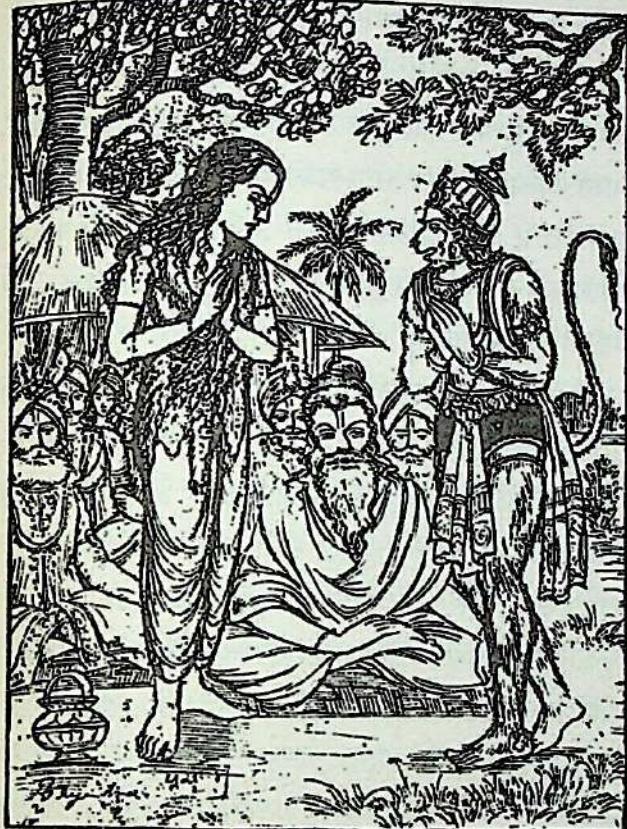
भरतसे मिलकर भगवान् श्रीरामका अयोध्याके निकट आगमन

शेषजी कहते हैं—मुने ! नन्दिग्रामपर दृष्टि पड़ते ही श्रीरघुनाथजीका चित्त भरतको देखनेकी उत्कण्ठासे विद्धिल हो गया। उन्हें धर्मात्माओंमें अग्रगण्य भाई भरतकी बारंबार याद आने लगी। तब वे महाबली वायु-नन्दन हनुमानजीसे बोले, "वीर ! तुम मेरे भाईके पास जाओ। उनका शरीर मेरे वियोगसे क्षीण होकर छड़ीके समान दुबला-पतला हो गया है और वे उसे किसी प्रकार हठपूर्वक धारण किये हुए हैं। जो वल्कल पहनते हैं, मस्तकपर जटा धारण करते हैं, जिनकी दृष्टिमें परायी लौ माता और सुवर्ण मिट्टीके ढेलेके समान है तथा जो प्रजाजनोंको अपने पुत्रोंकी भाँति स्नेह-दृष्टिसे देखते हैं, वे मेरे धर्मज्ञ भ्राता भरत दुःखी हैं। उनका शरीर मेरे वियोगजनित दुःखरूप अग्निकी ज्वालामें दग्ध हो रहा है; अतः इस समय तुम तुरंत जाकर मेरे आगमनके संदेशारूपी जलकी वर्षासे उन्हें शान्त करो। उन्हें यह समाचार सुनाओ कि 'सीता, लक्ष्मण, सुग्रीव आदि कपीश्वरों तथा विभीषणसहित राक्षसोंको साथ ले तुम्हारे भाई श्रीराम पुष्पक विमानपर बैठकर सुखपूर्वक

आ पहुँचे हैं।' इससे मेरा आगमन जानकर मेरे छोटे भाई भरत शीघ्र ही प्रसन्न हो जायेंगे।"

परम बुद्धिमान् श्रीरघुवीरके ये वचन सुनकर हनुमानजी उनकी आज्ञाका पालन करते हुए भरतजीके निवास-स्थान नन्दिग्रामको गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा, भरतजी बूढ़े मन्त्रियोंके साथ बैठे हैं और अपने पूज्य भ्राताके वियोगसे अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं। उस समय उनका मन श्रीरघुनाथजीके चरणारविन्दोंके मकरन्दमें डूबा हुआ था और वे अपने वृद्ध मन्त्रियोंसे उन्हींकी कथा-वार्ता कह रहे थे। वे ऐसे जान पड़ते थे मानो धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप हों अथवा विधाताने मानो सम्पूर्ण सत्त्वगुणको एकत्रित करके उसीके द्वारा उनका निर्माण किया हो। भरतजीको इस रूपमें देखकर हनुमानजीने उन्हें प्रणाम किया तथा भरतजी भी उन्हें देखते ही तुरंत हाथ जोड़कर खड़े हो गये और बोले—'आइये, आपका स्वागत है; श्रीरामचन्द्रजीकी कुशल कहिये।' वे इस प्रकार कह ही रहे थे कि इतनेमें उनकी दाहिनी बाँह फड़क उठी। हृदयसे शोक निकल

गया और उनके मुखपर आनन्दके आँसुओंकी धारा बह चली। उनकी ऐसी अवस्था देख वानरराज हनुमानने



कहा—‘लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजी इस ग्रामके निकट आ गये हैं।’ श्रीरघुनाथजीके आगमनके संदेशने भरतके शरीरपर मानो अमृत छिड़क दिया, वे हर्षमें भरकर बोले—‘श्रीरामका संदेश लनेवाले हनुमानजी ! मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे यह प्रिय समाचार सुनानेके बदलेमें मैं आपको दे सकूँ; इस उपकारके कारण मैं जीवनभर आपका दास बना रहूँगा।’ महर्षि वसिष्ठ तथा वृद्ध मन्त्री भी अत्यन्त हर्षमें भरकर अर्ध्य हाथमें लिये हनुमानजीके दिखाये हुए मार्गसे श्रीरामचन्द्रजीके पास चल दिये। भरतजीकी दृष्टि दूरसे आते हुए परम मनोरम भगवान् श्रीरामपर पड़ी। वे पुष्पक विमानके मध्यभागमें सीता और लक्ष्मणके साथ बैठे थे।

श्रीरामचन्द्रजीने भी जटा, बल्कल और कौपीन धारण किये हुए भरतको पैदल ही आते देखा; साथ ही उनकी दृष्टि उन मन्त्रियोंपर भी पड़ी, जिन्होंने भाईके वेषके समान ही वेष धारण कर रखा था। उनके

मस्तकपर भी जटा थी तथा वे भी निरन्तर तपस्यासे क्लेश उठानेके कारण अत्यन्त दुर्बल हो गये थे। राजा भरतको इस अवस्थामें देखकर श्रीरघुनाथजीको बड़ी चिन्ता हुई, वे कहने लगे—‘अहो ! राजाओंके भी राजा महाबुद्धिमान् महाराज दशरथका यह पुत्र आज जटा और बल्कल आदि तपस्वीका वेष धारण किये पैदल ही मेरे पास आ रहा है। मित्रो ! मैं वनमें गया था; किन्तु मुझे भी ऐसा दुःख नहीं उठाना पड़ा, जैसा कि मेरे वियोगके कारण इस भरतको भोगना पड़ रहा है। अहो ! देखो तो सही, प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारा और हितैषी मेरा भाई भरत मुझसे मिलनेके लिये आ रहा है।’ इस प्रकार भगवान् श्रीराम आकाशमें स्थित पुष्पक विमानसे उपर्युक्त बातें कह रहे थे और विभीषण, हनुमान् तथा लक्ष्मण उनके प्रति आदरका भाव प्रकट कर रहे थे। निकट आनेपर भगवान्का हृदय विरहसे कातर हो उठा और वे ‘भैया ! भैया भरत ! तुम कहाँ हो’ इस प्रकार कहते तथा बारंबार ‘भाई ! भाई !! भाई !!!’ की रट



लगाते हुए तुरंत ही विमानसे उत्तर पड़े। सहायकोंसहित श्रीरामचन्द्रजीको भूमिपर उत्तर देख भरतजी हर्षके आँसू बहाते हुए उनके सामने दण्डकी भाँति धरतीपर पड़ गये। श्रीरघुनाथजीने भी उन्हें दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़ा देख हर्षपूर्ण दृष्टिसे देखते हुए अपनी दोनों भुजाओंसे उठाकर छातीसे लगा लिया। आरम्भमें श्रीरामचन्द्रजीके बारंबार उठानेपर भी भरतजी उठे नहीं, अपितु अपने दोनों हाथोंसे भगवान्के चरण पकड़कर फूट-फूटकर रोते रहे।

भरतजीने कहा— महाबाहु भगवान् श्रीराम ! मैं दुष्ट, दुराचारी और पापी हूँ; मुझपर कृपा कीजिये। आप दयाके सागर हैं, अपनी दयासे ही मुझे अनुग्रहीत कीजिये। भगवन् ! जिन्हें सीताजीके कोमल हाथोंका स्पर्श भी कठोर जान पड़ता था, आपके उन्हीं चरणोंको मेरे कारण वनमें भटकना पड़ा !

यों कहकर भरतजीने दीनभावसे आँसू बहाते हुए बारंबार श्रीरघुनाथजीके चरणोंका आलिङ्गन किया और हर्षसे विह्वल होकर उनके सामने हाथ जोड़े खड़े हो गये।

करुणासागर श्रीरघुनाथजीने अपने छोटे भाईको गले लगाकर प्रधान मन्त्रियोंको भी प्रणाम किया तथा सबसे आदरपूर्वक कुशल-समाचार पूछा। इसके बाद भाई भरतके साथ वे पुष्पक विमानपर जा बैठे। वहाँ भरतजीने अपनी भ्रातृ-पत्नी पतिव्रता सीताजीको देखा, जो अत्रिकी भार्या अनसूया तथा अगस्त्यकी पत्नी लोपामुद्राकी भाँति जान पड़ती थीं। पतिव्रता जनक-किशोरीका दर्शन करके भरतजीने उन्हें सम्मानपूर्वक प्रणाम किया और कहा—‘माँ ! मैं महामूर्ख हूँ, मेरे द्वारा जो अपराध हो गया है, उसे क्षमा करना; क्योंकि आप-जैसी पतिव्रताएँ सबका भला करनेवाली ही होती हैं।’ परम सौभाग्यवती जनक-किशोरीने भी अपने देवर भरतकी ओर आदरपूर्ण दृष्टि डालकर उन्हें आशीर्वाद दिया तथा उनका कुशल-मङ्गल पूछा। उस श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ होकर सब-के-सब आकाशमें आ गये; फिर एक ही क्षणमें श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि पिताकी राजधानी अयोध्या अब बिलकुल अपने निकट है।



श्रीरामका नगर-प्रवेश, माताओंसे मिलना, राज्य-ग्रहण करना तथा रामराज्यकी सुव्यवस्था

शोषजी कहते हैं— अपनी राजधानीको देखकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। इधर भरतने अपने मित्र एवं सचिव सुमुखको नागरिक-उत्सवका प्रबन्ध करनेके लिये नगरके भीतर भेजा।

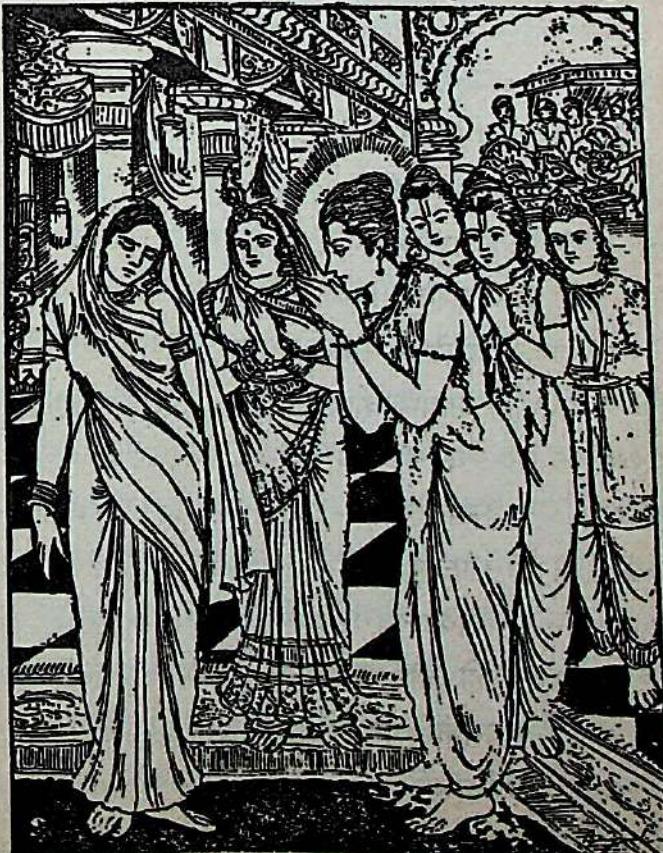
भरतजी बोले— नगरके सब लोग शीघ्र ही श्रीरघुनाथजीके आगमनका उत्सव आरम्भ करें। घर-घरमें सजावट की जाय, सड़कें झाड़-बुहारकर साफ की जायें और उनपर चन्दन-मिश्रित जलका छिड़काव करके उनके ऊपर फूल बिछा दिये जायें। हर एक घरके आँगनमें नाना प्रकारकी ध्वजाएँ फहरायीं जायें, प्रकाशका प्रबन्ध हो और सर्वतोभद्र आदि चित्र अঙ्कित किये जायें। श्रीरामका आगमन सुनकर हर्षमें भरे हुए लोग मेरे कथनानुसार नगरकी शोभा बढ़ानेवाली भाँति-भाँतिकी रचना करें।

शोषजी कहते हैं— भरतजीके ये वचन सुनकर मन्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सुमुखने अयोध्यापुरीको अनेक प्रकारकी सजावट एवं तोरणोंसे सुशोभित करनेके लिये उसके भीतर प्रवेश किया। नगरमें जाकर उसने सब लोगोंमें श्रीरामके आगमन-महोत्सवकी घोषणा करा दी। लोगोंने जब सुना कि श्रीरघुनाथजी अयोध्यापुरीके निकट आ गये हैं, तब उन्हें बड़ा हर्ष हुआ; क्योंकि वे पहले भगवान्के विरहसे दुःखी हो अपने सुखभोगका परित्याग कर चुके थे। वैदिक ज्ञानसे सम्पन्न पवित्र ब्राह्मण हाथोंमें कुश लिये धोती और चादरसे सुसज्जित हो श्रीरामचन्द्रजीके पास गये। जिन्होंने संग्राम-भूमिमें अनेकों वीरोंपर विजय पायी थी, वे धनुष-बाण धारण करनेवाले श्रेष्ठ और सूर्यमा क्षत्रिय भी उनके समीप गये। धन-धान्यसे समृद्ध वैश्य भी सुन्दर वस्त्र पहनकर

महाराज श्रीरामके निकट उपस्थित हुए। उस समय उनके हाथ सोनेकी मुद्राओंसे सुशोभित हो रहे थे तथा वे शूद्र, जो ब्राह्मणोंके भक्त, अपने जातीय आचारमें दृढ़तापूर्वक स्थित और धर्म-कर्मका पालन करनेवाले थे, अयोध्या-पुरीके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीके पास गये। व्यवसायी लोग जो अपने-अपने कर्ममें स्थित थे, वे सब भी भेटमें देनेके लिये अपनी-अपनी वस्तु लेकर महाराज श्रीरामके समीप गये। इस प्रकार राजा भरतका संदेश पाकर आनन्दकी बाढ़में छूबे हुए पुरवासी नाना प्रकारके कौतुकोंमें प्रवृत्त होकर अपने महाराजके निकट आये। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने भी अपने-अपने विमानपर बैठे हुए सम्पूर्ण देवताओंसे घिरकर मनोहर रचनासे सुशोभित अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया। आकाशमार्गसे विचरण करनेवाले वानर भी उछलते-कूदते हुए श्रीरघुनाथजीके पीछे-पीछे उस उत्तम नगरमें गये। उस समय उन सबकी पृथक्-पृथक् शोभा हो रही थी। कुछ दूर जाकर श्रीरामचन्द्रजी पुष्पक विमानसे उतर गये और शीघ्र ही श्रीसीताके साथ पाल्कीपर सवार हुए; उस समय वे अपने सहायक परिवारद्वारा चारों ओरसे घिरे हुए थे। जोर-जोरसे बजाये जाते हुए बीणा, पणव और भेरी आदि बाजोंके द्वारा उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। सूत, मागध और वन्दीजन उनकी स्तुति कर रहे थे; सब लोग कहते थे—‘रघुनन्दन ! आपकी जय हो, सूर्य-कुल-भूषण श्रीराम ! आपकी जय हो, देव ! दशरथ-नन्दन ! आपकी जय हो, जगत्के स्वामी श्रीरघुनाथजी ! आपकी जय हो !’ इस प्रकार हर्षमें भरे पुरवासियोंकी कल्याणमयी बातें भगवान्को सुनायी दे रही थीं। उनके दर्शनसे सब लोगोंके शरीरमें रोमाञ्च हो आया था, जिससे वे बड़ी शोभा पा रहे थे। क्रमशः आगे बढ़कर भगवान्की सवारी गली और चौराहोंसे सुशोभित नगरके प्रधान मार्गपर जा पहुँची, जहाँ चन्दन-मिश्रित जलका छिड़काव हुआ था और सुन्दर फूल तथा पल्लव बिछे थे। उस समय नगरकी कुछ स्त्रियाँ खिड़कीके सामनेकी छज्जोंका सहारा लेकर भगवान्की मनोहर छवि निहारती हुई आपसमें कहने लगीं—

पुरवासिनी स्त्रियाँ बोलीं—सखियो ! वनवासिनी भीलोंकी कन्याएँ भी धन्य हो गयीं, जिन्होंने अपने नीलकमलके समान लोचनोंद्वारा श्रीरामचन्द्रजीके मुखारविन्दका मकरन्द पान किया है। अपने सौभाग्यसे इन कन्याओंने महान् अभ्युदय प्राप्त किया है। अरी ! वीरोचित तेजसे युक्त श्रीरघुनाथजीके मुखकी ओर तो देखो, जो कमलकी सुषमाको लज्जित करनेवाले सुन्दर नेत्रोंसे सुशोभित हो रहा है; उसे देखकर धन्य हो जाओगी। अहो ! ब्रह्मा आदि देवता भी जिनका दर्शन नहीं कर पाते, वे ही आज हमारी आँखोंके सामने हैं। अवश्य ही हमलोग अत्यन्त बड़भागिनी हैं। देखो, इनके मुखपर कैसी सुन्दर मुसकान है, मस्तकपर किरीट शोभा पा रहा है; ये लाल-लाल ओठ बन्धूक-पुष्पकी अरुण प्रभाको अपनी शोभासे तिरस्कृत कर रहे हैं तथा इनकी ऊँची नासिका मनोहर जान पड़ती है।

इस प्रकार अधिक प्रेमके कारण उपर्युक्त बातें कहनेवाली अवधपुरीकी रमणियाँ भगवान्के दर्शनकर प्रसन्न होने लगीं। तदनन्तर, जिनका प्रेम बहुत बढ़ा हुआ था, उन पुरवासी मनुष्योंको अपने दृष्टिपातसे संतुष्ट



करके सम्पूर्ण जगत्को मर्यादाका पाठ पढ़नेवाले श्रीरघुनाथजीने माताके भवनमें जानेका विचार किया । वे राजाओंके राजा तथा अच्छी नीतिका पालन करनेवाले थे; अतः पालकीपर बैठे हुए ही सबसे पहले अपनी माता कैकेयीके घरमें गये । कैकेयी लज्जाके भारसे दबी हुई थी, अतः श्रीरामचन्द्रजीको सामने देखकर भी वह कुछ न बोली । बारंबार गहरी चिन्तामें ढूबने लगी । सूर्य-वंशकी पताका फहरानेवाले श्रीरामने माताको लज्जित देखकर उसे विनययुक्त वचनोद्घारा सान्त्वना देते हुए कहा ।

श्रीराम बोले—माँ ! मैंने वनमें जाकर तुम्हारी आज्ञाका पूर्णरूपसे पालन किया है । अब बताओ, तुम्हारी आज्ञासे इस समय कौन-सा कार्य करूँ ?

श्रीरामकी यह बात सुनकर भी कैकेयी अपने मुँहको ऊपर न उठा सकी, वह धीर-धीर बोली—‘बेटा राम ! तुम निष्पाप हो । अब तुम अपने महलमें जाओ ।’ माताका यह वचन सुनकर कृपा-निधान श्रीरामचन्द्रजीने भी उन्हें नमस्कार किया और वहाँसे सुमित्राके भवनमें गये । सुमित्राका हृदय बड़ा उदार था, उन्होंने अपने पुत्र लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजीको उपस्थित देख आशीर्वाद देते हुए कहा—‘बेटा ! तुम चिरजीवी हो ।’ श्रीरामचन्द्रजीने भी माता सुमित्राके चरणोंमें प्रणाम करके बारंबार प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—‘माँ ! लक्ष्मण-जैसे पुत्ररत्नको जन्म देनेके कारण तुम रत्नगर्भा हो; बुद्धिमान् लक्ष्मणने जिस प्रकार हमारी सेवा की है, जिस तरह इन्होंने मेरे कष्टोंका निवारण किया है वैसा कार्य और किसीने कभी नहीं किया । रावणने सीताको हर लिया । उसके बाद मैंने पुनः जो इन्हें प्राप्त किया है, वह सब तुम लक्ष्मणका ही पराक्रम समझो ।’ यों कहकर तथा सुमित्राके दिये हुए आशीर्वादको शिरोधार्य करके वे देवताओंके साथ अपनी माता कौसल्याके महलमें गये । माताको अपने दर्शनके लिये उत्कण्ठित तथा हर्षमग्र देख भगवान् श्रीराम तुरंत ही पालकीसे उतर पड़े और निकट पहुँचकर उन्होंने माताके चरणोंको पकड़ लिया । माता कौसल्याका हृदय बेटेका मुँह देखनेके लिये

उत्कण्ठासे विह्वल हो रहा था; उन्होंने अपने रामको बारंबार छातीसे लगाया और बहुत प्रसन्न हुई । उनके



शरीरमें रोमाञ्च हो आया, वाणी गद्दद हो गयी और नेत्रोंसे आनन्दके आँसू प्रवाहित होकर चरणोंको भिगोने लगे । विनयशील श्रीरघुनाथजीने देखा कि ‘माता अत्यन्त दुर्बल हो गयी है । मुझे देखकर ही इन्हें कुछ-कुछ हर्ष हुआ है ।’ उनकी इस अवस्थापर दृष्टिपात करके उन्होंने कहा ।

श्रीराम बोले—माँ ! मैंने बहुत दिनोंतक तुम्हारे चरणोंकी सेवा नहीं की है, निश्चय ही मैं बड़ा भाग्यहीन हूँ; तुम मेरे इस अपराधको क्षमा करना । जो पुत्र अपने माता-पिताकी सेवाके लिये उत्सुक नहीं रहते, उन्हें रज-वीर्यसे उत्पन्न हुआ कीड़ा ही समझना चाहिये । क्या करूँ, पिताजीकी आज्ञासे मैं दण्डकारण्यमें चला गया था । वहाँसे रावण सीताको हरकर लङ्घामें ले गया था; किन्तु तुम्हारी कृपासे उस राक्षसराजको मारकर मैंने पुनः इन्हें प्राप्त किया है । ये पतिव्रता सीता भी तुम्हारे चरणोंमें पड़ी है, इनका चित्त सदा तुम्हारे इन चरणोंमें ही लगा रहता है ।

श्रीरामचन्द्रजीकी बात सुनकर माता कौसल्याने अपने पैरोंपर पड़ी हुई पतित्रता बहू सीताको आशीर्वाद देते हुए कहा—‘मानिनी सीते ! तुम चिरकालतक अपने पतिकी जीवन-सङ्ग्निनी बनी रहो । मेरी पवित्र स्वभाव-वाली बहू ! तुम दो पुत्रोंकी जननी होकर अपने इस कुलको पवित्र करो । बेटी ! दुःख-सुखमें पतिका साथ देनेवाली तुम्हारी-जैसी पतित्रता स्त्रियाँ तीनों लोकोंमें कहीं भी दुःखकी भागिनी नहीं होतीं—यह सर्वथा सत्य है । विदेहकुमारी ! तुमने महात्मा रामके चरणकमलोंका अनुसरण करके अपने ही द्वारा अपने कुलको पवित्र कर दिया ।’ सुन्दर नेत्रोंवाली श्रीरघुनाथपत्नी सीतासे यों कहकर माता कौसल्या चुप हो गयीं । हर्षके कारण पुनः उनका सर्वाङ्ग पुलकित हो गया ।

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीके भाई भरतने उन्हें पिताजीका दिया हुआ अपना महान् राज्य निवेदन कर दिया । इससे मन्त्रियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने मन्त्रके जानेवाले ज्योतिषियोंको बुलाकर राज्याभिषेकका मुहूर्त पूछा और उद्योग करके उनके बताये हुए उत्तम नक्षत्रसे युक्त अच्छे दिनको शुभ मुहूर्तमें

बड़े हर्षके साथ राजा श्रीरामचन्द्रजीका अभिषेक कराया । सुन्दर व्याघ्रचर्मके ऊपर सातों द्वीपोंसे युक्त पृथ्वीका नक्शा बनाकर राजाधिराज महाराज श्रीराम उसपर विराजमान हुए । उसी दिनसे साधु पुरुषोंके हृदयमें आनन्द छा गया । सभी स्त्रियाँ पतिके प्रति भक्ति रखती हुई पतित्रत-धर्मके पालनमें संलग्न हो गयीं । संसारके मनुष्य कभी मनसे भी पापका आचरण नहीं करते थे । देवता, दैत्य, नाग, यक्ष, असुर तथा बड़े-बड़े सर्प—ये सभी न्यायमार्गपर स्थित होकर श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाको शिरोधार्य करने लगे । सभी परोपकारमें लगे रहते थे । सबको अपने धर्मके अनुष्ठानमें ही सुख और संतोषकी प्राप्ति होती थी । विद्यासे ही सबका विनोद होता था । दिन-रात शुभ कर्मोंपर ही सबकी दृष्टि रहती थी । श्रीरामके राज्यमें चोरोंकी तो कहीं चर्चा ही नहीं थी । जोरसे चलनेवाली हवा भी राह चलते हुए पथिकोंके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्त्रको भी नहीं उड़ाती थी । कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजीका स्वभाव बड़ा दयालु था । वे याचकोंके लिये कुबेर थे ।



देवताओंद्वारा श्रीरामकी स्तुति, श्रीरामका उन्हें वरदान देना तथा रामराज्यका वर्णन

शेषजी कहते हैं—मुने ! जब श्रीरामचन्द्रजीका राज्याभिषेक हो गया तो राक्षसराज रावणके वधसे प्रसन्नचित्त हुए देवताओंने प्रणाम करके उनका इस प्रकार स्ववन किया ।

देवता बोले—देवताओंकी पीड़ा दूर करनेवाले दशरथनन्दन श्रीराम ! आपकी जय हो । आपके द्वाग जो राक्षसराजका विनाश हुआ है, उस अद्भुत कथाका समस्त कविजन उत्कण्ठापूर्वक वर्णन करेंगे । भुवनेश्वर ! प्रलयकालमें आप सम्पूर्ण लोकोंकी परम्पराको लीलापूर्वक ग्रस लेते हैं । प्रभो ! आप जन्म और जरा आदिके दुःखोंसे सदा मुक्त हैं । प्रबल शक्तिसम्पन्न परमात्मन् ! आपकी जय हो, आप हमारा उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये । धार्मिक पुरुषोंके कुलरूपी

समुद्रमें प्रकट होनेवाले अजर-अमर और अच्युत परमेश्वर ! आपकी जय हो । भगवन् ! आप देवताओंसे श्रेष्ठ हैं । आपका नाम लेकर अनेकों प्राणी पवित्र हो गये; फिर जिन्होंने श्रेष्ठ द्विज-वंशमें जन्म ग्रहण करके उत्तम मानव-शरीरको प्राप्त किया है, उनका उद्धार होना कौन बड़ी बात है ? शिव और ब्रह्माजी भी जिनको मस्तक झुकाते हैं, जो पवित्र यव आदिके चिह्नोंसे सुशोभित तथा मनोवाञ्छित कामना एवं समृद्धि देनेवाले हैं, उन आपके चरणोंका हम निरन्तर अपने हृदयमें चिन्तन करते रहें, यही हमारी अभिलाषा है । आप कामदेवकी भी शोभाको तिरस्कृत करनेवाली मनोहर कान्ति धारण करते हैं । परमपावन दयामय ! यदि आप इस भूमण्डलको अभयदान न दें तो देवता कैसे सुखी हो सकते हैं ?

नाथ ! जब-जब दानवी शक्तियाँ हमें दुःख देने लगें तब-तब आप इस पृथ्वीपर अवतार ग्रहण करें। विभो ! यद्यपि आप सबसे श्रेष्ठ, अपने भक्तोंद्वारा पूजित, अजन्मा तथा अविकारी हैं तथापि अपनी मायाका आश्रय लेकर भिन्न-भिन्न रूपमें प्रकट होते हैं। आपके सुन्दर चरित्र (पवित्र लीलाएँ) मरनेवाले प्राणियोंके लिये अमृतके समान दिव्य जीवन प्रदान करनेवाले हैं। उनके श्रवणमात्रसे समस्त पापोंका नाश हो जाता है। आपने अपनी इन लीलाओंसे समस्त भूमप्डलको व्याप्त कर रखा है तथा गुणोंका गानं करनेवाले देवताओंद्वारा भी आपकी स्तुति की गयी है। जो सबके आदि हैं, परन्तु जिनका आदि कोई नहीं है, जो अजर (तरुण) रूप धारण करनेवाले हैं, जिनके गलेमें हार और मस्तकपर किरीट शोभा पाता है, जो कामदेवकी भी कान्तिको लज्जित करनेवाले हैं, साक्षात् भगवान् शिव जिनके चरणकम्लोंकी सेवामें लगे रहते हैं तथा जिन्होंने अपने शत्रु रावणका बलपूर्वक वध किया है, वे श्रीरघुनाथजी सदा ही विजयी हों।

ब्रह्म आदि सम्पूर्ण देवताओंने इस प्रकार स्तुति



करके विनीत भावसे श्रीरघुनाथजीको बारंबार प्रणाम किया। महायशस्वी श्रीरामचन्द्रजी देवताओंकी इस स्तुतिसे बहुत सन्तुष्ट हुए और उन्हें मस्तक झुकाकर चरणोंमें पड़े देख बोले।

श्रीरामने कहा—देवताओ ! तुमलोग मुझसे कोई ऐसा वर माँगो जो तुम्हें अत्यन्त दुर्लभ हो तथा जिसे अबतक किसी देवता, दानव, यक्ष और राक्षसने भी नहीं प्राप्त किया हो।

देवता बोले—स्वामिन् ! आपने हमलोगोंके इस शत्रु दशाननका जो वध किया है, उसीसे हमें सब उत्तम वरदान प्राप्त हो गया। अब हम यही चाहते हैं कि जब-जब कोई असुर हमलोगोंको क्लेश पहुँचावे तब-तब आप इसी तरह हमारे उस शत्रुका नाश किया करें।

वीरवर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने 'बहुत अच्छा' कहकर देवताओंकी प्रार्थना स्वीकार की और फिर इस प्रकार कहा।

श्रीराम बोले—देवताओ ! तुम सब लोग आदरपूर्वक मेरा वचन सुनो, तुमलोगोंने मेरे गुणोंको ग्रथित करके जो यह अन्धुत स्तोत्र बनाया है, इसका जो मनुष्य प्रातःकाल तथा रात्रिमें एक बार प्रतिदिन पाठ करेगा, उसको कभी अपने शत्रुओंसे पराजित होनेका भयङ्कर कष्ट नहीं भोगना पड़ेगा। उसके घरमें दरिद्रताका प्रवेश नहीं होगा तथा उसे रोग नहीं सतायेंगे। इतना ही नहीं, इसके पाठसे मनुष्योंके उल्लासपूर्ण हृदयमें मेरे युगल-चरणोंकी गाढ़ भक्तिका उदय होगा।

यह कहकर नरदेवशिरोमणि श्रीरघुनाथजी चुप हो गये तथा सम्पूर्ण देवता अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने-अपने लोकको चले गये। इधर लोकनाथ श्रीरामचन्द्रजी अपने विद्वान् भाइयोंका पिताकी भाँति पालन करते हुए प्रजाको अपने पुत्रके समान मानकर सबका लालन-पालन करने लगे। उनके शासनकालमें जगत्के मनुष्योंकी कभी अकाल-मृत्यु नहीं होती थी। किसीके घरमें रोग आदिका प्रकोप नहीं होता था। न

कभी ईति^१ दिखायी देती और न शत्रुसे ही कोई भय होता। वृक्षोंमें सदा फल लगे रहते और पृथ्वीपर अधिक मात्रामें अनाजकी उपज होती थी। स्त्रियोंका जीवन पुत्र-पौत्र आदि परिवारसे सनाथ रहता था। उन्हें निरन्तर अपने प्रियतमका संयोगजनित सुख मिलते रहनेके कारण विरहका क्लेश नहीं भोगना पड़ता था। सब लोग सदा श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंकी कथा सुननेके लिये उत्सुक रहते थे। उनकी वाणी कभी परायी निन्दामें नहीं प्रवृत्त होती थी। उनके मनमें भी कभी पापका संकल्प नहीं होता था। सीतापति श्रीरामके मुख्यकी ओर निहारते समय लोगोंकी आँखें स्थिर हो जातीं—वे एकटक नेत्रोंसे उन्हें देखते रह जाते थे। सबका हृदय निरन्तर करुणासे भरा रहता था। सदा इष्ट (यज्ञ-यागादि) और आपूर्ति (कुएँ खुदवाने, बगीचे लगावाने आदि) के अनुष्ठान करनेवाले लोगोंके द्वारा उस राज्यकी जड़ और मजबूत होती थी। समूचे राष्ट्रमें सदा हरी-भरी खेती लहराती रहती थी। जहाँ सुगमतापूर्वक यात्रा की जा सके, ऐसे क्षेत्रोंसे वह देश भरा हुआ था। उस राज्यका देश सुन्दर और प्रजा उत्तम थी। सब लोग स्वस्थ रहते थे। गौएँ अधिक थीं और घास-पातका अच्छा सुभीता था। स्थान-स्थानपर देव-मन्दिरोंकी श्रेणियाँ रामराज्यकी शोभा बढ़ाती थीं। उस राज्यमें सभी गाँव भेरे-पूरे और धन-सम्पत्तिसे सुशोभित थे। वाटिकाओंमें सुन्दर-सुन्दर फूल शोभा पाते और वृक्षोंमें स्वादिष्ट फल लगते थे। कमलोंसे भेरे हुए तालाब वहाँकी भूमिका सौन्दर्य बढ़ा रहे थे।

रामराज्यमें केवल नदी ही सदम्भा (उत्तम जलवाली) थी, वहाँकी जनता कहीं भी सदम्भा (दम्भ या पाखण्डसे युक्त) नहीं दिखायी देती थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णोंके कुल (समुदाय) ही कुलीन (उत्तम कुलमें उत्पन्न) थे, उनके धन नहीं कुलीन थे (अर्थात् उनके धनका कुत्सित मार्गमें लय—उपयोग नहीं होता

था)। उस राज्यकी स्त्रियोंमें ही विभ्रम (हाव-भाव या विलास) था; विद्वानोंमें कहीं विभ्रम (आन्ति या भूल) का नाम भी नहीं था। वहाँकी नदियाँ ही कुटिल मार्गसे जाती थीं, प्रजा नहीं; अर्थात् प्रजामें कुटिलताका सर्वथा अभाव था। श्रीरामके राज्यमें केवल कृष्णपक्षकी रात्रि ही तम (अन्धकार) से युक्त थी, मनुष्योंमें तम (अज्ञान या दुःख) नहीं था। वहाँकी स्त्रियोंमें ही रजका संयोग देखा जाता था, धर्म-प्रधान मनुष्योंमें नहीं; अर्थात् मनुष्योंमें धर्मकी अधिकता होनेके कारण सत्त्वगुणका ही उद्रेक होता था [रजोगुणका नहीं]। धनसे वहाँके मनुष्य ही अनन्ध थे (मदान्ध होनेसे बचे थे); उनका भोजन अनन्ध (अन्नरहित) नहीं था। उस राज्यमें केवल रथ ही 'अनय' (लोह-रहित) था; राजकर्मचारियोंमें 'अनय' (अन्याय) का भाव नहीं था। फरसे, फावड़े, चैवर तथा छत्रोंमें ही दण्ड (डंडा) देखा जाता था; अन्यत्र कहीं भी क्रोध या बन्धन-जनित दण्ड देखनेमें नहीं आता था। जलोंमें ही जड़ता (या जलत्व) की बात सुनी जाती थी; मनुष्योंमें नहीं। स्त्रीके मध्यभाग (कटि) में ही दुर्बलता (पतलापन) थी; अन्यत्र नहीं। वहाँ ओषधियोंमें ही कुष्ठ (कूट या कूठ नामक दवा) का योग देखा जाता था, मनुष्योंमें कुष्ठ (कोढ़) का नाम भी नहीं था। रत्नोंमें ही वेध (छिद्र) होता था, मूर्तियोंके हाथोंमें ही शूल (त्रिशूल) रहता था, प्रजाके शरीरमें वेध या शूलका रोग नहीं था। रसानुभूतिके समय सात्त्विक भावके कारण ही शरीरमें कम्प होता था; भयके कारण कहीं किसीको कँपकँपी होती हो—ऐसी बात नहीं देखी जाती थी। राम-राज्यमें केवल हाथी ही मतवाले होते थे, मनुष्योंमें कोई मतवाला नहीं था। तरङ्गें जलाशयोंमें ही उठती थीं, किसीके मनमें नहीं; क्योंकि सबका मन स्थिर था। दान (मट) का त्याग केवल हाथियोंमें ही दृष्टिगोचर होता था; राजाओंमें नहीं। काटै ही तीखे होते थे, मनुष्योंका स्वभाव नहीं। केवल बाणोंका ही गुणोंसे वियोग होता था^२

१ 'ईति' कई प्रकारकी होती है—अवृष्टि (सूखा पड़ना), अतिवृष्टि (अधिक वर्षाके कारण बाढ़ आना), खेतोंमें चूहोंका लगाना, टिड़ियोंका उपद्रव, सुग्गोंसे हानि और राजासे वैर इत्यादि।

२- धनुषकी डोरीको गुण कहते हैं, छूटते समय बाणका उससे वियोग होता है।

मनुष्योंका नहीं। दृढ़ बन्धोक्ति (सुशिलष्ट प्रबन्धरचना या कमल-बन्ध आदि श्लोकोंकी रचना) केवल पुस्तकोंमें ही उपलब्ध होती थी; लोकमें कोई सुदृढ़ बन्धनमें बाँधा या कैद किया गया हो—ऐसी बात नहीं सुनी जाती थी।

प्रजाको सदा ही श्रीरामचन्द्रजीसे लाड़-प्यार प्राप्त होता था। अपने द्वारा लालित प्रजाका निरन्तर लालन-पालन करते हुए वे उस सम्पूर्ण देशकी रक्षा करते थे।

————★————

श्रीरामके दरबारमें अगस्त्यजीका आगमन, उनके द्वारा रावण आदिके जन्म तथा तपस्याका वर्णन और देवताओंकी प्रार्थनासे भगवान्नका अवतार लेना

शेषजी कहते हैं—एक बार एक नीचके मुखसे श्रीसीताजीके अपमानकी बात सुनकर—धोबीके आक्षेपपूर्ण वचनसे प्रभावित होकर श्रीरघुनाथजीने अपनी पलीका परित्याग कर दिया। इसके बाद वे सीतासे रहित एकमात्र पृथ्वीका, जो उनके आदेशसे ही सुरक्षित थी, धर्मानुसार पालन करने लगे। एक दिन महामति श्रीरामचन्द्रजी राजसभामें बैठे हुए थे, इसी समय मुनियोंमें श्रेष्ठ अगस्त्य ऋषि, जो बहुत बड़े महात्मा थे, वहाँ पधारे। समुद्रको सोख लेनेवाले उन

खड़े हो गये। फिर स्वागत-सल्कारके द्वारा उन्हें सम्मानित करके भगवान्ने उनकी कुशल पूछी और जब वे सुखपूर्वक आसनपर बैठकर विश्राम कर चुके तो श्रीरघुनन्दनने उनसे वार्तालाप आरम्भ किया।

श्रीरामने कहा—महाभाग कुर्भज ! आपका स्वागत है। तपोनिधे ! निश्चय ही आज आपके दर्शनसे हम सब लोग कुटुम्बसहित पवित्र हो गये। इस भूमण्डलपर कहीं कोई भी ऐसा प्राणी नहीं है जो आपकी तपस्यामें विघ्न डाल सके। आपकी सहधर्मिणी लोपामुद्रा भी बड़ी सौभाग्यशालिनी हैं, जिनके पातिब्रत्य-धर्मके प्रभावसे सब कुछ शुभ ही होता है। मुनीश्वर ! आप धर्मके साक्षात् विग्रह और करुणाके सागर हैं। लोभ तो आपको छू भी नहीं गया है। बताइये, मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ ? महामुने ! यद्यपि आपकी तपस्याके प्रभावसे ही सब कुछ सिद्ध हो जाता है, आपके संकल्पमात्रसे ही बहुत कुछ हो सकता है; तथापि मुझपर कृपा करके ही मेरे लिये कोई सेवा बतलाइये।

शेषजी कहते हैं—मुने ! राजाओंके भी राजा परम बुद्धिमान् जगद्गुरु श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर महर्षि अगस्त्यजी अत्यन्त विनययुक्त वाणीमें बोले।

अगस्त्यजीने कहा—स्वामिन् ! आपका दर्शन देवताओंके लिये भी दुर्लभ है; यही सोचकर मैं यहाँ आया हूँ। राजाधिराज ! मुझे अपने दर्शनके लिये ही आया हुआ समझिये। कृपानिधे ! आपने रावण नामक असुरका, जो समस्त लोकोंके लिये कष्टकरूप था, वध कर डाला—यह बहुत अच्छा हुआ। अब देवगण



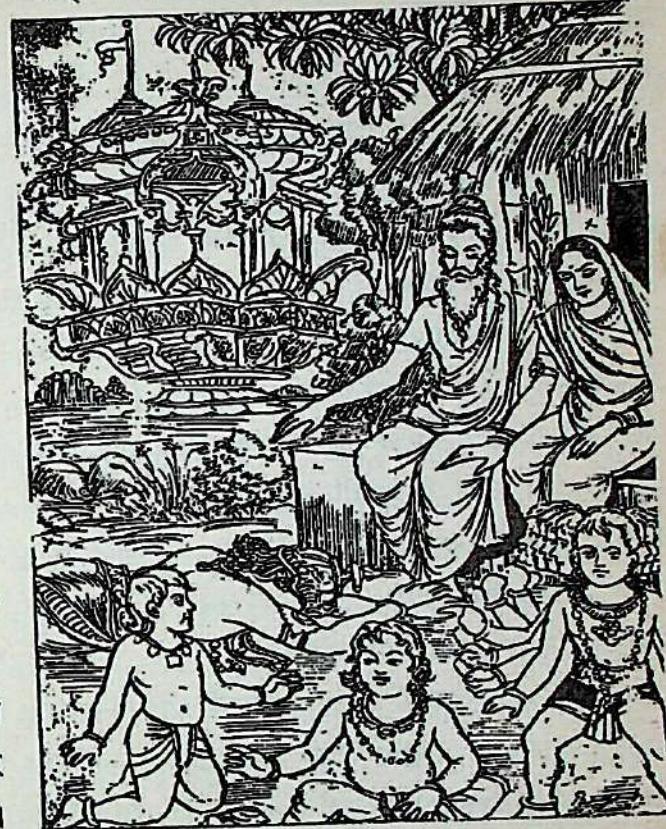
अन्त अन्त महर्षिको आया देख महाराज श्रीरामचन्द्रजी अर्ध्य लिये सम्पूर्ण सभासदों तथा गुरु वसिष्ठके साथ उठकर

सुखी और विभीषण राजा हुए—यह बड़े सौभाग्यकी बात है। श्रीराम ! आज आपका दर्शन पाकर मेरे मनका खाली खजाना भर गया। मेरे सारे पाप नष्ट हो गये।

यों कहकर महर्षि कुम्भज चुप हो गये। भगवान्के दर्शनजनित आहादसे उनका चित्त विह्वल हो रहा था। उस समय श्रीरघुनाथजीने उन ज्ञान-विशारद मुनिसे पुनः इस प्रकार प्रश्न किया—‘मुने ! मैं आपसे कुछ बातें पूछ रहा हूँ, आप उन्हें विस्तारपूर्वक बतलावें। देवताओंको पीड़ा देनेवाला वह रावण, जिसे मैंने मारा है, कौन था ? तथा उस दुरात्माका भाई कुम्भकर्ण भी कौन था ? उसकी जाति—उसके बश्य-बाश्व जौन थे ? सर्वज्ञ ! आप इन सब बातोंको विस्तारके साथ जानते हैं, अतः मुझे सब बताइये।’ भगवान्की ये बातें सुनकर तपोनिधि कुम्भज ऋषिने इन सबका उत्तर देना आरम्भ किया—“राजन् ! सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करनेवाले जो ब्रह्माजी है, उनके पुत्र महर्षि पुलस्त्य हुए। पुलस्त्यजीसे मुनिवर विश्रवाका जन्म हुआ, जो वेदविद्यामें अत्यन्त प्रवीण थे। उनकी दो पत्नियाँ थीं, जो बड़ी पतिव्रता और सदाचारिणी थीं। उनमेंसे एकका नाम मन्दाकिनी था और दूसरी कैकसी नामसे प्रसिद्ध थी। पहली खी मन्दाकिनीके गर्भसे कुबेरका जन्म हुआ, जो लोकपालके पदको प्राप्त हुए हैं। उन्होंने भगवान् शङ्करके प्रसादसे लङ्घापुरीको अपना निवास-स्थान बनाया था। कैकसी विद्युन्माली नामक दैत्यकी पुत्री थी, उसके गर्भसे रावण, कुम्भकर्ण तथा पुण्यात्मा विभीषण—ये तीन महाबली पुत्र उत्पन्न हुए। महामते ! इनमें रावण और कुम्भकर्णकी बुद्धि अधर्ममें निपुण हुई; क्योंकि वे दोनों जिस गर्भसे उत्पन्न हुए थे, उसकी स्थापना सञ्चाकालमें हुई थी।

एक समयकी बात है, कुबेर परम शोभायमान पुष्टक विमानपर आरूढ़ हो माता-पिताका दर्शन करनेके लिये उनके आश्रममें गये। वहाँ जाकर वे अधिक कालतक माता-पिताके चरणोंमें पढ़े रहे। उस समय उनका हृदय हर्षसे विह्वल हो रहा था और सम्पूर्ण शरीरमें रोमाञ्च हो आया था। वे बोले—‘माता और पिताजी ! आजका दिन मेरे लिये बहुत ही सुन्दर तथा

महान् सौभाग्यजनक फलको प्रकट करनेवाला है;



क्योंकि इस समय मुझे आपके इन युगल चरणोंका दर्शन मिला है जो अत्यन्त पुण्य प्रदान करनेवाला है।’ इस प्रकार स्तुतियुक्त पदोंसे माता-पिताका स्तवन करके कुबेर पुनः अपने भवनको लौट गये। रावण बड़ा बुद्धिमान् था, उसने कुबेरको देखकर अपनी मातासे पूछा—‘माँ ! ये कौन हैं, जो मेरे पिताजीके चरणोंकी सेवा करके फिर लौट गये हैं ? इनका विमान तो वायुके समान वेगवान् है। इन्हें किस तपस्यासे ऐसा विमान प्राप्त हुआ है ?’

शेषजी कहते हैं—‘मुने ! रावणका वचन सुनकर उसकी माता रोबसे विकल हो उठी और कुछ आँखें टेढ़ी करके अनमनी होकर बेटेसे बोली—‘अरे ! मेरी बात सुन, इसमें बहुत शिक्षा भरी हुई है। जिनके विषयमें तू पूछ रहा है, वे मेरी सौतकी कोखके रत्न—कुबेर यहाँ उपस्थित हुए थे; जिन्होंने अपनी माताके विमल वंशको अपने जन्मसे और भी उज्ज्वल बना दिया है। परन्तु तू तो मेरे गर्भका कीड़ा है, केवल अपना पेट भरनेमें ही लगा हुआ है। कुबेरने तपस्यासे भगवान् शङ्करको सन्तुष्ट करके लङ्घका निवास, मनके समान वेगशाली विमान

तथा राज्य और सम्पत्तियाँ प्राप्त की हैं। संसारमें वही माता धन्य, सौभाग्यवती तथा महान् अभ्युदयसे सुशोभित होनेवाली है, जिसके पुत्रने अपने गुणोंसे महापुरुषोंका पद प्राप्त कर लिया हो।' रावण दुरात्माओंमें सबसे श्रेष्ठ था, उसने अपनी माताके क्रोधपूर्ण वचन सुनकर तपस्या करनेका निश्चय किया और उससे कहा।

रावण बोला—माँ! कीड़ेकी-सी हस्ती रखनेवाला वह कुबेर क्या चीज़ है? उसकी थोड़ी-सी तपस्या किस गिनतीमें है? लङ्घनकी क्या बिसात है? तथा बहुत थोड़े सेवकोंवाला उसका राज्य भी किस कामका है? यदि मैं अन्न, जल, निद्रा और क्रीड़ाका सर्वदा परित्याग करके ब्रह्माजीको सन्तुष्ट करनेवाली दुष्कर तपस्याके द्वारा सम्पूर्ण लोकोंको अपने वशमें न कर लूँ तो मुझे पितृलोकके विनाशका पाप लगे।

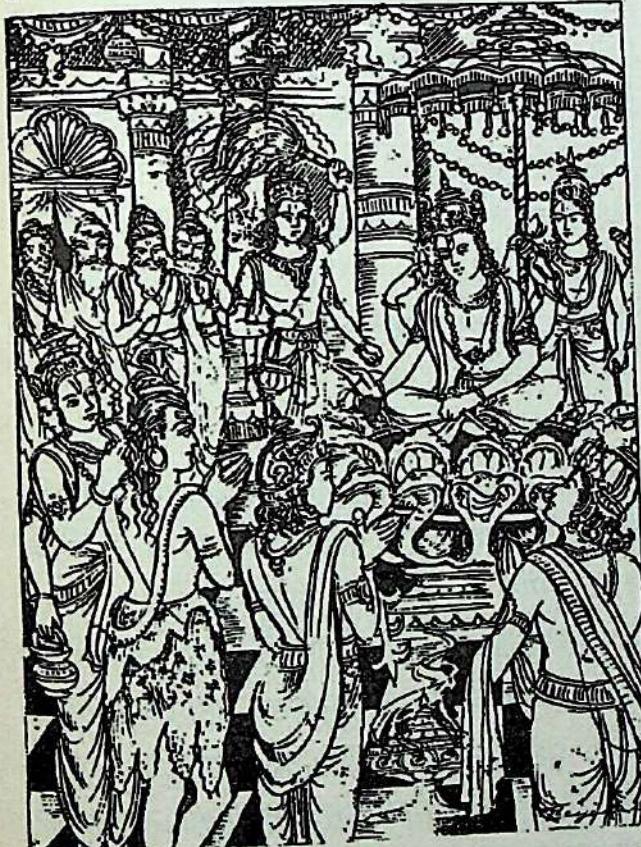
तत्पश्चात् कुम्भकर्ण और विभीषणने भी तपस्याका निश्चय किया। फिर रावण अपने भाइयोंको साथ लेकर पर्वतीय वनमें चला गया। वहाँ उसने सूर्यकी ओर ऊपर दृष्टि लगाये एक पैरसे खड़ा होकर दस हजार वर्षोंतक घोर तपस्या की। कुम्भकर्णने भी बड़ा कठोर तप किया।



विभीषण तो धर्मात्मा थे; अतः उन्होंने उत्तम तपस्याका अनुष्ठान किया। तदनन्तर देवाधिदेव भगवान् ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर रावणको बहुत बड़ा राज्य दिया और उसका स्वरूप तीनों लोकोंमें प्रकाशमान एवं सुन्दर बना दिया, जो देवता और दानव दोनोंसे सेवित था। कुबेरकी बुद्धि सदा धर्ममें ही लगी रहती थी। रावणने वर पानेके अनन्तर अपने भाई कुबेरको बहुत सताया। उनका विमान छीन लिया तथा उनकी लङ्घनगरीपर भी हठात् अधिकार जमा लिया। उसने समस्त लोकोंको सन्ताप पहुँचाया। देवता स्वर्गसे भाग गये। उस निशाचरसे ब्राह्मण-वंशका भी विनाश किया और मुनियोंकी तो वह जड़ ही काटता फिरता था। तब उसके अत्याचारसे अत्यन्त दुःखी होकर इन्द्र आदि समस्त देवता ब्रह्माजीके पास गये तथा दण्डवत्-प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे। जब सबने आदरपूर्वक प्रिय वचनोंद्वारा उनका स्तवन किया तो भगवान् ब्रह्माने प्रसन्न होकर कहा—‘देवगण! मैं तुम्हारा कौन-सा कार्य करूँ?’ तब देवताओंने ब्रह्माजीसे अपना अभिप्राय निवेदन किया—रावणसे प्राप्त होनेवाले अपने कष्ट और पराजयका वर्णन किया। उनकी बातें सुनकर ब्रह्माजीने क्षणभर विचार किया, फिर देवताओंको साथ लेकर वे कैलास-पर्वतपर गये। उस पर्वतके पास पहुँचकर इन्द्र आदि देवता वहाँकी विचित्रता देखकर मुग्ध हो गये और खड़े होकर उन्होंने शङ्करजीकी इस प्रकार स्तुति की—‘भगवन्! आप भव (उत्पादक), शर्व (संहारक) तथा नीलग्रीव (कण्ठमें नील चिह्न धारण करनेवाले) आदि नामसे प्रसिद्ध हैं, आपको नमस्कार है। स्थूल और सूक्ष्मरूप धारण करनेवाले आपको प्रणाम है तथा अनेकों रूपोंमें प्रतीत होनेवाले आपको नमस्कार है।’

सब देवताओंके मुखसे यह स्तुतियुक्त वाणी सुनकर भगवान् शङ्करने नन्दीसे कहा—‘देवताओंको मेरे पास बुला लाओ।’ आज्ञा पाकर नन्दीने उसी समय देवताओंको बुलाया। अन्तःपुरमें पहुँचकर उन्होंने आश्चर्यचकित दृष्टिसे भगवान्का दर्शन किया। देवताओंके साथ प्रणाम करके ब्रह्माजी शिवजीके सामने

खड़े हो गये और उन देवदेवेश्वरसे बोले—
 'शरणागतवत्सल महादेव ! आप देवताओंकी अवस्था-
 पर दृष्टि डालिये और इनके ऊपर कृपा कीजिये । दुष्ट
 राक्षस रावणका वध करनेके लिये जो उद्योग हो सके,
 वह कीजिये ।' ब्रह्माजीके दैन्य और शोकसे युक्त वचन
 सुनकर शङ्करजी भी देवताओंके साथ भगवान्
 श्रीविष्णुके स्थानपर आये । वहाँ देवता, नाग किन्त्र और
 मुनि सबने मिलकर भगवान्की स्तुति की—'देवताओंके
 स्वामी माधव ! आपकी जय हो, भक्तजनोंका दुःख दूर
 करनेवाले परमेश्वर ! आपकी जय हो, महादेव ! हमपर
 कृपा कीजिये और अपने इन सेवकोंपर दृष्टि डालिये ।'



रुद्र आदि सम्पूर्ण देवताओंने जब इस प्रकार उच्च-
 स्वरसे स्तवन किया तो उनके वचन सुनकर देवाधिदेव
 श्रीविष्णुने देवसमुदायके दुःखपर अच्छी तरह विचार
 किया । तत्पश्चात् वे मेघके समान गम्भीर वाणीसे उनका
 शोक शान्त करते हुए बोले—ब्रह्मा, रुद्र और इन्द्र आदि
 देवताओ ! मैं आपलोगोंके हितकी बात बता रहा हूँ,
 सुनिये; रावणके द्वारा जो आपको भय प्राप्त हुआ है, उसे मैं
 जानता हूँ, अब अवतार धारण करके मैं उस भयका नाश

करूँगा । भूमप्लमें एक अयोध्या नामकी पुरी है, जो
 बड़े-बड़े दान और यज्ञ आदि शुभ-कर्मोंका अनुष्ठान
 करनेवाले सूर्यवंशी राजाओंद्वारा सुरक्षित है; वह अपनी
 रजतमयी भूमिसे सुशोभित हो रही है । उस पुरीमें दशरथ
 नामसे प्रसिद्ध एक राजा है, जो इस समय दसों दिशाओंको
 जीतकर पृथ्वीके राज्यका पालन कर रहे हैं । यद्यपि वे
 राज्यलक्ष्मीसे सम्पन्न और शक्तिशाली हैं, तथापि
 अभीतक उन्हें कोई सन्तान नहीं है । महान् बलशाली राजा
 दशरथ पुत्र-प्राप्तिकी इच्छासे वन्दनीय ऋष्यशृङ्गमुनिको
 प्रार्थनापूर्वक बुलावेंगे और उनके आचार्यत्वमें विधिपूर्वक
 पुत्रेष्टि यज्ञका अनुष्ठान करेंगे । तदनन्तर मैं आपलोगोंके
 हितके लिये राजाकी तीन रानियोंके गर्भसे चार स्वरूपोंमें
 प्रकट होऊँगा । राजा भी पूर्व-जन्ममें तपस्या करके मुझसे
 इस बातके लिये प्रार्थना कर चुके हैं । मेरे चारों स्वरूप
 क्रमशः, राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नके नामसे प्रसिद्ध
 होंगे । उस समय मैं रावणका बल, वाहन और जड़-मूल-
 सहित संहार कर डालूँगा । आपलोग भी अपने-अपने
 अंशसे भालू और वानरके रूपमें प्रकट होकर पृथ्वीपर
 सर्वत्र विचरते रहिये ।'

इस प्रकार आकाशवाणी करके भगवान् मौन हो
 गये । उनका वचन सुनकर सब देवताओंका चित्त प्रसन्न
 हो गया । परम मेधावी देवाधिदेव भगवान्से जैसा कहा
 था, उसीके अनुसार देवताओंने कार्य किया । उन्होंने
 अपने-अपने अंशसे ऋक्ष और वानरका रूप धारण करके
 समूची पृथ्वीको भर दिया । महाराज ! देवताओंका दुःख
 दूर करनेवाले जो महान् देव श्रीविष्णु कहलाते हैं, वे आप
 ही हैं । आप ही मानवशरीरधारी भगवान् हैं । महामते ! ये
 भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न आपहीके अंश हैं । आपने
 देवताओंको पीड़ा देनेवाले दशाननका वध किया है । उस
 दैत्यकी ब्रह्म-राक्षस जाति थी, उसीका आपके द्वारा वध
 हुआ है । नश्रेष्ठ ! आप जगत्के उत्पत्ति-स्थान और
 सम्पूर्ण विश्वके आत्मा हैं । आपके गजा होनेसे देवता,
 असुर और मनुष्योंसहित समस्त संसारको सुख प्राप्त हुआ
 है । यापके स्पर्शसे रहित श्रीरघुनाथजी ! आपने जो कुछ
 पूछा है, वह सब मैंने बतला दिया ।'

अगस्त्यका अश्वमेध यज्ञकी सलाह देकर अश्वकी परीक्षा करना तथा यज्ञके लिये आये
हुए ऋषियोंद्वारा धर्मकी चर्चा

श्रीराम बोले—विप्रवर ! इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न

आवश्यकता है ?

हुए किसी पुरुषके मुखसे कभी ब्राह्मणोंने कटुवचनतक
नहीं सुना था [किन्तु मैंने उनकी हत्या कर डाली ।] वर्ण
और आश्रमके भेदसे भिन्न-भिन्न धर्मोंके मूल हैं वेद और
वेदोंके मूल हैं ब्राह्मण । ब्राह्मणवंश ही वेदोंकी सम्पूर्ण
शाखाओंको धारण करनेवाला एकमात्र वृक्ष है । ऐसे
ब्राह्मण-कुलवा मेरेद्वारा संहार हुआ है; ऐसी अवस्थामें
मैं क्या करूँ, जिससे मेरा कल्याण हो ?

अगस्त्यजीने कहा—राजन् ! आप अन्तर्यामी
आत्मा एवं प्रकृतिसे परे साक्षात् परमेश्वर हैं । आप ही
इस जगत्के कर्ता, पालक और संहारक हैं । साक्षात्
गुणातीत परमात्मा होते हुए भी आपने स्वेच्छासे
सागुणस्वरूप धारण किया है । शराबी, ब्रह्महत्यारा, सोना
चुरनेवाला तथा महापापी (गुरुस्त्रीगामी)—ये सभी
आपके नामका उच्चारण करनेमात्रसे तत्काल पवित्र हो
जाते हैं ।* महामते ! ये जनककिशोरी भगवती सीता
महाविद्या हैं; जिनके स्मरणमात्रसे मनुष्य मुक्त होकर
सद्गति प्राप्त कर लेंगे । लोगोंपर अनुग्रह करनेवाले
महावीर श्रीराम ! जो राजा अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान
करता है, वह सब पापोंके पार हो जाता है । राजा मनु,
सगर, मरुत्त और नहुषनन्दन यथाति—ये आपके सभी
पूर्वज यज्ञ करके परमपदको प्राप्त हुए हैं । महाराज !
आप सर्वथा समर्थ हैं, अतः आप भी यज्ञ करिये ।
परम सौभाग्यशाली श्रीरघुनाथजीने महर्षि अगस्त्यजीकी
बात सुनकर यज्ञ करनेका ही विचार किया और उसकी
विधि पूछी ।

श्रीराम बोले—महर्षे ! अश्वमेध यज्ञमें कैसा
अश्व होना चाहिये ? उसके पूजनकी विधि क्या है ?
किस प्रकार उसका अनुष्ठान किया जा सकता है
तथा उसके लिये किन-किन शत्रुओंको जीतनेकी

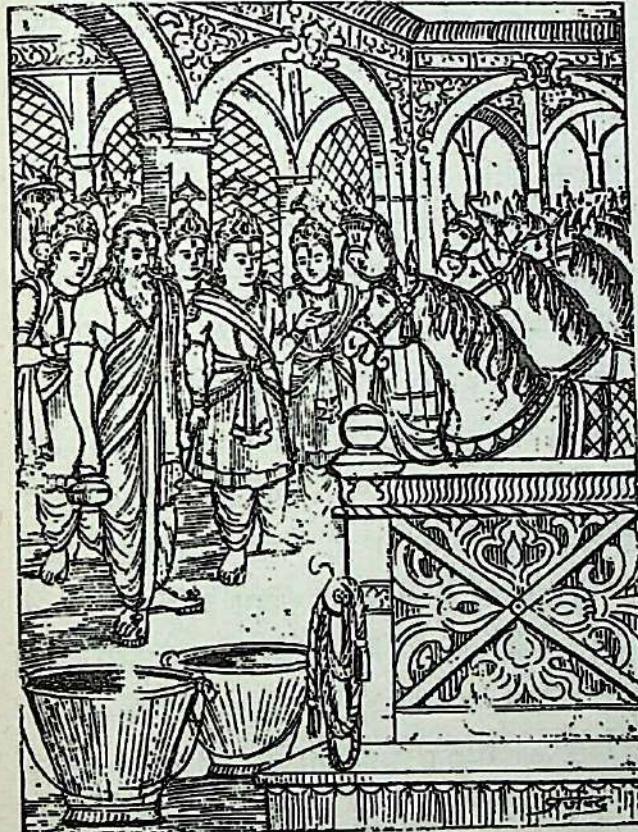
अगस्त्यजीने कहा—रघुनन्दन ! जिसका रघु
गङ्गाजलके समान उज्ज्वल तथा शरीर सुन्दर हो,
जिसका कान इयाम, मुँह लाल और पूँछ पीले रङ्गकी हो
तथा जो देखनेमें भी अच्छा जान पड़े, वह उत्तम
लक्षणोंसे लक्षित अश्व ही अश्वमेधमें ग्राह्य बतलाया
गया है । वैशाखमासकी पूर्णिमाको अश्वकी विधिवत्
पूजा करके एक ऐसा पत्र लिखे जिसमें अपने नाम और
बलका उल्लेख हो, वह पत्र घोड़ेके ललाटमें बाँधकर
उसे स्वच्छन्द विचरनेके लिये छोड़ देना चाहिये तथा
बहुत-से रक्षकोंको तैनात करके उसकी सब ओरसे
प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये । यज्ञका घोड़ा जहाँ-जहाँ
जाय, उन सब स्थानोंपर रक्षकोंको भी जाना चाहिये । जो
कोई राजा अपने बल या पराक्रमके घमंडमें आकर उस
घोड़ेको जबरदस्ती बाँध ले, उससे लड़-भिड़कर उस
अश्वको बलपूर्वक छीन लाना रक्षकोंका कर्तव्य है ।
जबतक अश्व लौटकर न आ जाय, तबतक यज्ञ-कर्त्ताको
उत्तम विधि एवं नियमोंका पालन करते हुए राजधानीमें
ही रहना चाहिये । वह ब्रह्मचर्यका पालन करे और
मृगका सींग हाथमें धारण किये रहे । यज्ञ-सम्बन्धी
ब्रतका पालन करनेके साथ ही एक वर्षतक दीनों, अंधों
और दुःखियोंको धन आदि देकर सन्तुष्ट करते रहना
चाहिये । महाराज ! बहुत-सा अन्न और धन दान करना
उचित है । याचक जिस-जिस वस्तुके लिये याचना करे,
बुद्धिमान् दाताको उसे वही-वही वस्तु देनी चाहिये । इस
प्रकारका कार्य करते हुए यजमानका यज्ञ जब भलीभाँति
पूर्ण हो जाता है, तो वह सब पापोंका नाश कर डालता
है । शत्रुओंका नाश करनेवाले रघुनाथजी ! आप यह
सब कुछ करने, सब नियमोंको पालने तथा अश्वका
विधिवत् पूजन करनेमें समर्थ हैं; अतः इस यज्ञके द्वारा

* सुरपो ब्रह्महत्याकृत्स्वर्णस्तेयो महाघकृत् । सर्वे त्वनामवादेन पूताः शीघ्रं भवन्ति हि ॥ (८। १९)

अपनी विशद कीर्तिका विस्तार करके दूसरे मनुष्योंको भी पवित्र कीजिये।

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—विप्रवर ! आप इस समय मेरी अश्वशालाका निरीक्षण कीजिये और देखिये, उसमें ऐसे उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न घोड़े हैं या नहीं ।

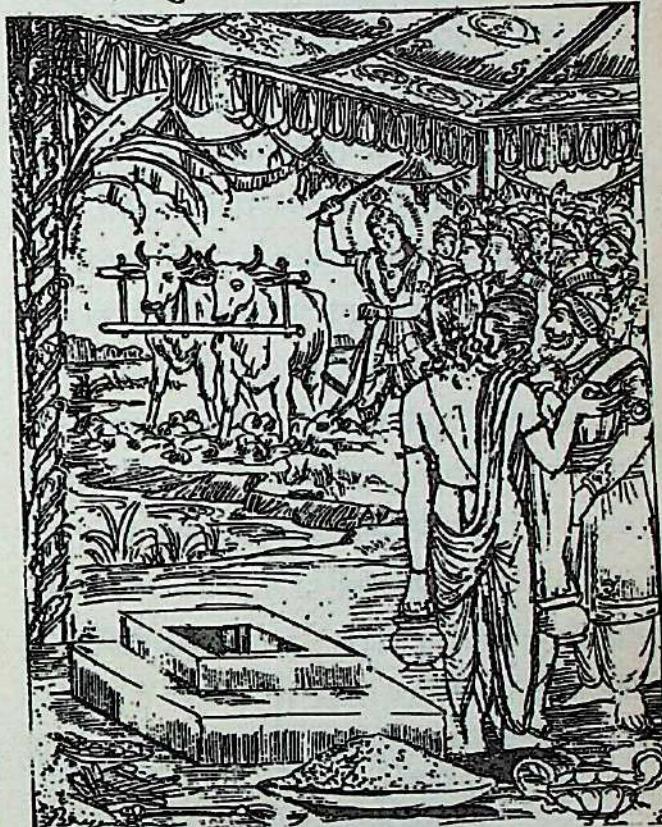
भगवान्‌की बात सुनकर दयालु महर्षि उठकर खड़े हो गये और यज्ञके योग्य उत्तम घोड़ोंको देखनेके लिये चल दिये । श्रीरामचन्द्रजीके साथ अश्वशालामें जाकर



उन्होंने देखा, वहाँ चित्र-विचित्र शरीरवाले अनेकों प्रकारके अश्व थे, जो मनके समान वेगवान्‌ और अत्यन्त बलवान्‌ प्रतीत होते थे । उसमें ऊपर बताये हुए रंगके एक-दो नहीं, सैकड़ों घोड़े थे, जिनकी पूँछ पीली और मुख लाल थे । साथ ही वे सभी तरहके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न दिखायी देते थे । उन्हें देखकर अगस्त्यजी बोले—'रघुनन्दन ! आपके यहाँ अश्वमेधके योग्य बहुत-से सुन्दर घोड़े हैं; अतः आप विस्तारके साथ उस यज्ञका अनुष्ठान कीजिये । महाराज श्रीराम ! आप महान्‌ सौभाग्यशाली हैं । देवता और असुर—सभी आपके चरणोंपर मस्तक झुकाते हैं; अतः आपको इस यज्ञका

अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये । मुनिके इस वचनसे उन्होंने यज्ञके सभी मनोहर सम्पार एकत्रित किये ।

तत्पश्चात् महाराज श्रीराम मुनियोंके साथ सरयू-तटपर आये और सोनेके हलोंसे चार योजन लंबी-चौड़ी बहुत बड़ी भूमिको जोता । इसके बाद उन



पुरुषोत्तमने यज्ञके लिये अनेकों मण्डप बनवाये और योनि एवं मेखलासे युक्त कुण्डका विधिवत् निर्माण करके उसे अनेकों रलोंसे सुसज्जित एवं सब प्रकारकी शोभासे सम्पन्न बनाया । महान्‌ तपस्वी एवं परम सौभाग्यशाली मुनिवर वसिष्ठने सब कार्य वेदशास्त्रकी विधिके अनुसार सम्पन्न कराया । उन्होंने अपने शिष्योंको महर्षियोंके आश्रमोंपर भेजकर कहलाया कि श्रीरघुनाथजी अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान करनेके लिये उद्यत हुए हैं; अतः आप सब लोग उसमें पधारें । इस प्रकार आमन्त्रित होकर वे सभी तपस्वी महर्षि भगवान्‌ श्रीरामके दर्शनके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित होकर वहाँ आये । नारद, असित, पर्वत, कपिलमुनि, जातूकर्णी, अङ्गिरा, आष्टिष्ठेण, अत्रि, गौतम, हारीत, याजवल्क्य तथा संवर्त आदि महात्मा भी भगवान्‌ श्रीरामके अश्वमेध यज्ञमें

आये। श्रीरघुनाथजीने बड़े आनन्दके साथ उठकर उनका स्वागत किया और उन्हें प्रणाम करके अर्ध्य तथा आसन आदि देकर उन सबकी विधिवत् पूजा की। फिर गौ और सुवर्ण निवेदन करके वे बोले—‘महर्षियो ! मेरे बड़े भाग्य हैं, जो आपके दर्शन हुए।’

शेषजी कहते हैं—ब्रह्मन् ! इस प्रकार जब वहाँ बड़े-बड़े ऋषियोंका समुदाय एकत्रित हुआ तो उनमें वर्ण और आश्रमके अनुकूल धर्मविषयक चर्चा होने लगी।

वात्स्यायनजीने पूछा—भगवन् ! वहाँ धर्मके सम्बन्धमें क्या-क्या बातें हुईं ? कौन-सी अन्धुत बात बतायी गयी ? उन महात्माओंने सब लोगोंपर दया करके किस विषयका वर्णन किया ?

शेषजीने कहा—मुने ! महापुरुषोंमें श्रेष्ठ दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामने सब मुनियोंको एकत्रित देखकर उनसे समस्त वर्णों और आश्रमोंके धर्म पूछे। श्रीरघुनाथजीके पूछनेपर उन महर्षियोंने जिन-जिन महान् गुणकारी धर्मोंका वर्णन किया, उन सबको मैं विधिपूर्वक बतलाऊँगा, आप ध्यान देकर सुनें।



ऋषि बोले—ब्राह्मणको सदा यज्ञ करना और वेद पढ़ाना आदि कार्य करना चाहिये। वह ब्रह्मचर्य-आश्रममें वेदोंका अध्ययन पूर्ण करके इच्छा हो तो विरक्त हो जाय और यदि ऐसी इच्छा न हो तो गृहस्थ-आश्रममें प्रवेश करे। नीच पुरुषोंकी सेवासे जीविका चलाना ब्राह्मणके लिये सदा त्याज्य है। वह आपत्तिमें पड़नेपर भी कभी सेवा-वृत्तिसे जीवन-निर्वाह न करे।

सन्तान-प्राप्तिकी इच्छासे ऋतुकालमें अपनी पत्नीके साथ समागम करना उचित माना गया है। दिनमें स्त्रीके साथ सम्पर्क करना पुरुषोंकी आयुको नष्ट करनेवाला है। श्राद्धका दिन और सभी पर्व स्त्री-समागमके लिये निषिद्ध है, अतः बुद्धिमान् पुरुषोंको इनका त्याग करना चाहिये। जो मोहवश उक्त समयमें भी स्त्रीके साथ सम्पर्क करता है; वह उत्तम धर्मसे श्रेष्ठ हो जाता है। जो पुरुष केवल ऋतुकालमें स्त्रीके साथ समागम करता है तथा अपनी ही पत्नीमें अनुराग रखता है [परायी स्त्रीकी ओर कुटूष्टि नहीं डालता], उस उत्तम गृहस्थको इस जगत्में सदा ब्रह्मचारी ही समझना चाहिये। स्त्रीके रजस्वला होनेसे लेकर सोलह रात्रियाँ ऋतु कहलाती हैं, उनमें पहली चार रातें निन्दित हैं; [अतः उनमें स्त्रीका स्पर्श नहीं करना चाहिये] शेष बारह रातोंमेंसे जो सम संख्यावाली अर्थात् छठीं और आठवीं आदि रातें हैं, उनमें स्त्री-समागम करनेसे पुत्रकी उत्पत्ति होती है तथा विषम संख्यावाली अर्थात् पाँचवीं, सातवीं आदि रात्रियाँ कन्याकी उत्पत्ति करनेवाली हैं। जिस दिन चन्द्रमा अपने लिये दूषित हों, उस दिनको छोड़कर तथा मघा और मूलनक्षत्रका भी परित्याग करके विशेषतः पूँलिलङ्घ नामवाले श्रवण आदि नक्षत्रोंमें शुद्ध भावसे पत्नीके साथ समागम करे; इससे चारों पुरुषाथेकी साधक शुद्ध एवं सदाचारी पुत्रका जन्म होता है।

थोड़ी-सी भी कीमत लेकर कन्याको बेचनेवाला पुरुष पापी माना गया है। ब्राह्मणके लिये व्यापार, राजाकी सेवा, वेदाध्ययनका त्याग, निन्दित विवाह और नित्य कर्मका लोप—ये दोष कुलको नीचे गिरानेवाले

है। * गृहस्थाश्रममें रहनेवाले पुरुषको अन्न, जल, दूध, मूल अथवा फल आदिके द्वारा अतिथिका सत्कार करना चाहिये। आया हुआ अतिथि सत्कार न पाकर जिसके घरसे निराश लौट जाता है, वह गृहस्थ जीवनभरके कमाये हुए पुण्यसे क्षणभरमें वंचित हो जाता है। † गृहस्थको उचित है कि वह बलिवैश्वदेव-कर्मके द्वारा देवताओं, पितरों तथा मनुष्योंको उनका भाग देकर शेष अन्नका भोजन करे, वही उसके लिये अमृत है। जो केवल अपना पेट भरनेवाला है—जो अपने ही लिये भोजन बनाता और खाता है, वह पापका ही भोजन करता है। तेलमें घट्ठी और अष्टमीको तथा मांसमें सदा ही पापका निवास है। चतुर्दशीको क्षौर-कर्म तथा अमावस्याको ऋषी-समागमका त्याग करना चाहिये। ‡ रजस्वला-अवस्थामें ऋग्निके सम्पर्कसे दूर रहे। पलीके साथ भोजन न करे। एक वस्त्र पहनकर तथा चटाईके आसनपर बैठकर भोजन करना निषिद्ध है। अपनेमें तेजकी इच्छा रखनेवाले श्रेष्ठ पुरुषको भोजन करती हुई ऋग्निकी ओर नहीं देखना चाहिये। मुँहसे आगको न फूँकें, नंगी ऋग्निकी ओर दृष्टि न डालें। बछड़ेको दूध पिलाती हुई गौको न छेड़े। दूसरेको इन्द्र-धनुष न दिखावे। रातमें

दही खाना सर्वथा निषिद्ध है। आगमें अपने पैर न सेंके, उसमें कोई अपवित्र वस्तु न डालें। किसी भी जीवकी हिंसा तथा दोनों सन्ध्याओंके समय भोजन न करे। रात्रिको खूब पेट भरके भोजन करना उचित नहीं है। पुरुषको नाचने, गाने और बजानेमें आसक्ति नहीं रखनी चाहिये। काँसेके बर्तनमें पैर धुलाना निषिद्ध है। दूसरेके पहने हुए कपड़े और जूते न धारण करे। फूटे अथवा दूसरेके जूठे किये हुए बर्तनमें भोजन न करे, भीगे पैर न सोये। हाथ और मुँहके जूठे रहते हुए कहीं न जाय। सोते-सोते न खाय। उच्छिष्ट-अवस्थामें मस्तकका स्पर्श न करे। दूसरोंके गुप्त भेद न खोले। इस प्रकार गृहस्थ-धर्मका समय पूरा करके वानप्रस्थ-आश्रममें प्रवेश करे। उस समय इच्छा हो तो वैराग्यपूर्वक ऋग्निके साथ रहे, अथवा ऋग्निको साथ न रखकर उसे पुत्रोंके अधीन सौंप दे। वानप्रस्थ-धर्मका पूर्ण पालन करनेके पश्चात् विरक्त हो जाय—संन्यास ले ले।

वात्स्यायनजी ! उस समय महर्षियोंने उपर्युक्त प्रकारसे अनेकों धर्मोंका वर्णन किया तथा सम्पूर्ण जगत्के महान् हितैषी भगवान् श्रीरामने उन सबको ध्यानपूर्वक सुना।

यज्ञ-सम्बन्धी अश्वका छोड़ा जाना और श्रीरामका उसकी रक्षाके लिये शत्रुघ्निको उपदेश करना

शेषजी कहते हैं—मुने ! इस प्रकार भगवान् श्रीराम ऋषियोंके मुखसे कुछ कालतक धर्मकी व्याख्या सुनते रहे; इतनेमें वसन्तका समय उपस्थित हुआ जब कि महापुरुषोंके यज्ञ आदि शुभ कर्मोंका प्रारम्भ होता है। वह समय आया देख बुद्धिमान् महर्षि वसिष्ठने सम्पूर्ण जगत्के सम्राट् श्रीरामचन्द्रजीसे यथोचित वाणीमें कहा—‘महाबाहु रघुनाथजी ! अब आपके लिये वह

समय आ गया है, जब कि यज्ञके लिये निश्चित किये हुए अश्वकी भलीभांति पूजा करके उसे पृथ्वीपर भ्रमण करनेके लिये छोड़ा जाय। इसके लिये सामग्री एकत्रित हो, अच्छे-अच्छे ब्राह्मण बुलाये जायें तथा स्वयं आप ही उन ब्राह्मणोंकी यथोचित पूजा करें। दीनों, अंधों और दुःखियोंका विधिवत् सत्कार करके उन्हें रहनेको स्थान दें और उनके मनमें जिस वस्तुके पानेकी इच्छा हो, वही

* वाणिज्यं नृपते: सेवा वेदानध्ययनं तथा। कुविवाहः क्रियालोपः कुलपातनहेतवः ॥ (९।४९)

† अनवितोऽतिथिगेहाद् भग्नाशो यस्य गच्छति। आजन्मसञ्चितात् पुण्यात् क्षणात् स हि बहिर्भवेत् ॥ (९।५१)

‡ षष्ठ्यम्योर्विशेषं पापं तैले मांसे सदैव हि। चतुर्दश्यां तथामायां त्यजेत् क्षुरमङ्गनाम् ॥ (९।५३)

उन्हें दान करें। आप सुवर्णमयी सीताके साथ यज्ञकी दीक्षा लेकर उसके नियमोंका पालन करें—पृथ्वीपर सोवें, ब्रह्मचारी रहें तथा धन-सम्पन्धी भोगोंका परित्याग करें। आपके कटिभागमें मेखला सुशोभित हो, आप हरिणका सींग, मृगचर्म तथा दण्ड धारण करें तथा सब प्रकारके सामान और द्रव्य एकत्रित करके यज्ञका आरम्भ करें।'

महर्षि वसिष्ठके ये उत्तम और यथार्थ वचन सुनकर परम बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे अभिप्राययुक्त बात कही।

श्रीराम बोले—लक्ष्मण ! मेरी बात सुनो और सुनकर तुरंत उसका पालन करो। जाओ, प्रयत्न करके अश्वमेध यज्ञके लिये उपयोगी अश्व ले आओ।

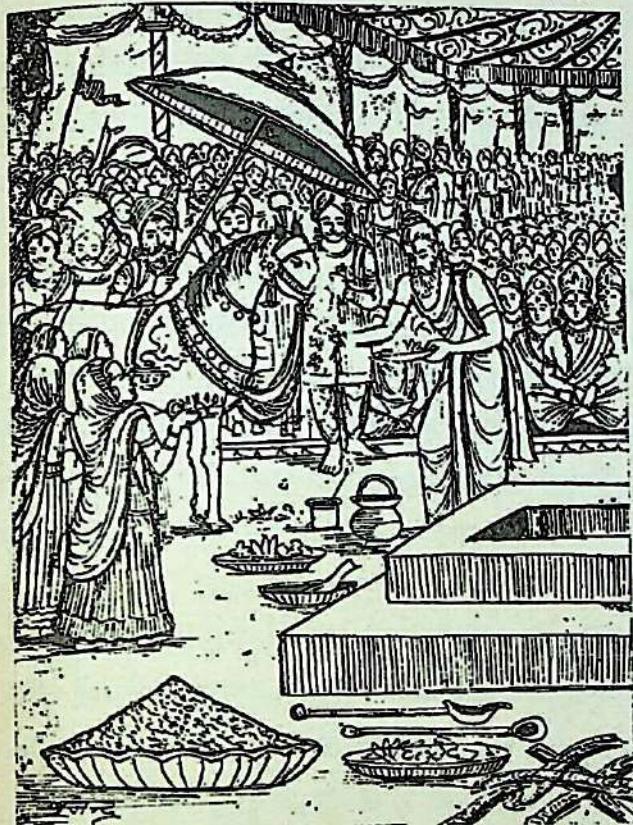
शेषजी कहते हैं—श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर शत्रु-विजयी लक्ष्मणने सेनापतिसे कहा—'वीर ! मैं तुम्हें एक अत्यन्त प्रिय वचन सुना रहा हूँ, सुनो; श्रीरघुनाथजीकी आज्ञाके अनुसार शीघ्र ही हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदलसे युक्त चतुरङ्गिणी सेना तैयार करो, जो कालकी सेनाका भी विनाश करनेमें समर्थ हो।' महात्मा लंक्ष्मणका यह कथन सुनकर कालजित् नामवाले सेनापतिने सेनाको सुसज्जित किया। उस समय लक्ष्मणके आदेशानुसार सजकर आये हुए अश्वमेध यज्ञके अश्वकी बड़ी शोभा हुई। एक श्रेष्ठ पुरुषने उसकी बागड़ेर पकड़ रखी थी। दस ध्रुवक (चिह्न-विशेष) उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। अपने छोटे-छोटे रोएँके कारण भी वह बड़ा सुन्दर जान पड़ता था। उसके गलेमें धूंधुरू पहनाये गये थे, जो एक-दूसरेसे मिले नहीं थे। विस्तृत कण्ठ-कोशमें मणि सुशोभित थी। मुखकी कान्ति भी बड़ी विशद थी और उसके दोनों कान छोटे-छोटे तथा काले थे। घासके ग्राससे उसका मुँह बड़ा सुहावना जान पड़ता था और चमकीले रळोंसे उसको सजाया गया था। इस प्रकार सज-धजकर मोतियोंकी मालाओंसे सुशोभित हो वह अश्व बाहर निकला। उसके ऊपर श्वेत छत्र तना हुआ था। दोनों ओरसे दो सफेद चौंबर उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। सारांश

यह कि उस अश्वका सारा शरीर ही नना प्रकारके शोभासाधनोंसे सम्पन्न था। जिस प्रकार देवतालोग सेवाके योग्य श्रीहरिकी सब ओरसे सेवा करते हैं। उसी प्रकार बहुत-से सैनिक उस घोड़ेके आगे-पीछे और बीचमें रहकर उसकी रक्षा कर रहे थे।

तदनन्तर सेनापति कालजित् ने अपनी विशाल सेनाको कूच करनेकी आज्ञा दी। आज्ञा पाकर जन-समुदायसे भरी हुई वह विशाल वाहिनी छत्रोंसे सूर्यको ओटमें करके अपनी छावनीसे निकली। उस सेनाके सभी श्रेष्ठ वीर श्रीरघुनाथजीके यज्ञके लिये सुसज्जित हो गजते तथा युद्धके लिये उत्साह प्रकट करते हुए बड़े हर्षमें भरकर चले। सभी सैनिक हाथोंमें धनुष, पाश और खड्ग धारण किये सैनिक-शिक्षाके अनुसार स्फुट गतिसे चलते हुए बड़ी तेजीके साथ महाराज श्रीरामके पास उपस्थित हुए। वह घोड़ा भी आकाशमें उछलता तथा पृथ्वीको अपनी टापसे खोदता हुआ धीरे-धीरे यज्ञ-चिह्नसे युक्त मण्डपके पास पहुँचा। घोड़ेको आया देख श्रीरामचन्द्रजीने महर्षि वसिष्ठको समयोचित कार्य करानेके लिये प्रेरित किया। महर्षि वसिष्ठने श्रीरामचन्द्रजीको स्वर्णमयी पत्नीके साथ बुलाकर अनुष्ठान आरम्भ कराया। उस यज्ञमें वेद-शास्त्रोंका विवेचन करनेवाले बुद्धिमान् महर्षि वसिष्ठ, जो श्रीरघुनाथजीके वंशके आदि गुरु थे, आचार्य हुए। तपोनिधि अगस्त्यजीने ब्रह्माका [कृताकृतावेक्षणरूप] कार्य सँभाला। वाल्मीकि मुनि अध्वर्यु बनाये गये और कण्व द्वारपाल। उस यज्ञ-मण्डपके आठ द्वार थे जो तोरण आदिसे सुसज्जित होनेके कारण बहुत सुन्दर दिखायी देते थे। वात्स्यायनजी ! उनमेंसे प्रत्येक द्वारपर दो-दो मन्त्रवेत्ता ब्राह्मण बिठाये गये थे। पूर्व द्वारपर मुनिश्रेष्ठ देवल और असित थे। दक्षिण द्वारपर तपस्याके भंडार महात्मा कश्यप और अत्रि विराजमान थे। पश्चिम द्वारपर श्रेष्ठ महर्षि जातूकर्ण्य और जाजलिकी उपस्थिती थी तथा उत्तर द्वारपर द्वित और एकत नामके दो तपस्वी मुनि विराज रहे थे।

ब्रह्मन् ! इस प्रकार द्वारकी विधि पूर्ण करके महर्षि

वसिष्ठने उस यज्ञसम्बन्धी श्रेष्ठ अश्वका विधिवत् पूजन



आरम्भ किया। फिर सुन्दर वस्त्र और आभूषणोंसे सुशोभित सुवासिनी स्त्रियोंने वहाँ आकर हल्दी, अक्षत और चन्दन आदिके द्वारा उस पूजित अश्वका पुनः पूजन किया तथा अगुरुका धूप देकर उसकी आरती उतारी। इस तरह पूजा करनेके पश्चात् महर्षि वसिष्ठने अश्वके उज्ज्वल ललाटपर, जो चन्दनसे चर्चित, कुङ्गम आदि गत्थोंसे युक्त तथा सब प्रकारकी शोभाओंसे सम्पन्न था, एक चमचमाता हुआ पत्र बाँध दिया जो तपाये हुए सुवर्णका बना था। उस पत्रपर महर्षिने दशरथ-नन्दन श्रीरघुनाथजीके बड़े हुए बल और प्रतापका इस प्रकार उल्लेख किया—‘सूर्य-वंशकी पताका फहरानेवाले महाराज दशरथ बहुत बड़े धनुर्धर हो गये हैं। वे धनुषकी दीक्षा देनेवाले गुरुओंके भी गुरु थे, उन्हेंके पुत्र महाभाग श्रीरामचन्द्रजी इस समय रघुवंशके स्वामी हैं। वे सब सूरमाओंके शिरोमणि तथा बड़े-बड़े वीरोंके बल-सम्बन्धी अभिमानको चूर्ण करनेवाले हैं। महाराज श्रीरामचन्द्र ब्राह्मणोंकी बतायी हुई विधिके अनुसार अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ कर रहे हैं। उन्होंने ही यह यज्ञ-

सम्बन्धी अश्व, जो समस्त अश्वोंमें श्रेष्ठ तथा सभी वाहनोंमें प्रधान है, पृथ्वीपर भ्रमण करनेके लिये छोड़ा है। श्रीरामके ही भाई शत्रुघ्न, जिन्होंने लवणासूरका विनाश किया है, इस अश्वके रक्षक हैं। उनके साथ हाथी, घोड़े और पैदलोंकी विशाल सेना भी है। जिन राजाओंको अपने बलके घमंडमें आकर ऐसा अभिमान होता हो कि हमलोग ही सबसे बढ़कर शूर, धनुर्धर तथा प्रचण्ड बलवान् हैं, वे ही रत्नकी मालाओंसे विभूषित इस यज्ञ-सम्बन्धी अश्वको पकड़नेका साहस करें। वीर शत्रुघ्न उनके हाथसे इस अश्वको हठात् छुड़ा लेंगे।’

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीकी भुजाओंके पराक्रमसे शोभा पानेवाले उनके प्रखर प्रतापका परिचय देते हुए महामुनि वसिष्ठजीने और भी अनेकों बातें लिखीं। इसके बाद अश्वको, जो शोभाका भंडार तथा वायुके समान बल और वेगसे युक्त था, छोड़ दिया। उसकी भू-लोक तथा पातालमें समानरूपसे तीव्र गति थी। तदनन्तर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने शत्रुघ्नको आज्ञा दी—‘सुमित्रानन्दन ! यह अश्व अपनी इच्छाके अनुसार विचरनेवाला है, तुम नकी रक्षाके लिये पीछे-पीछे जाओ। जो योद्धा संग्राममें तुम्हारा सामना करनेके लिये आवें, उन्हेंको तुम अपने पराक्रमसे रोकना। इस विशाल भू-मण्डलमें विचरते हुए अश्वकी तुम अपने वीरोचित गुणोंसे रक्षा करना। जो सोये हों, गिर गये हों, जिनके वस्त्र खुल गये हों और जो अत्यन्त भयभीत होकर चरणोंमें पड़े हों, उनको न मारना। साथ ही जो अपने पराक्रमकी झूठी प्रशंसा नहीं करते, उन पुण्यात्माओंपर भी हाथ न उठाना। शत्रुघ्न ! यदि तुम रथपर रहो और तुम्हरे विषक्षी रथहीन हो जायें तो उन्हें न मारना। यदि पुण्य चाहो तो जो शरणागत होकर कहें कि ‘हम आपहीके हैं,’ उनका भी तुम्हें वध नहीं करना चाहिये। जो योद्धा उन्मत्त, मतवाले, सोये हुए, भागे हुए, भयसे आतुर हुए तथा ‘मैं आपका ही हूँ’ ऐसा कहनेवाले मनुष्यको मारता है, वह नीच-गतिको प्राप्त होता है। कभी पराये धन और परायी स्त्रीकी ओर चित्त न ले जाना। नीचोंका सङ्ग न करना, सभी अच्छे गुणोंको

अपनाये रहना, बड़े-बूँदोंके ऊपर पहले प्रहार न करना, पूजनीय पुरुषोंकी पूजाका उल्लङ्घन न हो, इसके लिये सचेष्ट रहना तथा कभी दयाभावका परित्याग न करना। गौ, ब्राह्मण तथा धर्मपरायण वैष्णवको नमस्कार करना। इन्हें मस्तक झुकाकर मनुष्य जहाँ कहीं जाता है, वहाँ उसे सफलता प्राप्त होती है।

'महाबाहो ! भगवान् श्रीविष्णु सबके ईश्वर, साक्षी तथा सर्वत्र व्यापक स्वरूप धारण करनेवाले हैं। जो उनके भक्त हैं, वे भी उन्हींके रूपमें सर्वत्र विचरते हैं। जो लोग सम्पूर्ण भूतोंके हृदयमें स्थित रहनेवाले महाविष्णुका स्मरण करते हैं, उन्हें साक्षात् महाविष्णुके समान ही समझना चाहिये। जिनके लिये कोई अपना या पराया नहीं है तथा जो अपने साथ शत्रुता रखनेवालेको भी मित्र ही मानते हैं, वे वैष्णव एक ही क्षणमें पापीको पवित्र कर देते हैं। जिन्हें भागवत प्रिय है तथा जो ब्राह्मणोंसे प्रेम करते हैं, वे वैकुण्ठलोकसे इस संसारको पवित्र करनेके लिये यहाँ आये हैं। जिनके मुखमें भगवान्का नाम, हृदयमें सनातन श्रीविष्णुका ध्यान तथा उदरमें उन्हींका प्रसाद है, वे यदि जातिके चाप्डाल हों तो भी वैष्णव ही हैं। जिन्हें वेद ही अत्यन्त प्रिय हैं संसारके सुख नहीं, तथा जो निरन्तर अपने धर्मका पालन करते

रहते हैं, उनसे भेंट होनेपर तुम उनके सामने मस्तक झुकाना। जिनकी दृष्टिमें शिव और विष्णुमें तथा ब्रह्मा और शिवमें भी कोई भेद नहीं है, उनके चरणोंकी पवित्र धूलि मैं अपने शीशा चढ़ाता हूँ वह समस्त पापोंका विनाश करनेवाली है। * गौरी, गङ्गा तथा महालक्ष्मी— इन तीनोंमें जो भेद नहीं समझते, उन सभी मनुष्योंको स्वर्गलोकसे भूमिपर आये हुए देवता समझना चाहिये। जो अपनी शक्तिके अनुसार भगवान्की प्रसन्नताके लिये शरणागतोंकी रक्षा तथा बड़े-बड़े दान किया करता है, उसे वैष्णवोंमें सर्वश्रेष्ठ समझो। जिनका नाम महान् पापोंकी राशिको तत्काल भस्म कर देता है, उन भगवान्के युगल चरणोंमें जिसकी भक्ति है, वही वैष्णव है। जिनकी इन्द्रियाँ वशमें हैं और मन भगवान्के चिन्तनमें लगा रहता है, उनको नमस्कार करके मनुष्य अपने जन्मसे लेकर मृत्युतकके सम्पूर्ण जीवनको पवित्र बना लेता है। परायी स्त्रियोंको तलवारकी धार समझकर यदि तुम उनका परित्याग करोगे तो संसारमें तुम्हें सुयशसे सुशोभित ऐश्वर्यकी प्राप्ति होगी। इस प्रकार मेरे आदेशका पालन करते हुए तुम उत्तम योगके द्वारा प्राप्त होनेवाले परम धार्मको पा सकते हो, जिसकी सभी महात्माओंने प्रशंसा की है।'

शत्रुघ्न और पुष्कल आदिका सबसे मिलकर सेनासहित घोड़ेके साथ जाना, राजा सुमदकी कथा तथा सुमदके द्वारा शत्रुघ्नका सत्कार

शेषजी कहते हैं—मुने ! शत्रुघ्नको इस प्रकार आदेश देकर भगवान् श्रीरामने अन्य योद्धाओंकी ओर देखते हुए पुनः मधुर वाणीमें कहा—'वीरो ! मेरे भाई शत्रुघ्न घोड़ेकी रक्षाके लिये जा रहे हैं, तुमलोगोंमेंसे कौन वीर इनके आदेशका पालन करते हुए पीछेकी ओरसे इनकी रक्षा करनेके लिये जायगा ? जो अपने मर्मभेदी अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा सामने आये हुए सब वीरोंको जीतने तथा भूमण्डलमें अपने सुयशको फैलानेमें समर्थ हो,

वह मेरे हाथपर रखा हुआ यह बीड़ा उठा ले।' श्रीरघुनाथजीके ऐसा कहनेपर भरत-कुमार पुष्कलने आगे बढ़कर उनके कर-कमलसे वह बीड़ा उठा लिया और कहा—'स्वामिन् ! मैं जाता हूँ, मैं ही कवच आदिके द्वारा सब ओरसे सुरक्षित हो तलवार आदि शस्त्र तथा धनुष-बाण धारण करके अपने चाचा शत्रुघ्नके पृष्ठभागकी रक्षा करूँगा। इस समय आपका प्रताप ही समूची पृथ्वीपर विजय प्राप्त करेगा; ये सब लोग तो

* शिवे विष्णौ न वा भेदो न च ब्रह्ममहेशयोः। तेषां पादरजः पूर्वं वहास्यधविनाशनम्॥ (१०। ६८)

केवल निमित्तमात्र हैं। यदि देवता, असुर और मनुष्योंसहित सारी त्रिलोकी युद्धके लिये उपस्थित हो जाय तो उसे भी मैं आपकी कृपासे रोकनेमें समर्थ हो सकता हूँ; ये सब बातें कहनेकी आवश्यकता नहीं है, मेरा पराक्रम देखकर प्रभुको स्वयं ही सब कुछ जात हो जायगा।'

ऐसा कहते हुए भरत-कुमारकी बातें सुनकर भगवान् श्रीरामने उनकी प्रशंसा की तथा 'साधु-साधु' कहकर उनके कथनका अनुमोदन किया। इसके बाद वानरवीरोंमें प्रधान हनुमानजी आदि सब लोगोंसे कहा—'महावीर हनुमान्! मेरी बात ध्यान देकर सुनो, मैंने तुम्हारे ही प्रसादसे यह अकण्टक राज्य पाया है। हमलोगोंने मनुष्य होकर भी जो समुद्रको पार किया तथा सीताके साथ जो मेरा मिलाप हुआ; यह सब कुछ मैं तुम्हारे ही बलका प्रभाव समझता हूँ। मेरी आज्ञासे तुम भी सेनाके रक्षक होकर जाओ। मेरे भाई शत्रुघ्नकी मेरी ही भाँति तुम्हें रक्षा करनी चाहिये। महामते! जहाँ-जहाँ भाई शत्रुघ्नकी बुद्धि विचलित हो वहाँ-वहाँ तुम इन्हें समझा-बुझाकर कर्तव्यका ज्ञान कराना।'

परमबुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीका यह श्रेष्ठ वचन सुनकर हनुमानजीने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की और जानेके लिये तैयार होकर प्रणाम किया। तब महाराजने जाम्बवान्को भी साथ जानेका आदेश दिया और कहा—'अङ्गूष्ठ, गवय, मयन्द, दधिमुख, वानरराज सुग्रीव, शतबलि, अक्षिक, नील, नल, मनोवेग तथा अधिगन्ता आदि सभी वानर सेनाके साथ जानेको तैयार हो जायें। सब लोग रथों तथा सुर्वर्णमय आभूषणोंसे विभूषित अच्छे-अच्छे घोड़ोंपर सवार हो बरक्तर और टोपसे सज-धजकर शीघ्र यहाँसे यात्रा करें।'

शोषजी कहते हैं—तत्पश्चात् बल और पराक्रमसे शोभा पानेवाले श्रीरामचन्द्रजीने अपने उत्तम मन्त्री सुमन्त्रको बुलाकर कहा—'मन्त्रिवर! बताओ, इस कार्यमें और किन-किन लोगोंको नियुक्त करना चाहिये? कौन-कौन मनुष्य अश्वकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं?' उनका प्रश्न सुनकर सुमन्त्र बोले—'श्रीरघुनाथजी! सुनिये, आपके यहाँ सम्पूर्ण शास्त्र और अख्यके ज्ञानमें

निपुण, महान् विद्वान्, धनुर्धर तथा अच्छी प्रकार बाणोंका सन्धान करनेवाले अनेकों बीर उपस्थित हैं। उनके नाम ये हैं— प्रतापाग्र्य, नीलरत्न, लक्ष्मीनिधि, रिपुताप, उग्राश्व और शस्त्रवित्—ये सभी बड़े-चढ़े राजा चतुरङ्गिणी सेनाके साथ कवच आदिसे सुसज्जित होकर जायें और आपके घोड़ेकी रक्षा करते हुए शत्रुघ्नजीकी आज्ञा शिरोधार्य करें।' मन्त्रीकी यह बात सुनकर श्रीरघुनाथजीको बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने उनके बताये हुए सभी योद्धाओंको जानेके लिये आदेश दिया। श्रीरघुनाथजीकी आज्ञा पाकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि वे बहुत दिनोंसे युद्धकी इच्छा रखते थे और रणमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले थे। श्रीसीतापतिकी प्रेरणासे वे सभी राजा कवच आदिसे सुसज्जित हो अख-शस्त्र लेकर शत्रुघ्नके निवासस्थानपर गये।

तदनन्तर ऋषिकी आज्ञा पाकर श्रीरामचन्द्रजीने आचार्य आदि सभी ऋत्विज महर्षियोंको शास्त्रोक्त उत्तम दक्षिणाएँ देकर उनका विधिवत् पूजन किया। उस समय श्रीरघुनाथजीके यज्ञमें सब ओर यही बात सुनायी देती थी—देते जाओ, देते जाओ, खूब धन लुटाओ, किसीसे 'नहीं' मत करो, साथ ही समस्त भोग-सामग्रियोंसे युक्त अन्नका दान करो, अन्नका दान करो।' इस प्रकार वह यज्ञ चल रहा था। उसमें दक्षिणापाये हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी भरमार थी। वहाँ सभी तरहके शुभ कर्मोंका अनुष्ठान हो रहा था। इधर श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई शत्रुघ्न अपनी माताके पास जा उन्हें प्रणाम करके बोले—'कल्याणमयी माँ! मैं घोड़ेकी रक्षाके लिये जा रहा हूँ, मुझे आज्ञा दो। तुम्हारी कृपासे शत्रुओंको जीतकर विजयकी शोभासे सम्पन्न हो अन्य महाराजाओं तथा घोड़ेको साथ लेकर लौट आऊँगा।'

माता बोली—बेटा! जाओ, महावीर! तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो, सुमते! तुम अपने समस्त शत्रुओंको जीतकर फिर यहाँ लौट आओ। तुम्हारा भतीजा पुष्कल धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ है, उसकी रक्षा करना। बेटा! तुम पुष्कलके साथ सकुशल लौटकर आओगे, तभी मुझे अधिक प्रसन्नता होगी।

अपनी माताकी ऐसी बात सुनकर शत्रुघ्ने उत्तर दिया—‘माँ ! मैं अपने शरीरकी भाँति पुष्कलकी रक्षा



करूँगा तथा जैसा मेरा नाम है उसके अनुसार शत्रुओंका नाश करके प्रसन्नतापूर्वक लौटूँगा । तुम्हारे इन युगल चरणोंका स्मरण करके मैं कल्याणका ही भागी होऊँगा ।’ ऐसा कहकर वीर शत्रुघ्न वहाँसे चल दिये तथा यज्ञ-मण्डपसे छोड़ा हुआ वह यज्ञका अश्व अख्ल-शस्त्रोंकी विद्यामें प्रवीण सम्पूर्ण योद्धाओंद्वारा चारों ओरसे घिरकर सबसे पहले पूर्व दिशाकी ओर गया । उसका वेग वायुके समान था । जब वे चलनेको उद्यत हुए तो उनकी दाहिनी बाँह फड़क उठी और उन्हें कल्याण तथा विजयकी सूचना देने लगी । उधर पुष्कल अपने सुन्दर एवं समृद्धिशाली महलमें गये और वहाँ अपनी पतिव्रता पलीसे मिले, जो स्वामीके दर्शनके लिये उत्कण्ठित थी और उन्हें देखकर हर्षमें भर गयी थी । उससे मिलकर पुष्कलने कहा—‘भद्र ! मैं चाचा शत्रुघ्नका पृष्ठ-पोषक होकर रथपर सवार हो यज्ञके घोड़ेकी रक्षाके लिये जा रहा हूँ; इस कार्यके लिये मुझे श्रीरघुनाथजीकी आज्ञा मिल चुकी है । तुम यहाँ रहकर मेरी समस्त माताओंका

सत्कार करना तथा चरण दबाना आदि सभी प्रकारकी सेवाएँ करना । उनके प्रत्येक कार्यमें—उनकी आज्ञाका पालन करनेमें आदर एवं उत्साहके साथ प्रवृत्त होना । यहाँ लोपामुद्रा आदि जितनी पतिव्रता देवियाँ आयी हुई हैं, वे सभी अपने तपोबलसे सुशोभित एवं कल्याणमयी हैं; तुम्हारे द्वारा उनमेंसे किसीका अपमान न हो जाय, इसके लिये सदा सावधान रहना ।’

शेषजी कहते हैं—पुष्कल जब इस प्रकार उपदेश दे चुके तो उनकी पतिव्रता पली कान्तिमतीने पतिकी ओर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखा तथा अत्यन्त विश्वस्त होकर मन्द-मन्द मुसकराती हुई वह गद्गद वाणीमें बोली—‘नाथ ! संग्राममें आपकी सर्वत्र विजय हो, आपको चाचा शत्रुघ्नजीकी आज्ञाका सर्वथा पालन करना चाहिये तथा जिस प्रकार भी घोड़ेकी रक्षा हो उसके लिये सचेष्ट रहना चाहिये । स्वामिन् ! आप शत्रुओंपर विजय प्राप्त करके अपने श्रेष्ठ कुलकी शोभा बढ़ाइये । महाबाहो ! जाइये, इस यात्रामें आपका कल्याण हो । यह है आपका धनुष, जो उत्तम गुण (सुदृढ़ प्रत्यञ्चा) से सुशोभित है; इसे शीघ्र ही हाथमें लीजिये, इसकी टङ्कार सुनकर आपके शत्रुओंका दल भयसे व्याकुल हो उठेगा । वीर ! ये आपके दोनों तरकशा हैं; इन्हें बाँध लीजिये, जिससे युद्धमें आपको सुख मिले । इसमें वैरियोंको ढुकड़े-ढुकड़े कर डालनेवाले अनेक बाण भरे हैं । प्राणनाथ ! कामदेवके समान सुन्दर अपने शरीरपर यह सुदृढ़ कवच धारण कीजिये, जो विद्युतकी प्रभाके समान अपने महान् प्रकाशसे अन्धकारको दूर किये देता है । प्रियतम अपने मस्तकपर यह शिरखाण (मुकुट) भी पहन लीजिये, जो मनको लुभानेवाला है । साथ ही मणियों और रत्नोंसे विभूषित ये दो उज्ज्वल कुण्डल हैं, इन्हें कानोंमें धारण कीजिये ।’

पुष्कलने कहा—प्रिये ! तुम जैसा कहती हो, वह सब मैं करूँगा । वीरपली कान्तिमती ! तुम्हारी इच्छाके अनुसार मेरी उत्तम कीर्तिका विस्तार होगा ।

ऐसा कहकर पराक्रमी वीर पुष्कलने कान्तिमतीके दिये हुए कवच, सुन्दर मुकुट, धनुष और विशाल

तरकश—इन सभी वस्तुओंको ले लिया । उन सबको धारण करके वे वीरोचित शोभासे सम्पन्न दिखायी देने लगे । उस समय सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञानमें प्रवीण, उत्तम योद्धा पुष्कलकी शोभा बहुत बढ़ गयी । पतिव्रता कान्तिमतीने अस्त्र-शस्त्रोंसे शोभायमान अपने पतिको वीरमालासे विभूषित किया तथा कुङ्कुम, अगुरु, कस्तूरी और चन्दन आदिसे उनकी पूजा करके अनेकों फूलोंके हार पहनाये, जो घुटनेतक लटककर पुष्कलकी कान्ति बढ़ा रहे थे । पूजनके पश्चात् उस सतीने बारम्बार पतिकी आरती उतारी । उसके बाद पुष्कल बोले—‘भामिनि !



अब मैं तुम्हारे सामने ही यात्रा करता हूँ ।’ पलीसे ऐसा कहकर वे सुन्दर रथपर आरूढ़ हुए और अपने पिता भरत तथा स्लेहविह्वला माता माण्डवीका दर्शन करनेके लिये गये । वहाँ जाकर उन्होंने बड़ी प्रसन्नताके साथ पिता और माताके चरणोंमें मस्तक झुकाया । फिर पिता और माताकी आज्ञा लेकर वे पुलकित शरीरसे शत्रुघ्नीकी सेनामें गये, जो बड़े-बड़े वीरोंसे सुशोभित थी ।

तदनन्तर शत्रुघ्न श्रीरघुनाथजीके महायज्ञ-सम्बन्धी घोड़ेको आगे करके अनेकों रथियों, घैदल चलनेवाले

शूरवीरों, अच्छे-अच्छे घोड़ों और सवारोंसे घिरकर बड़ी प्रसन्नताके साथ आगे बढ़े । वे घोड़ेके साथ-साथ पाञ्चाल, कुरु, उत्तरकुरु और दशार्ण आदि देशोंमें, जो सम्पत्तिमें बहुत बढ़े-चढ़े थे, भ्रमण करते रहे । शत्रुघ्नजी सब प्रकारकी शोभासे सम्पन्न थे । उन्हें उन सभी देशोंमें श्रीरामचन्द्रजीके सम्पूर्ण सुयशकी कथा सुनायी पड़ती थी, लोग कहते थे—‘श्रीरघुनाथजीने रावण नामक असुरको मारकर अपने भक्तजनोंकी रक्षा की है, अब पुनः अश्वमेध आदि पवित्र कार्योंका अनुष्ठान आरम्भ करके भगवान् श्रीराम त्रिभुवनमें अपने सुयशका विस्तार करते हुए सम्पूर्ण लोकोंकी भयसे रक्षा करेंगे ।’ इस तरह भगवान्‌का यशोगान करनेवाले लोगोंपर सन्तुष्ट होकर पुरुषश्रेष्ठ शत्रुघ्नजी उन्हें पुरस्कारके रूपमें सुन्दर हार, नाना प्रकारके रत्न और बहुमूल्य वस्त्र देते थे । श्रीरघुनाथजीके एक सचिव थे, जिनका नाम था सुमति । वे सम्पूर्ण विद्याओंमें प्रवीण और तेजस्वी थे । वे भी शत्रुघ्नजीके अनुगामी होकर आये थे । महाधीर शत्रुघ्न उनके साथ अनेकों गाँवों और जनपदोंमें गये, किन्तु श्रीरघुनाथजीके प्रतापसे कोई भी उस घोड़ेका अपहरण न कर सका । भिन्न-भिन्न देशोंके जो बहुत-से राजे-महाराजे थे, वे यद्यपि महान् बलसे विभूषित तथा चतुरङ्गिणी सेनासे सम्पन्न थे, तथापि मोती और मणियोंसहित बहुत-सी सम्पत्ति साथ ले घोड़ेकी रक्षामें आये हुए शत्रुघ्नजीके चरणोंमें गिर जाते और बारम्बार कहने लगते थे—‘रघुनन्दन ! यह राज्य तथा पुत्र, पशु और बान्धवोंसहित सारा धन भगवान् श्रीरामका ही है, हमारा इसमें कुछ भी नहीं है ।’ उनकी ऐसी बातें सुनकर विपक्षी वीरोंका हनन करनेवाले शत्रुघ्नजी वहाँ अपनी आज्ञा घोषित कर देते और उन्हें साथ ले आगेके मार्गपर बढ़ जाते थे ।

ब्रह्मन् ! इस प्रकार क्रमशः आगे-आगे बढ़ते हुए शत्रुघ्नजी घोड़ेके साथ अहिच्छत्रा नगरीके पास जा पहुँचे, जो नाना प्रकारके मनुष्योंसे भरी हुई थी । उसमें ब्राह्मणों तथा अन्यान्य द्विजोंका निवास था । अनेकों प्रकारके रत्नोंसे वह पुरी सजायी गयी थी । सोने और स्फटिक

मणिके बने हुए महल तथा गोपुर (फाटक) उस नगरीकी शोभा बढ़ा रहे थे। वहाँके मनुष्य सब प्रकारके भोग भोगनेवाले तथा सदाचारसे सुशोभित थे। वहाँ बाण सन्धान करनेमें चतुर वीर हाथोंमें धनुष लिये उस पुरीके श्रेष्ठ राजा सुमदको प्रसन्न किया करते थे। शत्रुघ्ने दूरसे ही उस नगरीको देखा। उसके पास ही एक उद्यान था, जो उस नगरमें सबसे श्रेष्ठ और शोभायमान दिखायी देता था। तमाल और ताल आदिके वृक्ष उसकी सुषमाको और भी बढ़ा रहे थे। यज्ञका घोड़ा उस उपवनके बीचमें घुस गया तथा उसके पीछे-पीछे वीर शत्रुघ्न भी, जिनके चरण-कमलोंकी सेवामें अनेकों धनुर्धर शत्रिय मौजूद थे, उसमें जा पहुँचे। वहाँ जानेपर उन्हें एक देव-मन्दिर दिखायी दिया, जिसकी रचना अद्भुत थी। वह कैलास-शिखरके समान ऊँचा तथा शोभासे सम्पन्न था। देवताओंके लिये भी वह सेव्य जान पड़ता था। उस सुन्दर देवालयको देखकर श्रीखुनाथजीके भाई शत्रुघ्ने अपने सुमति नामक मन्त्रीसे, जो अच्छे वक्ता थे, पूछा।

शत्रुघ्न बोले—मन्त्रिवर ! बताओ, यह क्या है ? किस देवताका मन्दिर है ? किस देवताका यहाँ पूजन होता है तथा वे देवता किस हेतुसे यहाँ विराजमान हैं ?

मन्त्री सब बातोंके जानकार थे, उन्होंने शत्रुघ्नका प्रश्न सुनकर कहा—‘वीरवर ! एकाग्रचित्त होकर सुनो, मैं सब बातोंका यथावत् वर्णन करता हूँ। इसे तुम कामाक्षा देवीका उत्तम स्थान समझो। यह जगत्को एकमात्र कल्याण प्रदान करनेवाला है। पूर्वकालमें अहिच्छत्रा नगरीके स्वामी राजा सुमदकी प्रार्थनासे भगवती कामाक्षा यहाँ विराजमान हुई, जो भक्तोंका दुःख दूर करती हुई उनकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करती है। वीरशिरोमणि शत्रुघ्न ! तुम इन्हें प्रणाम करो।’ मन्त्रीके वचन सुनकर शत्रुघ्नोंको ताप देनेवाले नरश्रेष्ठ शत्रुघ्ने भगवती कामाक्षाको प्रणाम किया और उनके प्रकट होनेके सम्बन्धकी सब बातें पूछीं—‘मन्त्रिवर ! अहिच्छत्राके स्वामी राजा सुमद कौन है ? उन्होंने कौन-सी तपस्या की है, जिसके प्रभावसे ये सम्पूर्ण

लोकोंकी जननी कामाक्षा देवी सन्तुष्ट होकर यहाँ विराज रही है ?’

सुमतिने कहा—हेमकूट नामसे प्रसिद्ध एक पवित्र पर्वत है, जो सम्पूर्ण देवताओंसे सुशोभित रहा करता है। वहाँ ऋषि-मुनियोंसे सेवित विमल नामका एक तीर्थ है। वहाँ राजा सुमदने तपस्या की थी। उनके राज्यकी सीमापर रहनेवाले सम्पूर्ण सामन्त नरेशोंने, जो वास्तवमें शत्रु थे, एक साथ मिलकर उनके राज्यपर चढ़ाई की। उस युद्धमें उनके पिता, माता तथा प्रजावर्गके लोग भी शत्रुओंके हाथसे मारे गये। तब सर्वथा असहाय होकर राजा सुमद तपस्याके लिये उपयोगी विमलतीर्थमें गये और वहाँ तीन वर्षतक एक पैरसे खड़ा हो मन-ही-मन जगदम्बाका ध्यान करते रहे। उस समय उनकी आँखें नासिकाके अग्रभागपर जमी रहती थीं। इसके बाद तीन वर्षोंतक उन्होंने सूखे पते चबाकर अत्यन्त उग्र तपस्या की, जिसका अनुष्ठान दूसरेके लिये अत्यन्त कठिन था। तत्पश्चात् पुनः तीन वर्षोंतक उन्होंने और भी कठोर नियम धारण किये— जाड़ेके दिनोंमें वे पानीमें ढूबे रहते, गर्मीमें पञ्चाग्रिका सेवन करते तथा वर्षकालमें बादलोंकी ओर मुँह किये मैदानमें खड़े रहते थे। तदनन्तर पुनः तीन वर्षोंतक वे धीर राजा अपने हृदयान्तर्वर्ती प्राणवायुको रोककर केवल भवानीके ध्यानमें संलग्न रहे। उस समय उन्हें जगदम्बाके सिवा दूसरा कुछ दिखलायी नहीं देता था। इस प्रकार जब बारहवाँ वर्ष व्यतीत हो गया, तो उनकी भारी तपस्या देखकर इन्द्रने मन-ही-मन उसपर विचार किया और भयके कारण वे उनसे डाह करने लगे। उन्होंने अप्सराओंके साथ कामदेवको, जो ब्रह्मा और इन्द्रको भी परास्त करनेके लिये उद्यत रहता था, परिवारसहित बुलाकर इस प्रकार आज्ञा दी—‘सखे कामदेव ! तुम सबका मन मोहनेवाले हो, जाओ, मेरा एक प्रिय कार्य करो, जैसे भी हो सके राजा सुमदकी तपस्यामें विघ्न डालो।’

कामदेवने कहा—देवराज ! मुझ सेवकके रहते हुए आप चिन्ता न कीजिये, आर्य ! मैं अभी सुमदके

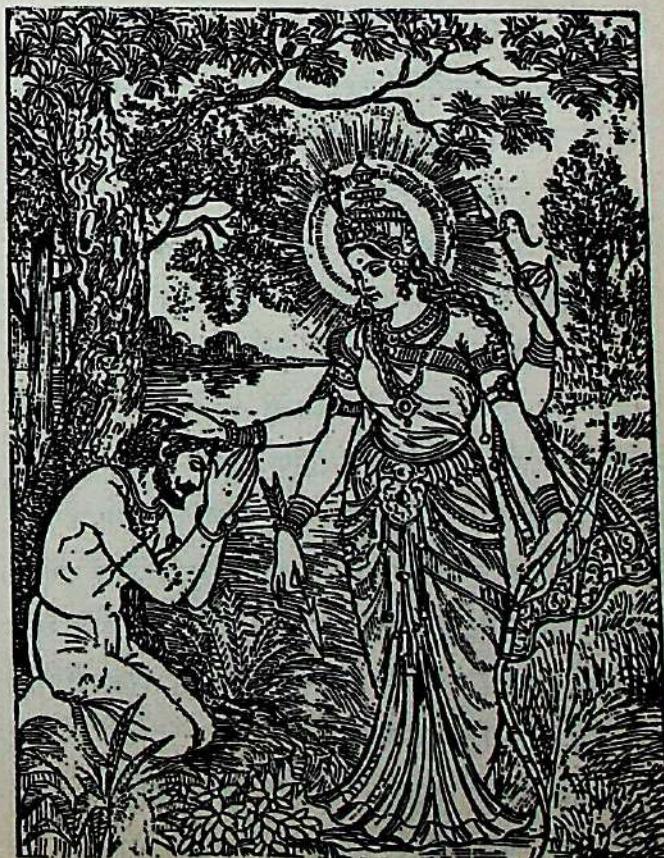
पास जाता हूँ। आप देवताओंकी रक्षा कीजिये।

ऐसा कहकर कामदेव अपने सखा वसन्त तथा अप्सराओंके समूहको साथ लेकर हेमकूट पर्वतपर गया। वसन्तने जाते ही वहाँके सारे वृक्षोंको फल और फूलोंसे सुशोभित कर दिया। उनकी डलियोंपर कोयल कूकने तथा भ्रमर गुंजार करने लगे। दक्षिण दिशाकी ओरसे ठंडी-ठंडी हवा चलने लगी। जिसमें कृतमाला नदीके तीरपर खिले हुए लवङ्ग-कुसुमोंकी सुगम्य आ रही थी। इस प्रकार जब समूचे वनमें वसन्तकी शोभा छा गयी, तो अप्सराओंमें श्रेष्ठ रम्भा अपनी सखियोंसे घिरकर सुमदके पास गयी। रम्भाका स्वर किन्नरोंके समान मनोहर था। वह मृदङ्ग और पणव आदि नाना प्रकारके बाजे बजानेमें भी निपुण थी। राजाके समीप पहुँचकर उसने गाना आरम्भ कर दिया। महाराज सुमदने जब वह मधुर गान सुना, वसन्तकी मनोहारिणी छटा देखी तथा मनको लुभानेवाली कोयलकी मीठी तान सुनी तो चारों ओर दृष्टि दौड़ायी, फिर सारा रहस्य उनकी समझमें आ गया। राजाको ध्यानसे जगा देख फूलोंका धनुष धारण करनेवाले कामदेवने बड़ी फुर्ती दिखायी। उसने उनके पीछेकी ओर खड़ा होकर तत्काल अपना धनुष चढ़ा लिया। इतनेहीमें एक अप्सरा अपने नेत्रपल्लवोंको नचाती हुई राजाके दोनों चरण दबाने लगी। दूसरी सामने खड़ी होकर कटाक्ष-पात करने लगी तथा तीसरी शरीरकी शृङ्खल-जनित चेष्टाएँ (तरह-तरहके हाव-भाव) प्रदर्शित करने लगी। इस प्रकार अप्सराओंसे घिरकर जितेन्द्रियोंके शिरोमणि बुद्धिमान् राजा सुमद यों चिन्ता करने लगे—‘ये सुन्दरी अप्सराएँ मेरी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये यहाँ आयी हैं। इन्हें इन्द्रने भेजा है। ये सब-की-सब उनकी आज्ञाके अनुसार ही कार्य करेंगी।’

इस प्रकार चिन्तासे आकुल होकर धीरचित्त, मेधावी तथा वीर राजा सुमदने अपने हृदयमें अच्छी तरह विचार किया। इसके बाद वे देवाङ्गनाओंसे बोले—‘देवियो ! आपलोग मेरे हृदय-मन्दिरमें विराजमान जगदम्बाकी स्वरूप हैं। आपलोगोंने जिस स्वर्गीय सुखकी चर्चा की है, वह अत्यन्त तुच्छ और अनिश्चित संपूर्ण १५—

है। मैं भक्ति-भावसे जिनकी आराधनामें लगा हूँ, वे मेरी स्वामिनी जगदम्बा मुझे उत्तम वरदान देंगी। जिनकी कृपासे सत्यलोकको पाकर ब्रह्माजी महान् बने हैं, वे ही मुझे सब कुछ देंगी; क्योंकि वे भक्तोंका दुःख दूर करनेवाली है। भगवतीकी कृपाके सामने नन्दन-वन अथवा सुवर्णमण्डित मेरुगिरि क्या है ? और वह सुधा भी किस गिनतीमें है, जो थोड़े-से पुण्यके द्वारा प्राप्त होनेवाली और दानवोंको दुःखमें डालनेवाली है ?’

राजाका यह वचन सुनकर कामदेवने उनपर अनेकों बाणोंका प्रहार किया; किन्तु वह उनकी कुछ भी हानि न कर सका। वे सुन्दरी अप्सराएँ अपने कुटिल-कटाक्ष, नूपुरोंकी झनकार, आलिङ्गन तथा चितवन आदिके द्वारा उनके मनको मोहमें न डाल सकीं। अन्तमें निराश होकर जैसे आयी थीं, वैसे ही लौट गयीं और इन्द्रसे बोलीं—‘राजा सुमदकी बुद्धि स्थिर है, उनपर हमारा जादू नहीं चल सकता।’ अपने प्रयत्नके व्यर्थ होनेकी बात सुनकर इन्द्र डर गये। इधर जगदम्बाने महाराज सुमदको जितेन्द्रिय तथा अपने चरण-कमलोंके ध्यानमें दृढ़तापूर्वक स्थित देख उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उनकी



कान्ति करोड़ों सूर्योंके समान थी। वे अपनी चार भुजाओंमें धनुष, बाण, अङ्कुश और पाश धारण किये हुए थीं। माताका दर्शन पाकर बुद्धिमान् राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने बारम्बार मस्तक झुकाकर भक्तिभावनासे प्रकट हुई माता दुर्गाको प्रणाम किया। वे बारम्बार राजाके शरीरपर अपने कोमल हाथ फेरती हुई हँस रही थीं। महामति राजा सुमदके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उनके अन्तःकरणकी वृत्ति भक्ति-भावसे उत्कण्ठित हो गयी और वे गद्गद स्वरसे माताकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—‘देवि ! आपकी जय हो। महादेवि ! भक्त-जन सदा आपकी ही सेवा करते हैं। ब्रह्मा और इन्द्र आदि समस्त देवता आपके युगल-चरणोंकी आराधनामें लगे रहते हैं। आप यापके स्पर्शसे रहित हैं। आपहीके प्रतापसे अग्निदेव प्राणियोंके भीतर और बाहर स्थित होकर सारे जगत्का कल्प्याण करते हैं। महादेवि ! देवता और असुर—सभी आपके चरणोंमें नतमस्तक होते हैं। आप ही विद्या तथा आप ही भगवान् विष्णुकी महामाया हैं। एकमात्र आप ही इस जगत्को पवित्र करनेवाली हैं। आप ही अपनी शक्तिसे इस संसारकी सृष्टि और पालन करती हैं। जगत्के जीवोंको मोहमें डालनेवाली भी आप ही हैं। सब देवता आपहीसे सिद्धि पाकर सुखी होते हैं। मातः ! आप दयाकी स्वामिनी, सबकी वन्दनीया तथा भक्तोंपर स्लेह रखनेवाली हैं। मेरा पालन कीजिये। मैं आपके चरण-कमलोंका सेवक हूँ। मेरी रक्षा कीजिये।’

सुमतिने कहा—इस प्रकार की हुई स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर जगन्माता कामाक्षा अपने भक्त सुमदसे, जिनका शरीर तपस्याके कारण दुर्बल हो रहा था, बोली—‘बेटा ! कोई उत्तम वर माँगो।’ माताका यह वचन सुनकर राजा सुमदको बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने अपना खोया हुआ अकण्टक राज्य, जगन्माता भवानीके चरणोंमें अविचल भक्ति तथा अन्तमें संसारसागरसे पर उतारनेवाली मुक्तिका वरदान माँगा।

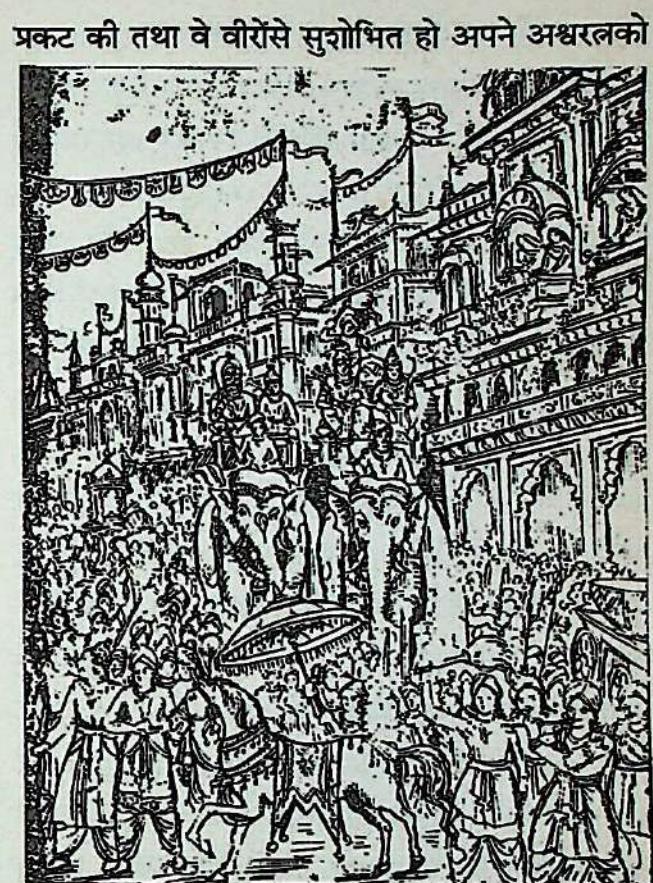
कामाक्षाने कहा—सुमद ! तुम सर्वत्र अकण्टक राज्य प्राप्त करो और शत्रुओंके द्वारा तुम्हारी कभी

पराजय न हो। जिस समय महायशस्वी श्रीरघुनाथजी रावणको मारकर सब सामग्रियोंसे सुशोभित अश्वमेघ यज्ञका अनुष्ठान करेंगे, उस समय शत्रुओंका दमन करनेवाले उनके महावीर भ्राता शत्रुघ्न वीर आदिसे घिरकर घोड़ेकी रक्षा करते हुए यहाँ आयेंगे। तुम उन्हें अपना राज्य, समृद्धि और धन आदि सब कुछ सौंपकर उनके साथ पृथ्वीपर भ्रमण करोगे तथा अन्तमें ब्रह्मा, इन्द्र और शिव आदिसे सेवित भगवान् श्रीरामको प्रणाम करके ऐसी मुक्ति प्राप्त करोगे, जो यम-नियमोंका साधन करनेवाले योगियोंके लिये भी दुर्लभ है।

ऐसा कहकर देवता और असुरोंसे अभिवन्दित कामाक्षा देवी वहाँसे अन्तर्धान हो गयीं तथा सुमद भी अपने शत्रुओंको मारकर अहिच्छत्रा नगरीके राजा हुए। वही ये इस नगरीके स्वामी राजा सुमद हैं। यद्यपि ये सब प्रकारसे समर्थ तथा बल और वाहनोंसे सम्पन्न हैं तथापि तुम्हारे यज्ञ-सम्बन्धी घोड़ेको नहीं पकड़ेंगे; क्योंकि महामायाने इस बातके लिये इनको भलीभांति शिक्षा दी है।

शोषजी कहते हैं—सुमतिके मुखसे राजा सुमदका यह वृत्तान्त सुनकर महान् यशस्वी, बुद्धिमान् और बलवान् शत्रुघ्नजी बड़े प्रसन्न हुए तथा ‘साधु-साधु’ कहकर उन्होंने अपना हर्ष प्रकट किया। उधर अहिच्छत्राके स्वामी अपने सेवकगणोंसे घिरकर सुखपूर्वक राजसभामें विराजमान थे। वेदवेत्ता ब्राह्मण तथा धन-धान्यसे सम्पन्न वैश्य भी उनके पास बैठे थे; इससे उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। इसी समय किसीने आकर राजासे कहा—‘स्वामिन् ! न जाने किसका घोड़ा नगरके पास आया है, जिसके ललाटमें पत्र बँधा हुआ है।’ यह सुनकर राजाने तुरंत ही एक अच्छे सेवकको भेजा और कहा—‘जाकर पता लगाओ, किस राजाका घोड़ा मेरे नगरके निकट आया है।’ सेवकने जाकर सब बातका पता लगाया और महान् क्षत्रियोंसे सेवित राजा सुमदके पास आ आरम्भसे ही सारा वृत्तान्त कह सुनाया। ‘श्रीरघुनाथजीका घोड़ा है’ यह सुनकर बुद्धिमान् राजाको चिरकालकी पुरानी बातका स्मरण हो आया

और उन्होंने सब लोगोंको आज्ञा दी—‘धन-धान्यसे सम्पन्न जो मेरे आत्मीय जन हैं, वे सब लोग अपने-अपने घरोंपर तोरण आदि माझलिक वस्तुओंकी रचना करें।’ इन सब बातोंके लिये आज्ञा देकर स्वयं राजा सुमद अपने पुत्र-पौत्र और रानी आदि समस्त परिवारको साथ लेकर शत्रुघ्नके पास गये। शत्रुघ्नने पुष्कल आदि योद्धाओं तथा मन्त्रियोंके साथ देखा, वीर राजा सुमद आ रहे हैं। राजाने आकर बड़ी प्रसन्नताके साथ शत्रुघ्नको प्रणाम किया और कहा—‘प्रभो ! आज मैं धन्य और कृतार्थ हो गया। आपने यहाँ दर्शन देकर मेरा बड़ा सत्कार किया। मैं चिरकालसे इस अश्वके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहा था। माता कामाक्षा देवीने पूर्वकालमें जिस बातके लिये मुझसे कहा था, वह आज और इस समय पूरी हुई है। श्रीरामके छोटे भाई महाराज शत्रुघ्नजी ! अब चलकर मेरी नगरीको देखिये, यहाँके मनुष्योंको कृतार्थ कीजिये तथा मेरे समस्त कुलको पवित्र बनाइये।’ ऐसा कहकर राजाने चन्द्रमाके समान कान्तिवाले श्वेत गजराजपर शत्रुघ्न और महावीर पुष्कलको चढ़ाया तथा पीछे स्वयं भी सवार हुए। फिर महाराज सुमदकी आज्ञासे भेरी और पणव आदि बाजे बजने लगे, वीणा आदिकी मधुर ध्वनि होने लगी तथा इन समस्त वाद्योंकी तुमुल ध्वनि चारों ओर व्याप्त हो गयी। धेर-धेरी नगरमें आकर सब लोगोंने शत्रुघ्नजीका अभिनन्दन किया—उनकी वृद्धिके लिये शुभकामना



साथ लिये राज-मन्दिरमें उतरे। उस समय सारा राजभवन तोरण आदिसे सजाया गया था तथा स्वयं राजा सुमद शत्रुघ्नजीको आगे करके चल रहे थे। महलमें पहुँचकर उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अर्थ्य आदिके द्वारा शत्रुघ्नजीका पूजन किया और अपना सब कुछ भगवान् श्रीरामकी सेवामें अर्पण कर दिया।

————★————

शत्रुघ्नका राजा सुमदको साथ लेकर आगे जाना और च्यवन मुनिके आश्रमपर पहुँचकर सुमतिके मुखसे उनकी कथा सुनना—च्यवनका सुकन्यासे व्याह

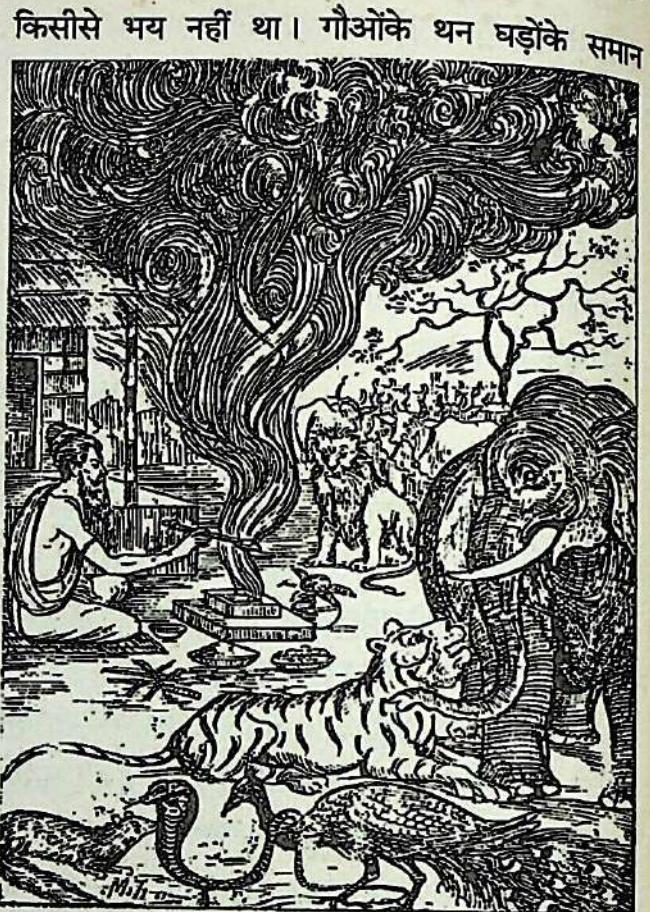
शेषजी कहते हैं—तदनन्तर नश्रेष्ठ राजा सुमदने श्रीरघुनाथजीकी उत्तम कथा सुननेके लिये उत्सुक होकर स्वागत-सत्कारसे सन्तुष्ट हुए शत्रुघ्नजीसे वार्तालाप आरम्भ किया।

सुमद बोले—महामते ! सम्पूर्ण लोकोंके शिरोमणि, भक्तोंकी रक्षाके लिये अवतार ग्रहण करनेवाले तथा मुझपर निरन्तर अनुग्रह रखनेवाले भगवान् श्रीराम अयोध्यामें सुखपूर्वक तो विराज रहे हैं

न ? ये सब लोग धन्य हैं, जो सदा आनन्दमग्न होकर अपने नेत्र-पुटोंके द्वारा श्रीरघुनाथजीके मुखारविन्दका मकरन्द पान करते रहे हैं। नश्रेष्ठ ! अब मेरी कुल-परम्परा तथा राज्य-भूमि आदि सब वस्तुएँ पूर्ण सफल हो गयीं। दयासे द्रवित होनेवाली माता कामाक्षा देवीने पूर्वकालमें मुझपर बड़ी कृपा की थी।

राजाओंमें श्रेष्ठ वीर सुमदके ऐसा कहनेपर शत्रुघ्नने श्रीरघुनाथजीके गुणोंको प्रकट करनेवाली सब कथाएँ

कह सुनायी । वे तीन रात्रिक वहाँ ठहरे रहे । इसके बाद उन्होंने राजा के साथ वहाँसे जानेका विचार किया । उनका अभिप्राय जानकर सुमदने शीघ्र ही अपने पुत्रको राज्यपर अधिषिक्त कर दिया तथा उन महाबुद्धिमान् नरेशने शत्रुघ्नके सेवकोंको बहुत-से वस्त्र, रक्त और नाना प्रकारके धन दिये । तत्पश्चात् शत्रुघ्ने धनुष धारण किये हुए राजा सुमदको साथ लेकर अपने बहुज मन्त्रियों, पैदल योद्धाओं, हाथियों और अच्छे घोड़े जुते हुए अनेकों रथोंके साथ वहाँसे यात्रा आरम्भ की । श्रीरघुनाथजीके प्रतापका आश्रय लेकर वे हँसते-हँसते मार्ग तय करने लगे । पयोष्णी नदीके तीरपर पहुँचकर उन्होंने अपनी चाल तेज कर दी तथां शत्रुओंपर प्रहार करनेवाले समस्त योद्धा भी पीछे-पीछे उनका साथ देने लगे । वे तपस्वी ऋषियोंके भाँति-भाँतिके आश्रम देखते तथा वहाँ श्रीरघुनाथजीके गुणगान सुनते हुए यात्रा कर रहे थे । उस समय उन्हें चारों ओर मुनियोंकी यह कल्याणमयी बाणी सुनायी पड़ती थी—‘यह यज्ञका अश्व चला जा रहा है, जो श्रीहरिके अंशावतार श्रीशत्रुघ्नजीके द्वारा सब ओरसे सुरक्षित है । भगवान्‌का अनुसरण करनेवाले वानर तथा भगवद्भक्त भी उसकी रक्षा कर रहे हैं ।’ जिनकी चित्तवृत्तियाँ भक्तिसे निरन्तर प्रभावित रहती हैं, उन महर्षियोंकी पूर्वोक्त बातें सुनकर शत्रुघ्नजीको बड़ा सन्तोष हुआ । आगे जाकर उन्होंने एक विशुद्ध आश्रम देखा, जो निरन्तर होनेवाली वेदोंकी ध्वनिसे उसको श्रवण करनेवाले मनुष्योंका सारा अमङ्गल नष्ट किये देता था । वहाँका सम्पूर्ण आकाश अग्निहोत्रके समय दी जानेवाली आहुतिके धूमसे पवित्र हो गया था । श्रेष्ठ मुनियोंके द्वारा स्थापित किये हुए अनेकों यज्ञसम्बन्धी यूप उस आश्रमको सुशोभित कर रहे थे । वहाँ सिंह भी पालन करनेयोग्य गौओंकी रक्षा करते थे । चूहे अपने रहनेके लिये बिल नहीं खोदते थे; क्योंकि वहाँ उन्हें बिल्लियोंसे भय नहीं था । साँप सदा मोरे और नेवलोंके साथ खेलते रहते थे । हाथी और सिंह एक-दूसरेके मित्र होकर उस आश्रमपर निवास करते थे । मृग वहाँ प्रेमपूर्वक चरते रहते थे, उन्हें



दिखायी देते थे । उनका विग्रह नन्दिनीकी भाँति सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला था और वे अपने खुरोंसे उठी हुई धूलके द्वारा वहाँकी भूमिको पवित्र करती थीं । हाथोंमें समिधा धारण करनेवाले श्रेष्ठ मुनिवरोंने वहाँकी भूमिको धार्मिक क्रियाओंका अनुष्ठान करनेके योग्य बना रखा था । उस आश्रमको देखकर शत्रुघ्नजीने सब बातोंको जाननेवाले श्रीराममन्त्री सुमतिसे पूछा ।

शत्रुघ्नजी बोले—सुमते ! यह सामने किस मुनिका आश्रम शोभा पा रहा है ? यहाँ सब जन्तु आपसका वैर-भाव छोड़कर एक ही साथ निवास करते हैं तथा यह मुनियोंकी मण्डलीसे भी भरा-पूरा दिखायी देता है । मैं मुनिकी वार्ता सुनूँगा तथा उनका वृत्तान्त श्रवण करके अपनेको पवित्र करूँगा ।

महात्मा शत्रुघ्नके ये उत्तम वचन सुनकर परम मेधावी श्रीरघुनाथजीके मन्त्री सुमतिने कहा—‘सुमित्रानन्दन ! इसे महर्षि च्यवनका आश्रम समझो । यह बड़े-बड़े तपस्वियोंसे सुशोभित तथा वैरशून्य जन्तुओंसे भरा हुआ है । मुनियोंकी पलिङ्गाँ भी यहाँ

निवास करती हैं। महामुनि च्यवन वे ही हैं, जिन्होने मनुपुत्र शर्यातिके महान् यज्ञमें इन्द्रका मान भङ्ग किया और अश्विनीकुमारोंको यज्ञका भाग दिया था।

शत्रुघ्नने पूछा—मन्त्रिवर ! महर्षि च्यवनने कब अश्विनीकुमारोंको देवताओंकी पहाड़ियों बिठाकर उन्हें यज्ञका भाग अर्पण किया था ? तथा देवराज इन्द्रने उस महान् यज्ञमें क्या किया था ?

सुमतिने कहा—सुमित्रानन्दन ! ब्रह्माजीके वंशमें महर्षि भृगु बड़े विख्यात महात्मा हुए हैं। एक दिन सन्ध्याके समय समिधा लानेके लिये वे आश्रमसे दूर चले गये थे। उसी समय दमन नामका एक महाबली राक्षस उनके यज्ञका नाश करनेके लिये आया और उच्च स्वरसे अत्यन्त भयङ्कर वचन बोला—‘कहाँ है वह अधम मुनि और कहाँ है उसकी पापरहित पत्नी ?’ वह रोषमें भरकर जब बारम्बार इस प्रकार कहने लगा तो अग्निदेवताने अपने ऊपर राक्षससे भय उपस्थित जानकर मुनिकी पत्नीको उसे दिखा दिया। वह सती-साध्वी नारी गर्भवती थी। राक्षसने उसे पकड़ लिया। बेचारी अबला कुररीकी भाँति विलाप करने लगी—‘महर्षि भृगु ! रक्षा करो, पतिदेव ! बचाओ, प्राणनाथ ! तपोनिधि !! मेरी रक्षा करो !’ इस प्रकार वह आर्तभावसे पुकार रही थी, तथापि राक्षस उसे लेकर आश्रमसे बाहर चला गया और दुष्टाभरी बातोंसे महात्मा भृगुकी उस पतिव्रता पत्नीको अपमानित करने लगा। उस समय महान् भयसे त्रस्त होकर वह गर्भ मुनिपत्नीके पेटसे गिर गया। उस नवजात शिशुके नेत्र प्रज्वलित हो रहे थे, मानो सतीके शरीरसे अग्निदेव ही प्रकट हुए हों। उसने राक्षसकी ओर देखकर कहा—‘ओ दुष्ट ! अब तू यहाँसे न जा, अभी जलकर भस्म हो जा। सतीका स्पर्श करनेके कारण तेरा कल्याण न होगा।’ बालकके इतना कहते ही वह राक्षस गिर पड़ा और तुरंत जलकर राखका ढेर हो गया। तब माता अपने बच्चेको गोदमें लेकर उदास मनसे आश्रमपर आयी। महर्षि भृगुको जब मालूम हुआ कि यह सब अग्निदेवकी ही करतूत है तो वे क्रोधसे व्याकुल हो उठे और शाप देते हुए बोले—‘शत्रुको घरका भेद बतानेवाले

दुष्टात्मा ! तू सर्वभक्षी हो जा (पवित्र, अपवित्र—सभी वस्तुओंका आहार कर)।’ यह शाप सुनकर अग्निदेवको बड़ा दुःख हुआ, उन्होने मुनिके चरण पकड़ लिये और कहा—प्रभो ! तुम दयाके सागर हो। महामते ! मुझपर अनुग्रह करो। धार्मिकशिरोमणे ! मैंने झूठ बोलनेके भयसे उस राक्षसको आपकी पत्नीका पता बता दिया था, इसलिये मुझपर कृपा करो।’

अग्निकी प्रार्थना सुनकर तपस्वी मुनि दयासे द्रवित हो गये और उनपर अनुग्रह करते हुए इस प्रकार बोले—‘अग्रे ! तुम सर्वभक्षी होकर भी पवित्र ही रहोगे।’ तत्पश्चात् परम मङ्गलमय विप्रवर भृगुने स्नान आदिसे पवित्र हो हाथमें कुश लेकर गर्भसे गिरे हुए अपने पुत्रका जातकर्म आदि संस्कार किया। उस समय सम्पूर्ण तपस्वियोंने गर्भसे च्युत होनेके कारण उस बालकका नाम च्यवन रख दिया। भृगु-कुमार च्यवन शुक्लपक्षकी प्रतिपदाके चन्द्रमाकी भाँति धीरे-धीरे बढ़ने लगे। कुछ बड़े हो जानेपर वे तपस्या करनेके लिये जगत्को पवित्र करनेवाली नर्मदा नदीके तटपर गये। वहाँ पहुँचकर उन्होने दस हजार वर्षोंतक तपस्या की।



उनके दोनों कंधोंपर दीमकोंने मिट्टीकी ढेरी जमा कर दी और उसपर दो पलाशके वृक्ष उग आये। हरिण उत्सुकतापूर्वक वहाँ आते और मुनिके शरीरमें अपनी देह रगड़कर खुजली मिटाते थे; किन्तु उनको इन सब बातोंका कुछ भी ज्ञान नहीं रहता था। वे अविचलभावसे स्थिर रहते थे।

एक समयकी बात है। मनुके पुत्र राजा शर्याति तीर्थयात्राके लिये तैयार होकर परिवारसहित नर्मदाके तटपर गये, उनके साथ बहुत बड़ी सेना थी। महानदी नर्मदामें खान करके उन्होंने देवता और पितरोंका तर्पण किया तथा भगवान् श्रीविष्णुकी प्रसन्नताके लिये ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके दान दिये। राजाके एक कन्या थी, जो तपाये हुए सोनेके आभूषण पहनकर बड़ी सुन्दरी दिखायी देती थी। वह अपनी सखियोंके साथ वनमें इधर-उधर बिचरने लगी। वहाँ उसने महान् वृक्षसे सुशोभित वल्मीक (मिट्टीका ढेर) देखा, जिसके भीतर एक ऐसा तेज दीख पड़ा, जो निमेष और उन्मेषसे रहित था (उसमें खुलने-मिच्नेकी क्रिया नहीं होती थी)। राजकन्या कौतूहलवश उसके पास गयी और शलकाओंसे दबाकर उसे फोड़ डाला। फूटनेपर उससे खून निकलने लगा। यह देखकर राजकुमारीको बड़ा खेद हुआ और वह दुःखसे कातर हो गयी। अपराधसे दबी होनेके कारण उसने माता और पिताको इस दुर्घटनाका हाल नहीं बताया। वह भयसे आतुर होकर खयं ही अपने लिये शोक करने लगी। उस समय पृथ्वी काँपने लगी, आकाशसे उल्कापात होने लगा, सारी दिशाएँ धूमिल हो गयीं तथा सूर्यके चारों ओर धेरा पड़

गया। राजाके कितने ही घोड़े नष्ट हो गये, बहुतेरे हाथी मर गये, धन और रत्नका नाश हो गया तथा उनके साथ आये हुए लोगोंमें परस्पर कलह होने लगा।

वह उत्पात देखकर राजा डर गये, उनका मन कुछ उद्धिग्र हो गया। वे सब लोगोंसे पूछने लगे—‘किसीने मुनिका अपराध तो नहीं किया है?’ परम्परासे उन्हें अपनी पुत्रीकी करतूत मालूम हो गयी और वे अत्यन्त दुःखी होकर सेना और सवारियोंसहित मुनिके पास गये। भारी तपस्यामें लगे हुए तपोनिधि च्यवन मुनिको देखकर राजाने स्तुतिके द्वारा उन्हें प्रसन्न किया और कहा—‘मुनिवर! दया कीजिये।’ तब महातपस्वी मुनिश्रेष्ठ च्यवनने सन्तुष्ट होकर कहा—‘महाराज! तुम्हें मालूम होना चाहिये कि यह सारा उत्पात तुम्हारी पुत्रीका ही किया हुआ है। तुम्हारी कन्याने मेरी आँखें फोड़ डाली हैं, इनसे बहुत खून गिरा है, इस बातको जानते हुए भी उसने तुमसे नहीं बताया है; इसलिये अब तुम शास्त्रीय विधिके अनुसार मुझे उस कथाका दान कर दो, तब सारे उत्पातोंकी शान्ति हो जायगी।’ यह सुनकर राजाको बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने उत्तम कुल, नयी अवस्था, सुन्दर रूप, अच्छे स्वभाव तथा शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न अपनी प्यारी पुत्री उन अंधे महर्षिको ब्याह दी। राजाने कमलके समान नेत्रोंवाली उस कन्याका जब दान कर दिया तो मुनिके क्रोधसे प्रकट हुए सारे उत्पात तत्काल शान्त हो गये। इस प्रकार तपोनिधि मुनिवर च्यवनको अपनी कन्या देकर राजा शर्याति फिर अपनी राजधानीको लैट आये। पुत्रीपर दया आनेके कारण वे बहुत दुःखी थे।

— ★ — सुकन्याके द्वारा पतिकी सेवा, च्यवनको यौवन-प्राप्ति, उनके द्वारा अश्विनीकुमारोंको यज्ञभाग-अर्पण तथा च्यवनका अयोध्या-गमन

सुमतिने कहा—सुमित्रानन्दन! राजा शर्यातिके चले जानेके पश्चात् महर्षि च्यवन पत्नीरूपमें प्राप्त हुई उनकी कन्याके साथ अपने आश्रमपर रहने लगे। उसको पाकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी। योगाभ्यासमें प्रवृत्त

होनेके कारण उनके सारे पाप धुल गये थे। वह कन्या अपने श्रेष्ठ पतिकी भगवद्बुद्धिसे सेवा करने लगी। यद्यपि वे नेत्रोंसे हीन थे और बुढ़ापाके कारण उनकी शारीरिक शक्ति जवाब दे चुकी थी, तथापि वह उन्हें

अपने अभीष्ट पूर्ण करनेवाले कुलदेवताके समान समझकर उनकी शुश्रूषा करती थी। जैसे शची इन्द्रकी सेवामें तत्पर होकर प्रसन्नता प्राप्त करती हैं, उसी प्रकार उस सुन्दरी सतीको अपने प्रियतम पतिकी सेवामें बड़ा आनन्द आता था। पति भी साधारण नहीं, तपस्याके भण्डार थे और उनका आशय (मनोभाव) बहुत ही गम्भीर था, तो भी वह उनकी प्रत्येक चेष्टाको जानती—हर एक अभिप्रायको समझती हुई शुश्रूषामें संलग्न रहती थी। वह सुन्दर शरीरवाली राजकुमारी सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न और कृशाङ्गी थी, तो भी फल, मूल और जलका आहार करती हुई अपने स्वामीके चरणोंकी सेवा करती थी। सदा पतिकी आज्ञा पालन करनेके लिये तैयार रहती और उन्हींके पूजन (आदर-सत्कार) में समय बिताती थी। सम्पूर्ण प्राणियोंका हित-साधन करनेमें उसका अनुराग था। वह काम, दम्ष, द्वेष, लोभ, भय और मदका परित्याग करके सावधानीके साथ उद्यत रहकर सर्वदा च्यवन मुनिको सन्तुष्ट रखनेका यत्न करती थी। महाराज ! इस प्रकार वाणी, शरीर और क्रियाके द्वारा मुनिकी सेवा करती हुई उस राजकुमारीने एक हजार वर्ष व्यतीत कर दिये तथा अपनी कामनाको मनमें ही रखा [मुनिपर कभी प्रकट नहीं किया] ।

एक समयकी बात है, मुनिके आश्रमपर देववैद्य अश्विनीकुमार पथारे। सुकन्याने स्वागतके द्वारा उनका सम्मान करके उन दोनोंका पूजन (आतिथ्य-सत्कार) किया। शर्याति-कुमारी सुकन्याके किये हुए पूजन तथा अर्घ्य-पाद्य आदिसे उन सुन्दर शरीरवाले अश्विनी-कुमारोंके मनमें प्रसन्नता हुई। उन्होंने स्नेहवश उस सुन्दरीसे कहा—‘देवि ! तुम कोई वर माँगो ।’ उन दोनों देववैद्योंको सन्तुष्ट देख बुद्धिमती नारियोंमें श्रेष्ठ राजकुमारी सुकन्याने उनसे वर माँगनेका विचार किया। अपने पतिके अभिप्रायको लक्ष्य करके उसने कहा—‘देवताओ ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मेरे पतिको नेत्र प्रदान कीजिये।’ सुकन्याका यह मनोहर वचन सुनकर तथा उसके सतीत्वको देखकर उन श्रेष्ठ वैद्योंने कहा—‘यदि तुम्हारे पति यज्ञमें हमलोगोंको देवोचित

भाग अर्पण कर सकें तो हम इनके नेत्रोंमें स्पष्टरूपसे



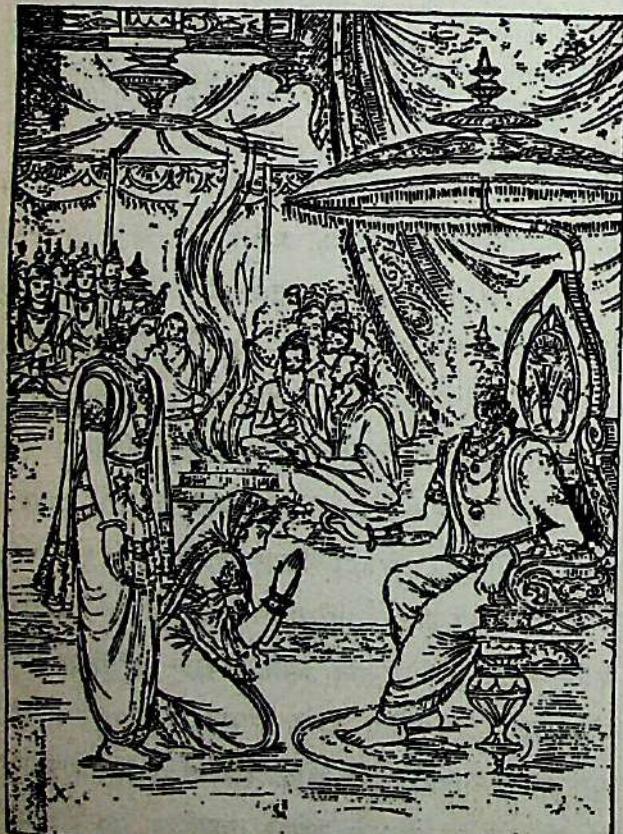
देखनेकी शक्ति पैदा कर सकते हैं।’ च्यवनने भी उन तेजस्वी देवताओंको यज्ञमें भाग देनेके लिये हामी भर दी। तब वे दोनों अश्विनीकुमार अत्यन्त प्रसन्न होकर महान् तपस्वी च्यवनसे बोले—‘मुने ! सिद्धोद्वारा तैयार किये हुए इस कुण्डमें आप गोता लगावें।’ ऐसा कहकर उन्होंने च्यवन मुनिको, जिनका शरीर वृद्धावस्थाका ग्रास बन चुका था तथा जिनकी नस-नाड़ियाँ साफ दिखायी दे रही थीं, उस कुण्डमें प्रवेश कराया और स्वयं भी उसमें गोता लगाया। तत्पश्चात् उस कुण्डमेसे तीन पुरुष प्रकट हुए जो अत्यन्त सुन्दर और नारियोंका मन मोहनेवाले थे। उनका रूप एक ही समान था। सोनेके हार, कुण्डल तथा सुन्दर वस्त्र—तीनोंके शरीरपर शोभा पा रहे थे। सुन्दर शरीरवाली सुकन्या उन तीनोंको अत्यन्त रूपवान् और सूर्यके समान तेजस्वी देखकर अपने पतिको पहचान न सकी। तब वह साध्वी दोनों अश्विनीकुमारोंकी शरणमें गयी। सुकन्याके पातिव्रत्यसे सन्तुष्ट होकर उन्होंने उसके पतिको दिखा दिया और ऋषिसे विदा ले वे दोनों विमानपर बैठकर स्वर्गको

चले गये। अब उन्हें इस बातकी आशा हो गयी थी कि जब मुनि यज्ञ करेंगे तो उसमें हमलोगोंको भी अवश्य भाग देंगे।

तदनन्तर, किसी समय राजा शर्यातिके मनमें यह इच्छा हुई कि मैं यज्ञद्वारा देवताओंका पूजन करूँ। उस समय उन्होंने महर्षि च्यवनको बुलानेके लिये अपने कई सेवक भेजे। उनके बुलानेपर महातपस्वी विप्रवर च्यवन वहाँ गये। साथमें उनकी धर्मपत्नी सुकन्या भी थी, जो मुनियोंके समान आचार-विचारका पालन करनेमें पक्की हो गयी थी। जब पत्नीके साथ वे महर्षि राजभवनमें पथारे, तब महायशस्वी राजा शर्यातिने देखा कि मेरी कन्याके पास एक सूर्यके समान तेजस्वी पुरुष खड़ा है। सुकन्याने पिताके चरणोंमें प्रणाम किया, किन्तु शर्यातिने उसे आशीर्वाद नहीं दिया। वे कुछ अप्रसन्न-से होकर

हुआ है, फिर ऐसी उल्टी बुद्धि तुझे कैसे प्राप्त हुई? ऐसा करके तू तो अपने पिता तथा पति—दोनोंके कुलको नरकमें ले जा रही है?' पिताके ऐसा कहनेपर पवित्र मुसकानवाली सुकन्या किञ्चित् मुसकराकर बोली—'पिताजी! ये जार पुरुष नहीं—आपके जामाता भृगुनन्दन महर्षि च्यवन ही हैं।' इसके बाद उसने पतिकी नयी अवस्था और सौन्दर्य-प्राप्तिका सारा समाचार पितासे कह सुनाया। सुनकर राजा शर्यातिको बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर पुत्रीको छातीसे लगा लिया। इसके बाद च्यवनने राजासे सोमयागका अनुष्ठान कराया और सोमपानके अधिकारी न होनेपर भी दोनों अश्विनीकुमारोंके लिये उन्होंने सोमका भाग निश्चित किया। महर्षि तपोबलसे सम्पन्न थे, अतः उन्होंने अपने तेजसे अश्विनीकुमारोंको सोमरसका पान कराया। अश्विनीकुमार वैद्य होनेके कारण पद्धतिपावन देवताओंमें नहीं गिने जाते थे—उन्हें देवता अपनी पद्धतिमें नहीं बिठाते थे; परन्तु उस दिन ब्राह्मणश्रेष्ठ च्यवनने उन्हें देवपद्धतिमें बैठनेका अधिकारी बनाया। यह देखकर इन्द्रको क्रोध आ गया और वे हाथमें वज्र लेकर उन्हें मारनेको तैयार हो गये। वज्रधारी इन्द्रको अपना वध करनेके लिये उद्यत देख बुद्धिमान् महर्षि च्यवनने एक बार हुंकार किया और उनकी भुजाओंको स्तम्भित कर दिया। उस समय सब लोगोंने देखा, इन्द्रकी भुजाएँ जडवत् हो गयी हैं।

बाहें स्तम्भित हो जानेपर इन्द्रकी आँखें खुलीं और उन्होंने मुनिकी स्तुति करते हुए कहा—'स्वामिन्! आप अश्विनीकुमारोंको यज्ञका भाग अर्पण कीजिये, मैं नहीं रोकता। तात! एक बार मैंने जो अपराध किया है, उसको क्षमा कीजिये।' उनके ऐसा कहनेपर दयासागर महर्षिने तुरंत क्रोध त्याग दिया और इन्द्रकी भुजाएँ भी तल्काल बन्धनमुक्त हो गयीं—उनकी जडता दूर हो गयी। यह देखकर सब लोगोंका हृदय विस्मयपूर्ण कौतूहलसे भर गया। वे ब्राह्मणोंके बलकी, जो देवता आदिके लिये भी दुर्लभ है, सराहना करने लगे। तदनन्तर शत्रुओंको ताप देनेवाले महाराज शर्यातिने

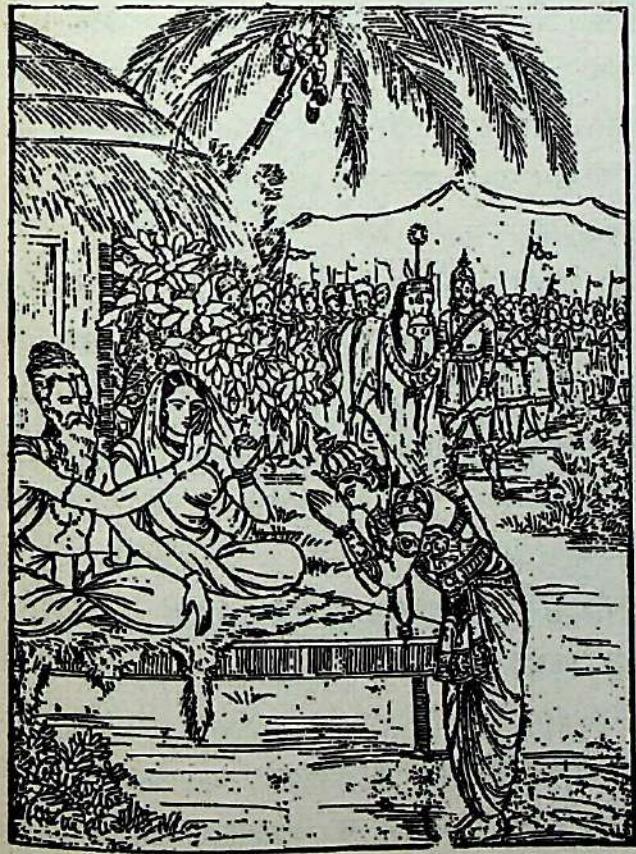


पुत्रीसे बोले—'अरी! तूने यह क्या किया? अपने पति महर्षि च्यवनको, जो सब लोगोंके वन्दनीय हैं, धोखा तो नहीं दे दिया? क्या तूने उन्हें बूढ़ा और अप्रिय जानकर छोड़ दिया और अब तू इस राह चलते जार पुरुषकी सेवा कर रही है? तेरा जन्म तो श्रेष्ठ पुरुषोंके कुलमें

ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दिया और यज्ञके अन्तमें अवधृथ-स्नान किया।

सुमित्रानन्दन ! तुमने मुझसे जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने कह सुनाया। महर्षि च्यवन तपस्या और योगबलसे सम्पन्न हैं। इन तपोमूर्ति महात्माको प्रणाम करके तुम विजयका आशीर्वाद ग्रहण करो और श्रीरामचन्द्रजीके मनोहर यज्ञमें इन्हें पलीसहित पथारनेके लिये प्रार्थना करो।

शेषजी कहते हैं—शत्रुघ्नि और सुमित्रमें इस प्रकार वार्तालिप हो रहा था, इतनेहीमें यज्ञका घोड़ा आश्रमके पास जा पहुँचा और उस महान् आश्रममें धूम-धूमकर मुखके अग्रभागसे दूबके अङ्कुर चरने लगा। इसी बीचमें शत्रुघ्नि भी च्यवन मुनिके शोभायमान आश्रमपर पहुँच गये। वहाँ जाकर उन्होंने सुकन्याके पास बैठे हुए महर्षि च्यवनका दर्शन किया, जो तपस्याके मूर्तिमान् स्वरूप-से जान पड़ते थे। सुमित्राकुमारने अपना



नाम बतलाते हुए मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—‘मुने ! मैं श्रीरघुनाथजीका भाई और इस अश्वका रक्षक शत्रुघ्नि हूँ। अपने महान् पापोंकी शान्तिके लिये आपको नमस्कार करता हूँ।’ यह वचन सुनकर मुनिवर च्यवनने कहा—‘नरश्रेष्ठ शत्रुघ्नि ! तुम्हारा कल्याण हो। इस यज्ञरूपी अश्वका पालन करनेसे संसारमें तुम्हारे महान् यशका विस्तार होगा।’ शत्रुघ्निसे ऐसा कहकर महर्षिने आश्रमवासी ब्राह्मणोंसे कहा—‘ब्रह्मर्षियो ! यह आश्वर्यकी बात देखो, जिनके नामोंके स्मरण और कीर्तन आदि मनुष्यके समस्त पापोंका नाश कर देते हैं, वे भगवान् श्रीराम भी यज्ञ करनेवाले हैं। महान् पातकी और परंखी-लम्पट पुरुष भी जिनका नाम स्मरण करके आर्नन्दपूर्वक परमगतिको प्राप्त होते हैं।’* जिनके चरण-कमलोंकी धूलि पड़नेसे पत्थरकी मूर्ति बनी हुई अहल्या तत्क्षण मनोहर रूप धारण करके महर्षि गौतमकी धर्मपत्नी हो गयी। रणक्षेत्रमें जिनके मनोहारी रूपका दर्शन करके दैत्योंने उन्हींके निर्विकार स्वरूपको प्राप्त कर लिया तथा योगीजन समाधिमें जिनका ध्यान करके योगारूढ़-अवस्थाको पहुँच गये और संसारके भयसे छुटकारा पाकर परमपदको प्राप्त हो गये, वे ही श्रीरघुनाथजी यज्ञ कर रहे हैं—यह कैसी अद्भुत बात है ! मेरा धन्य भाग, जो अब श्रीरामचन्द्रजीके उस सुन्दर मुखकी झाँकी करूँगा, जिसके नेत्रोंका प्रान्तभाग मेघके जलकी समानता करता है। जिसकी नासिका मनोहर और भौंहें सुन्दर हैं तथा जो विनयसे कुछ झुका हुआ है। जिह्वा वही उत्तम है जो श्रीरघुनाथजीके नामोंका आदरके साथ कीर्तन करती है। जो इसके विपरीत आचरण करती है, वह तो साँपकी जीभके समान है।† आज मुझे अपनी तपस्याका पवित्र फल प्राप्त हो गया। अब मेरे सारे मनोरथ पूरे हो गये; क्योंकि ब्रह्मादि देवताओंको भी जिसका दर्शन दुर्लभ है, भगवान् श्रीरामके उसी मुखको मैं इन नेत्रोंसे निहारूँगा। उनके चरणोंकी रजसे अपने

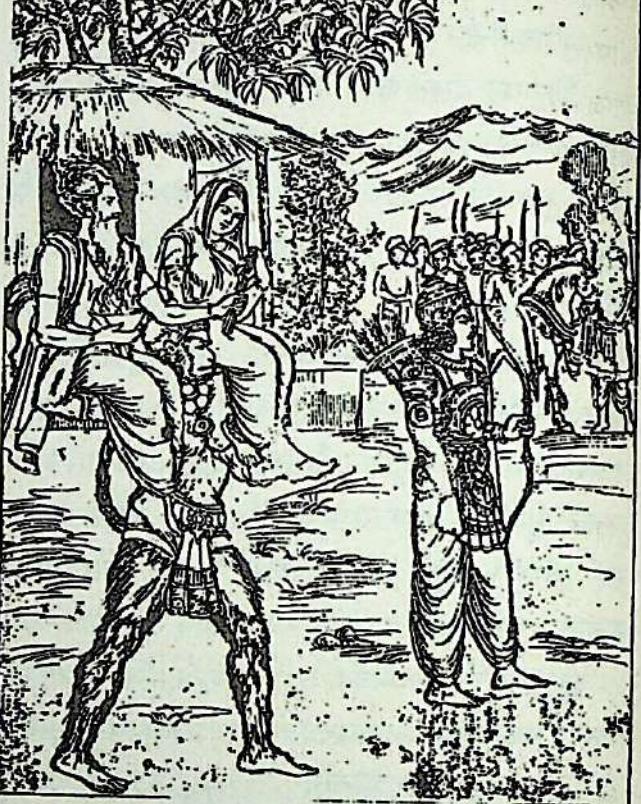
* महापातकसंयुक्तः परदाररता नरः । यत्रामस्मरणे युक्ता मुदा यान्ति परां गतिम् ॥ (१६ । ३३)

† सा जिह्वा रघुनाथस्य नामकीर्तनमादरात् । करोति विपरीता या फणिनो रसनासमा ॥ (१६ । ३९)

शरीरको पवित्र करूँगा तथा उनकी अत्यन्त विचित्र वार्ताओंका वर्णन करके अपनी रसनाको पावन बनाऊँगा ।

इस प्रकारकी बातें करते-करते श्रीरामके चरणोंका स्मरण होनेसे महर्षिका प्रेम-भाव जाग्रत् हो उठा । उनकी वाणी गद्दद हो गयी और नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली । वे मुनियोंके सामने ही अश्रुपूर्ण कण्ठसे पुकारने लगे—‘हे श्रीरामचन्द्र ! हे रघुनाथ ! हे धर्ममूर्ते ! हे भक्तोंपर दया करनेवाले परमेश्वर ! इस संसारसे मेरा उद्धार कीजिये ।’ इतना कहते-कहते महर्षि ध्यानमग्र हो गये, उन्हें अपने-परायेका ज्ञान न रहा । उस समय शत्रुघ्ने मुनिसे कहा—‘स्वामिन् ! आप हमारे श्रेष्ठ यज्ञको अपने चरणोंकी धूलिसे पवित्र कीजिये । सब लोगोंके द्वारा एकमात्र पूजित होनेवाले महाबाहु श्रीरघुनाथजीका भी बड़ा सौभाग्य है कि वे आप-जैसे महात्माके अन्तःकरणमें निवास करते हैं ।’ शत्रुघ्नके ऐसा कहनेपर मुनिवर च्यवन आनन्दमग्र हो गये और अपने सम्पूर्ण अग्नियोंको साथ ले परिवारसहित वहाँसे चल दिये । उन्हें पैदल जाते देख और श्रीरामचन्द्रजीका भक्त जान हनुमानजीने शत्रुघ्नसे विनयपूर्वक कहा—‘स्वामिन् ! यदि आप कहें तो महापुरुषोंमें श्रेष्ठ इन राम-भक्त महर्षिको मैं ही अपनी पुरीमें पहुँचा दूँ ।’ वानर वीरके ये उत्तम वचन सुनकर शत्रुघ्ने उन्हें आज्ञा दी—‘हनुमानजी ! जाइये, मुनिको पहुँचा आइये ।’ तब हनुमानजीने मुनिको कुटुम्बसहित अपनी पीठपर बिठा लिया और सर्वत्र विचरनेवाले वायुकी भाँति उन्हें शीघ्र ही अयोध्या पहुँचा दिया । मुनिको आया देख, श्रीराम ब्राह्मणका सम्मान होना उचित ही है ।

बहुत प्रसन्न हुए और प्रेमसे विह्वल होकर उन्होंने उनके



लिये अर्ध्य-पाद्य आदि अर्पण किया । तत्पश्चात् वे बोले—‘मुनिश्रेष्ठ ! इस समय आपका दर्शन पाकर मैं धन्य हो गया । आपने सब सामग्रियोंसहित मेरे यज्ञको पवित्र कर दिया ।’

भगवान्‌का यह वचन सुनकर मुनिवर च्यवन बहुत सन्तुष्ट हुए । प्रेमोद्रेकके कारण उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया । वे बोले—‘प्रभो ! आप ब्राह्मणोंपर प्रेम रखनेवाले और धर्ममार्गके रक्षक हैं; अतः आपके द्वारा ब्राह्मणका सम्मान होना उचित ही है ।’

————★————

सुमतिका शत्रुघ्नसे नीलाचलनिवासी भगवान् पुरुषोत्तमकी महिमाका वर्णन करते हुए एक इतिहास सुनाना

शेषजी कहते हैं—मुने ! महर्षि च्यवनके अचिन्तनीय तपोबलको देखकर शत्रुघ्ने विश्व-वन्दित ब्राह्मणकी बड़ी प्रशंसा की । वे मन-ही-मन कहने लगे—‘कहाँ तो विशुद्ध अन्तःकरणवाले मुनियोंको स्वतः प्राप्त होनेवाली महान् भोगोंकी सिद्धि और कहाँ

तपोबलसे हीन मनुष्योंकी भोगेच्छा !’ इस प्रकार सोचते हुए शत्रुघ्ने च्यवन मुनिके आश्रमपर थोड़ी देरतक ठहरकर जल पीया और सुख एवं आरामका अनुभव किया । उनका घोड़ा पुण्यसलिला पयोष्णी नदीका जल पीकर आगे के मार्गपर चल पड़ा । सैनिकोंने जब उसे

आश्रमसे निकलते देखा, तो वे भी उसके पीछे-पीछे चल दिये। कुछ लोग हाथीपर थे और कुछ लोग रथोंपर। कुछ घोड़ोंपर सवार थे और कुछ लोग पैदल ही जा रहे थे। शत्रुघ्नने भी मन्त्रिवर सुमति के साथ घोड़ोंसे सुशोभित होनेवाले रथपर बैठकर बड़ी शीघ्रताके साथ यज्ञसम्बन्धी अश्वका अनुसरण किया। वह घोड़ा आगे बढ़ता हुआ राजा विमलके रत्नाट्य नामक नगरमें जा पहुँचा। राजाने जब अपने सेवकके मुँहसे सुना कि श्रीरघुनाथजीका श्रेष्ठ अश्व सम्पूर्ण योद्धाओंके साथ अपने नगरके निकट आया है, तो वे शत्रुघ्नके पास गये और उन्हें प्रणाम करके अपना रत्न, कोष, धन और सारा राज्य सौंपते हुए सामने खड़े होकर बोले—‘मैं कौन-सा



कार्य करूँ—मेरे लिये क्या आज्ञा होती है?’ शत्रुघ्नने भी उन्हें अपने चरणोंमें नतमस्तक देख दोनों भुजाओंसे उठाकर छातीसे लगा लिया। इसके बाद राजा विमल भी पुत्रको राज्य देकर अनेकों धनुर्धर योद्धाओंसहित शत्रुघ्नजीके साथ गये। सबके मन और कानोंको प्रिय लगनेवाले श्रीरामचन्द्रजीका मधुर नाम सुनकर प्रायः सभी राजा उस यज्ञसम्बन्धी घोड़ोंको प्रणाम करते और

बहुमूल्य रत्न एवं धन भेट देते थे। इस प्रकार अश्वके मार्गपर जाते हुए शत्रुघ्नने एक बहुत ऊँचा पर्वत देखा। उसे देखकर उनका मन आश्र्यचकित हो गया; अतः वे मन्त्री सुमतिसे बोले—‘मन्त्रिवर ! यह कौन-सा पर्वत है, जो मेरे मनको विस्मयमें डाल रहा है। इसके बड़े-बड़े शिखर चाँदीके समान चमक रहे हैं। मार्गमें इस पर्वतकी बड़ी शोभा हो रही है। मुझे तो यह बड़ा अद्भुत जान पड़ता है। क्या यहाँ देवताओंका निवासस्थान है या यह उनकी क्रीड़ास्थली है ? यह पर्वत अपनी सब प्रकारकी शोभासे मेरे मनको मोहे लेता है।’

शत्रुघ्नजीका यह प्रश्न सुनकर मन्त्री सुमति, जिनका चित्त सदा श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें लगा रहता था, बोले—राजन् ! हमलोगोंके सामने यह नीलपर्वत शोभा पा रहा है। इसके चारों ओर फैले हुए बड़े-बड़े शिखर स्फटिक आदि मणियोंके समूह हैं; अतएव वे बड़े मनोहर प्रतीत होते हैं। पापी और पर-स्त्री-लम्पट मनुष्य इस पर्वतको नहीं देख पाते। जो नीच मनुष्य भगवान् श्रीविष्णुके गुणोंपर विश्वास या आदर नहीं करते, सत्पुरुषोंद्वारा आचरणमें लाये हुए श्रौत और स्मार्त धर्मोंको नहीं मानते तथा सदा अपने बौद्धिक तर्कके आधारपर ही विचार करते हैं, उन्हें भी इस पर्वतका दर्शन नहीं होता। नील और लाहकी बिक्री करनेवाले मनुष्य, घी आदि बेचनेवाला ब्राह्मण तथा शराबी मनुष्य भी इसके दर्शनसे वञ्चित रहते हैं। जो पिता अपनी रूपवती कन्याका किसी कुलीन वरकें साथ व्याह नहीं करता, बल्कि पापसे मोहित होकर धनके लोभसे उसको बेच देता है, उसे भी इसका दर्शन नहीं होता। जो मनुष्य उत्तम कुल और शीलसे युक्त सती साक्षी स्त्रीको कलङ्कित करता है तथा भाई-बन्धुओंको न देकर स्वयं ही मीठे पकवान उड़ाता है, जो ब्राह्मणका धन हड्प लेनेके लिये जालसाजी करता है, रसोईमें भेद करता है तथा जो दूषित विचार रखनेके कारण केवल अपने लिये खिचड़ी या खीर बनाता है, वह भी इस पर्वतको नहीं देख पाता। महाराज ! जो मध्याह्नकालमें भूखसे पीड़ित होकर आये हुए अतिथियोंका अपमान करते हैं, दूसरोंके साथ

विश्वासधात् करते रहते हैं तथा जो श्रीघुनाथजीके भजनसे विमुख होते हैं, उन्हें भी इस पर्वतका दर्शन नहीं होता। यह श्रेष्ठ पर्वत बड़ा ही पवित्र है, पुरुषोत्तमका निवासस्थान होनेसे इसकी शोभा और भी बढ़ गयी है। अपने दर्शनसे यह मनोहर शैल हम सब लोगोंको पवित्र कर रहा है। देवताओंके मुकुटोंसे जिनके चरणोंकी पूजा होती है—जहाँ देवता अपने मुकुट-मण्डित मस्तक झुकाया करते हैं, पुण्यात्मा पुरुष ही जिनका दर्शन पानेके अधिकारी है, वे पुण्य-प्रदाता भगवान् पुरुषोत्तम इस पर्वतपर विराजमान हैं। वेदकी श्रुतियाँ 'नेति-नेति' कहकर निषेधकी अवधिरूपसे जिनको जानती हैं, इन्द्रादि देवता भी जिनके चरणोंकी रज ढूँढ़ा करते हैं फिर भी उन्हें सुगमतासे प्राप्त नहीं होती तथा विद्वान् पुरुष वेदान्त आदिके महावाक्योद्वारा जिनका बोध प्राप्त करते हैं, वे ही श्रीमान् पुरुषोत्तम इस महान् पर्वतपर विराज रहे हैं। जो इस नीलगिरिपर चढ़कर भगवान्को नमस्कार करता और पुण्य कर्म आदिके द्वारा उनकी पूजा करके उनका प्रसाद ग्रहण करता है, वह साक्षात् भगवान् चतुर्भुजका स्वरूप हो जाता है।

महाराज ! इस विषयमें जानकार लोग एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं, उसको सुनो। राजा रत्नग्रीवको अपने परिवारके साथ ही जो 'चार भुजा' आदि भगवान्का सारूप्य प्राप्त हुआ था, उसीका इस उपाख्यानमें वर्णन है। ऐसा सौभाग्य देवता और दानवोंके लिये भी दुर्लभ है। यह आश्चर्यपूर्ण वृत्तान्त इस प्रकार है—तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध जो काञ्ची नामकी नगरी है, वह पूर्वकालमें बड़ी सम्पन्न-अवस्थामें थी, वहाँ बहुत अधिक मनुष्योंकी आबादी थी। सेना और सवारी सभी दृष्टियोंसे काञ्ची बड़ी समृद्धिशालिनी पुरी थी। वहाँ ब्राह्मणोंचित छः कर्मोंमें निरन्तर लगे रहनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण निवास करते थे, जो सब प्राणियोंके हितमें संलग्न और श्रीरामचन्द्रजीके भजनके लिये सदा उत्कण्ठित रहनेवाले थे। वहाँके क्षत्रिय युद्धमें लोहा लेनेवाले थे। वे संग्राममें कभी पीछे पैर नहीं हटाते थे। परायी रुक्षी, पराये धन और परदोहसे वे सदा दूर

रहनेवाले थे। वैश्य भी व्याज, खेती और व्यापार आदि शुभ वृत्तियोंसे जीविका चलाते हुए निरन्तर श्रीघुनाथजीके चरणकमलोंमें अनुराग रखते थे। शूद्र-जातिके मनुष्य रात-दिन अपने शरीरसे ब्राह्मणोंकी सेवा करते और जिह्वासे 'राम-राम' की रट लगाये रहते थे। वहाँ नीच श्रेणीके मनुष्योंमें भी कोई ऐसा नहीं था, जो मनसे भी पाप करता हो। उस नगरीमें दान, दया, दम और सत्य—ये सदा विराजमान रहते थे। कोई भी मनुष्य ऐसी बात नहीं बोलता था, जो दूसरोंको कष्ट पहुँचानेवाली हो। वहाँके लोग न तो पराये धनका लोभ रखते और न कभी पाप ही करते थे। इस प्रकार राजा रत्नग्रीव प्रजाका पालन करते थे। वे लोभसे रहित होकर केवल प्रजाकी आयके छठे अंशको 'कर' के रूपमें ग्रहण करते थे, इससे अधिक कुछ नहीं लेते थे। इस तरह धर्मपूर्वक प्रजाका पालन और सब प्रकारके भोगोंका उपभोग करते हुए राजाके अनेकों वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन उन्होंने अपनी धर्मपत्नी विशालाक्षीसे, जो पातिव्रत्य-धर्मका पालन करनेवाली पतिव्रता थी, कहा—'प्रिये ! अब अपने पुत्र प्रजाकी रक्षाका भार सँभालनेवाले हो गये। भगवान् महाविष्णुके प्रसादसे मेरे पास किसी बातकी कमी नहीं है। अब मेरे मनमें केवल एक ही अभिलाषा रह गयी है, वह यह कि मैंने आजतक किसी परम कल्याणमय उत्तम तीर्थका सेवन नहीं किया। जो मनुष्य जन्मभर अपना पेट ही भरता रहता है, भगवान्की पूजा नहीं करता वह बैल माना गया है, इसलिये कल्याणी ! मैं राज्यका भार पुत्रको सौंपकर अब कुदुम्बसहित तीर्थयात्राके लिये चलना चाहता हूँ।' ऐसा निश्चय करके उन्होंने सन्ध्याकालमें भगवान्का ध्यान किया और आधी रातको सोते समय स्वप्नमें एक श्रेष्ठ तपस्वी ब्राह्मणको देखा। फिर सबेरे उठकर उन्होंने सन्ध्या आदि नित्यकर्म पूरे किये और सभामें जाकर मन्त्रीजनोंके साथ वे सुखपूर्वक विराजमान हुए। इतनेमें ही उन्हें एक दुर्बल शरीरवाले तपस्वी ब्राह्मण दिखायी दिये, जो जटा, वल्कल और कौपीन धारण किये हुए थे। उनके हाथमें एक छड़ी थी तथा अनेकों

तीर्थोंके सेवनसे उनका शरीर पवित्र हो गया था। महाबाहु राजा रत्नग्रीवने उन्हें देख मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और प्रसन्नचित्त होकर अर्ध्य, पाद्य आदि निवेदन किया। जब ब्राह्मण सुखपूर्वक आसनपर बैठकर विश्राम कर चुके तो राजाने उनका परिचय जानकर इस प्रकार प्रश्न किया—‘खामिन्! आज आपके दर्शनसे मेरे शरीरका समस्त पाप निवृत्त हो गया। वास्तवमें महात्मा पुरुष दीन-दुःखियोंकी रक्षाके लिये ही उनके घर जाते हैं। ब्रह्मन्! अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ; इसलिये मुझे एक बात बताइये। कौन-सा देवता अथवा कौन ऐसा तीर्थ है जो गर्भवासके कष्टसे बचानेमें समर्थ हो सकता है? आपलोग समाधि और ध्यानमें तत्पर रहनेवाले हैं; अतः सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ हैं।’

ब्राह्मणने कहा—महाराज! आपने तीर्थ-सेवनके विषयमें जिज्ञासा करते हुए जो यह प्रश्न किया है कि किस देवताकी कृपासे गर्भवासके कष्टका निवारण हो सकता है? सो उसके विषयमें बता रहा हूँ, सुनिये—‘भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी ही सेवा करनी चाहिये; क्योंकि वे ही संसाररूपी रोगका नाश करनेवाले हैं। वे ही भगवान् पुरुषोत्तमके नामसे प्रसिद्ध हैं, उन्हींकी पूजा करनी चाहिये। मैंने सब पापोंका क्षय करनेवाली अनेकों पुरियों और नदियोंका दर्शन किया है—अयोध्या, सरयू, तापी, हरिद्वार, अवन्ती, विमला, काञ्छी, समुद्रगामिनी नर्मदा, गोकर्ण और करोड़ों हत्याओंका विनाश करनेवाला हाटकतीर्थ—इन सबका दर्शन पापको दूर करनेवाला है। मल्लिका-नामसे प्रसिद्ध महान् पर्वत मनुष्योंको दर्शनमात्रसे मोक्ष देनेवाला है तथा वह पातकोंका भी नाश करनेवाला तीर्थ है, उसका भी मैंने दर्शन किया है। देवता और असुर—दोनों जिसका सेवन करते हैं, उस द्वारवती (द्वारकापुरी) तीर्थका भी मैंने दर्शन किया है। वहाँ कल्याणमयी गोमती नामकी नदी बहती है, जिसका जल साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है। उसमें शयन करना (झूबना) लिय कहलाता है और मृत्युको प्राप्त होना मोक्ष; ऐसा शृतिका वचन है। उस पुरीमें निवास करनेवाले मनुष्योंपर

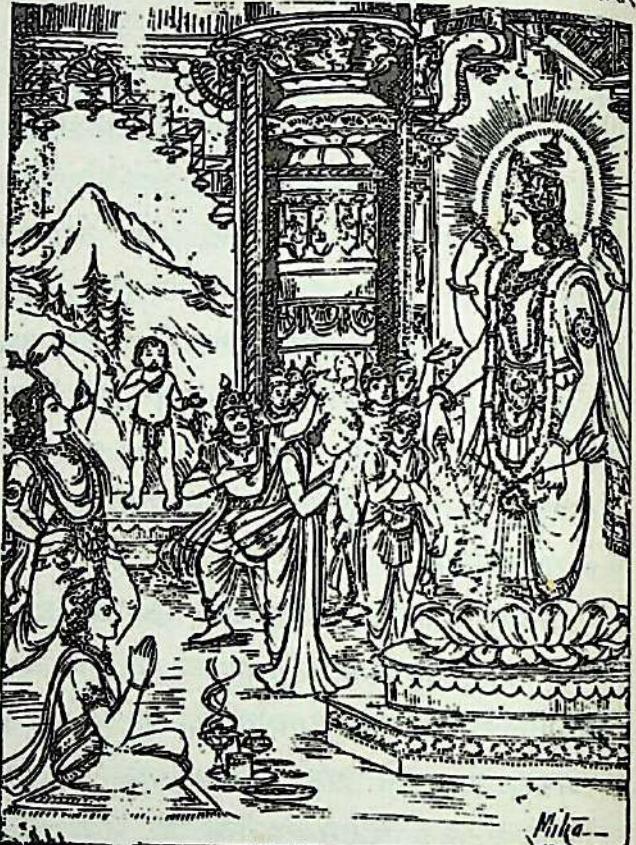
कलियुग कभी अपना प्रभाव नहीं डाल पाता। जहाँके पत्थर भी चक्रसे चिह्नित होते हैं, मनुष्य तो चक्रका चिह्न धारण करते ही हैं; वहाँके पशु-पक्षी और कीट-पतङ्ग आदि सबके शरीर चक्रसे अङ्कित होते हैं। उस पुरीमें सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र रक्षक भगवान् त्रिविक्रम निवास करते हैं। मुझे बड़े पुण्यके प्रभावसे उस द्वारकापुरीका दर्शन हुआ है। साथ ही जो सब प्रकारकी हत्याओंका दोष दूर करनेवाला है तथा जहाँ महान् पातकोंका नाश करनेवाला स्यमन्तपञ्चक नामक तीर्थ है, उस कुरुक्षेत्रका भी मैंने दर्शन किया है। इसके सिवा, मैंने वाराणसी-पुरीको भी देखा है, जिसे भगवान् विश्वनाथने अपना निवासस्थान बनाया है। जहाँ भगवान् शङ्कर मुमूर्षु प्राणियोंको तारक ब्रह्मके नामसे प्रसिद्ध ‘राम’ मन्त्रका उपदेश देते हैं। जिसमें मेरे हुए कीट, पतङ्ग, भृङ्ग, पशु-पक्षी आदि तथा असुर-योनिके प्राणी भी अपने-अपने कर्मोंके भोग और सीमित सुखका परित्याग करके दुःख-सुखसे परे हो कैलासको प्राप्त हो जाते हैं तथा जहाँ मणिकर्णिकातीर्थ और उत्तरवाहिनी गङ्गा हैं, जो पापियोंका भी संसारबन्धन काट देती हैं। राजन्! इस प्रकार मैंने अनेकों तीर्थोंका दर्शन किया है; परन्तु नीलगिरिपर भगवान् पुरुषोत्तमके समीप जो महान् आश्चर्यकी घटना देखी है वह अन्यत्र कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं हुई है।

पर्वतश्रेष्ठ नीलगिरिपर जो वृत्तान्त घटित हुआ था, उसे सुनिये; इसपर श्रद्धा और विश्वास करनेवाले पुरुष सनातन ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। मैं सब तीर्थोंमें भ्रमण करता हुआ नीलगिरिपर गया, जिसका आँगन सदा गङ्गासागरके जलसे धुलता रहता है। वहाँ पर्वतके शिखरपर मुझे कुछ ऐसे भील दिखायी दिये, जिनकी चार भुजाएँ थीं और वे धनुष धारण किये हुए थे। वे फल-मूलका आहार करके वहाँ जीवन-निर्वाह करते थे, उसमें समय उन्हें देखकर मेरे मनमें यह महान् सन्देह खड़ा हुआ कि ये धनुष-बाण धारण करनेवाले जंगली मनुष्य चतुर्भुज कैसे हो गये? वैकुण्ठलोकमें निवास करनेवाले जितेन्द्रिय पुरुषोंका जैसा स्वरूप शास्त्रोंमें देखा जाता है

तथा जो ब्रह्मा आदिके लिये भी दुर्लभ है, ऐसा स्वरूप इन्हें कैसे प्राप्त हो गया? भगवान् विष्णुके निकट रहनेवाले उनके पार्षदोंके हाथ, जिस प्रकार शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष तथा कमलसे सुशोभित होते हैं तथा उनके शरीरपर जैसे वनमाला शोभा पाती है, उसी प्रकार ये भील भी क्यों दिखायी दे रहे हैं? इस प्रकार सन्देहमें पड़ जानेपर मैंने उनसे पूछा—‘सज्जनो! आपलोग कौन हैं? और यह चतुर्भुज स्वरूप आपको कैसे प्राप्त हुआ है?’ मेरा प्रश्न सुनकर वे लोग बहुत हँसे और कहने लगे—‘ये महाशय ब्राह्मण होकर भी यहाँके पिण्डानकी अद्भुत महिमा नहीं जानते।’ यह सुनकर मैंने कहा—‘कैसा पिण्ड और किसको दिया जाता है? चतुर्भुज-शरीर धारण करनेवाले महात्माओं! मुझे इसका रहस्य बताओ।’ मेरी बात सुनकर उन महात्माओंने, जिस तरह उन्हें चतुर्भुज स्वरूपकी प्राप्ति हुई थी, वह सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

किरात बोले—ब्राह्मण! हमलोगोंका वृत्तान्त सुनो; हमारा एक बालक प्रतिदिन जामुन आदि वृक्षोंके फल खाता और अन्य बालकोंके साथ विचरा करता था। एक दिन धूमता-धामता वह यहाँ आया और शिशुओंके साथ ही इस पर्वतके मनोहर शिखरपर चढ़ गया। ऊपर जाकर उसने देखा, एक अद्भुत देव-मन्दिर है, उसकी दीवार सोनेकी बनी हुई है। जिसमें गारुदमत आदि नाना प्रकारकी मणियाँ जड़ी हुई हैं। वह अपनी मनोहर कान्तिसे सूर्यकी भाँति अन्धकारका नाश कर रहा है। उसे देखकर बालकको बड़ा विस्मय हुआ और उसने मन-ही-मन सोचा—‘यह क्या है, किसका घर है? जग चलकर देखूँ तो सही, यह महात्माओंका कैसा स्थान है?’ ऐसा विचारकर वह बड़भागी बालक मन्दिरके भीतर घुस गया। वहाँ जाकर उसने देवाधिदेव पुरुषोत्तमका दर्शन किया, जिनके चरणोंमें देवता और असुर सभी मस्तक झुकाते हैं। जिनका श्रीविग्रह किरीट, हार, केयूर और ग्रैवेयक (कण्ठ) आदिसे सुशोभित रहता है। जो कानोंमें अत्यन्त उज्ज्वल और मनोहर कुण्डल धारण करते हैं। जिनके युगल चरण-कमलोंपर

तुलसीकी सुगन्धसे मतवाले हुए भँवरे मङ्गराया करते हैं। शङ्ख, चक्र, गदा और कमल आदि परिकर दिव्य शरीर-



धारण करके जिनके चरणोंकी आराधना करते हैं तथा नारद आदि देवर्षि जिनके श्रीविग्रहकी सेवामें लगे रहते हैं, ऐसे भगवान्की उस बालकने जाँकी की। वहाँ भगवान्की उपासनामें लगे हुए देवताओंमेंसे कुछ लोग गाते थे, कुछ नाच रहे थे और कुछ लोग अद्भुत रूपसे अदृहास कर रहे थे। वे सभी विश्व-वन्दित भगवान्को रिज्ञानेमें ही लगे हुए थे। भगवान्को देखकर हमारा बालक उनके निकट चला गया। देवताओंने अच्छी तरह पूजा करके श्रीरमा-वल्लभ भगवान्को धूप और नैवेद्य अर्पण किया तथा आदरपूर्वक उनकी आरती करके भगवत्-कृपाका अनुभव करते हुए वे सब लोग अपने-अपने स्थानको चले गये। उस बालकके सौभाग्यवश वहाँ भगवान्को भोग लगाया हुआ भात (महाप्रसाद) पिरा हुआ था, जो मनुष्योंके लिये अलभ्य और देवताओंके लिये भी दुर्लभ है; वही उसे मिल गया। उसको खाकर बालकने भगवान्के श्रीविग्रहका दर्शन किया। इससे उसे चतुर्भुज रूपकी प्राप्ति हो गयी

और वह अत्यन्त सुन्दर दिखायी देने लगा। चार भुजा आदि भगवत्सारूप्यको प्राप्त हो शङ्ख, चक्र आदि धारण किये जब वह बालक घर आया तो हमलोगोंने बारम्बार उसकी ओर देखकर पूछा—‘तुम्हारा यह अद्भुत स्वरूप कैसे हो गया?’ तब बालक अपने आश्चर्ययुक्त वृत्तान्तका वर्णन करने लगा—‘मैं नीलगिरिके शिखरपर गया था, वहाँ मैंने देवाधिदेव भगवान्‌का दर्शन किया है, वहाँ भगवान्‌को भोग लगाया हुआ मनोहर प्रसाद भी मुझे मिल गया था, जिसके भक्षण करनेमात्रसे इस समय मेरा ऐसा चतुर्भुज स्वरूप हो गया है। मैं स्वयं ही अपने इस

परिवर्तनपर विस्मय-विमुग्ध हो रहा हूँ।’ बालककी बात सुनकर हम सब लोगोंको बड़ा आश्र्य हुआ और हमने भी इन परम दुर्लभ भगवान्‌का दर्शन किया; साथ ही सब प्रकारके स्वादसे परिपूर्ण जो अन्न आदिका प्रसाद मिला, उसको भी खाया। उसके खाते ही भगवान्‌की कृपासे हम सब लोग चार भुजाधारी हो गये। साधुश्रेष्ठ! तुम भी जाकर भगवान्‌का दर्शन करो, वहाँ अन्नका प्रसाद ग्रहण करके तुम भी चतुर्भुज हो जाओगे। विप्रवर! तुमने हमलोगोंसे जो बात पूछी और जिसको कहनेके लिये हमें आज्ञा दी थी, वह सब वृत्तान्त हमलोगोंने कह सुनाया।



तीर्थयात्राकी विधि, राजा रत्नग्रीवकी यात्रा तथा गण्डकी नदी एवं शालग्रामशिलाकी महिमाके प्रसंगमें एक पुल्कसकी कथा

ब्राह्मण कहते हैं—राजन्! भीलोंके ये अद्भुत वचन सुनकर मुझे बड़ा आश्र्य हुआ, साथ ही मैं बहुत प्रसन्न भी हुआ। पहले गङ्गा-सागर-संगममें स्नान करके मैंने अपने शरीरको पवित्र किया। फिर मणियों और माणिक्योंसे चित्रित नीलाचलके शिखरपर चढ़ गया। महाराज! वहाँ जाकर मैंने देवता आदिसे वन्दित भगवान्‌का दर्शन किया और उन्हें प्रणाम करके कृतार्थ हो गया। भगवान्‌का प्रसाद ग्रहण करनेसे मुझे शङ्ख, चक्र आदि चिह्नोंसे सुशोभित चतुर्भुज स्वरूपकी प्राप्ति हुई। पुरुषोत्तमके दर्शनसे पुनः मुझको गर्भमें नहीं प्रवेश करना पड़ेगा। राजन्! तुम भी शीघ्र ही नीलाचलको जाओ और गर्भवासके दुःखसे छूटकर अपने आत्माको कृतार्थ करो।

उन परम बुद्धिमान् श्रेष्ठ ब्राह्मणके वचन सुनकर राजा रत्नग्रीवका सारा शरीर पुल्कित हो गया और उन्होंने मुनिसे तीर्थयात्राकी विधि पूछी।

तब ब्राह्मणने कहा—राजन्! तीर्थयात्राकी उत्तम विधिका वर्णन आरम्भ करता हूँ सुनो; इससे देव-दानववन्दित भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। मनुष्यके

शरीरमें झूर्णियाँ पड़ गयी हों, सिरके बाल पक गये हों अथवा वह अभी नौजवान हो, आयी हुई मौतको कोई नहीं टाल सकता; ऐसा समझकर भगवान्‌की शरणमें जाना चाहिये।* भगवान्‌के कीर्तन, श्रवण-वन्दन तथा पूजनमें ही अपना मन लगाना चाहिये। खी, पुत्रादि, अन्य संसारी वस्तुओंमें नहीं, यह सारा प्रपञ्च नाशवान्, क्षणभर रहनेवाला तथा अत्यन्त दुःख देनेवाला है, परन्तु भगवान् जन्म, मृत्यु और जरा—तीनों ही अवस्थाओंसे परे हैं, वे भक्ति-देवीके प्राणवल्लभ और अच्युत (अविनाशी) हैं—ऐसा विचारकर भगवान्‌का भजन करना उचित है। मनुष्य काम, क्रोध, भय, द्वेष, लोभ और दम्भसे अथवा जिस किसी प्रकारसे भी यदि भगवान्‌का भजन करे तो उसे दुःख नहीं भोगना पड़ता। भगवान्‌का ज्ञान होता है पापरहित साधुसंग करनेसे; साधु वे ही हैं जिनकी कृपासे मनुष्य संसारके दुःखसे छूटकरा पा जाते हैं। महाराज! काम और लोभसे रहित तथा वीतराग साधु पुरुष जिस विषयका उपदेश देते हैं, वह संसार-बन्धनकी निवृत्ति करनेवाला होता है।† तीर्थोंमें श्रीरामचन्द्रजीके भजनमें

* वलीपलितदेहो वा यौवनेनान्वितोऽपि वा। ज्ञात्वा मृत्युनिस्तीर्यं हरि शरणमात्रजेत्॥ (१९। १०)

† स हरिज्ञायते साधुसंगमात् पापवर्जितात्। येषां कृपातः पुरुषा भवन्त्प्रसुखवर्जिताः॥

‡ ते साधवः शान्तरागाः कामलोभविवर्जिताः। ब्रुवन्ति यन्महाराज तत्संसारनिवर्तकम्॥ (१९। १४-१५)

लगे हुए साधु पुरुष मिलते हैं, जिनका दर्शन मनुष्योंकी पापराशिको भस्म करनेके लिये अग्रिका काम देता है; इसलिये संसार-बन्धनसे डरे हुए मनुष्योंको पवित्र जलवाले तीर्थोंमें, जो सदा साधु-महात्माओंके सहवाससे सुशोभित रहते हैं, अवश्य जाना चाहिये।

नृपश्रेष्ठ ! यदि तीर्थोंका विधिपूर्वक दर्शन किया जाय तो वे पापका नाश कर देते हैं, अब तीर्थसेवनकी विधिका श्रवण करो। पहले स्त्री, पुत्रादि कुटुम्बको मिथ्या समझकर उसकी ओरसे अपने मनमें वैराग्य उत्पन्न करे और मन-ही-मन भगवान्का स्मरण करता रहे। तदनन्तर 'राम-राम' की रट लगाते हुए तीर्थयात्रा आरम्भ करे, एक कोस जानेके पश्चात् वहाँ तीर्थ (पवित्र जलाशय) आदिमें स्नान करके क्षौर करा डाले। यात्राकी विधि जानेवाले पुरुषके लिये ऐसा करना नितान्त अवश्यक है। तीर्थोंकी ओर जाते हुए मनुष्योंके पाप उसके बालोंपर ही स्थित रहते हैं, अतः उनका मुण्डन अवश्य करावे। उसके बाद बिना गाँठका डंडा, कमण्डलु और मृगचर्म धारण करे तथा लोभका त्याग करके तीर्थोंपर्योगी वेष बना ले। विधिपूर्वक यात्रा करनेवाले मनुष्योंको विशेषरूपसे फलकी प्राप्ति होती है, इसलिये पूर्ण प्रयत्न करके तीर्थयात्राकी विधिका पालन करे। जिसके दोनों हाथ, दोनों पैर तथा मन अपने वशमें होते हैं तथा जिसके भीतर विद्या, तपस्या और कीर्ति रहती है, वही तीर्थके वास्तविक फलका भागी होता है।*

* 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण भक्तवत्सल गोपते। शरण्य भगवन् विष्णो मां पाहि बहुसंसृतेः'† (१९। २५)

जिह्वासे इस मन्त्रका पाठ तथा मनसे भगवान्का स्मरण करते हुए पैदल ही तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये; तभी वह महान् अश्युद्यका साधक होता है। जो मनुष्य सवारीसे यात्रा करता है उसका फल सवारी ढोनेवाले प्राणीके साथ बराबर-बराबर बैट जाता है। जूता पहनकर जानेवालेको चौथाई फल मिलता है और बैलगाड़ीपर

जानेवाले पुरुषको गोहत्या आदिका पाप लगता है। जो अनिच्छासे भी तीर्थयात्रा करता है, उसे उसका आधा फल मिल जाता है तथा पापक्षय भी होता ही है; किन्तु विधिके साथ तीर्थदर्शन करनेसे विशेष फलकी प्राप्ति होती है [यह ऊपर बताया जा चुका है]। इस प्रकार मैंने थोड़ेहीमें यह तीर्थकी विधि बतायी है, इसका विस्तार नहीं किया है। इस विधिका आश्रय लेकर तुम पुरुषोत्तमका दर्शन करनेके लिये जाओ। महाराज ! भगवान् प्रसन्न होकर तुम्हें अपनी भक्ति प्रदान करेंगे, जिससे एक ही क्षणमें तुम्हारे संसार-बन्धनका नाश हो जायगा। नरश्रेष्ठ ! तीर्थयात्राकी यह विधि सम्पूर्ण पातकोंका नाश करनेवाली है, जो इसे सुनता है वह अपने सारे भयङ्कर पापोंसे छुटकारा पा जाता है।

सुमति कहते हैं—सुमित्रानन्दन ! ब्राह्मणकी यह बात सुनकर राजा रत्नग्रीवने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। उस समय पुरुषोत्तमतीर्थके दर्शनकी उत्कण्ठासे उनका चित्त विहङ्ग हो रहा था। राजाके मन्त्री मन्त्रज्ञोंमें श्रेष्ठ और अच्छे स्वभावके थे। राजाने समस्त पुरवासियोंको तीर्थयात्राकी इच्छासे साथ ले जानेका विचार करते हुए अपने मन्त्रीको आज्ञा दी—‘अमात्य ! तुम नगरके सब लोगोंको मेरा यह आदेश सुना दो कि सबको भगवान् पुरुषोत्तमके चरणारविन्दोंका दर्शन करनेके लिये चलना है। मेरे नगरमें जो श्रेष्ठ मनुष्य निवास करते हैं तथा जो लोग मेरी आज्ञाका पालन करनेवाले हैं वे सब मेरे साथ ही यहाँसे निकलें। उन पुत्रोंसे तथा सदा अनीतिमें लगे रहनेवाले बशु-बान्धवोंसे क्या लेना है, जिन्होंने आजतक अपने नेत्रोंसे पुण्यदायक पुरुषोत्तमका दर्शन नहीं किया ? जिनके पुत्र और पौत्र भगवान्की शरणमें नहीं गये, उनकी वे सन्तानें सूक्ष्मोंके झुंडके समान हैं। मेरी प्रजाओ ! जो भगवान् अपना नाम लेनेमात्रसे सबको पवित्र कर देनेकी शक्ति रखते हैं, उनके चरणोंमें शीघ्र मस्तक झुकाओ।’

* यस्य हस्तौ च पादौ च मनस्तैव सुसंहितम्। विद्यातपश्च कीर्तिश स तीर्थफलमश्रुते॥ (१९। २४)

† हरे कृष्ण ! भक्तवत्सल गोपाल ! सबको शरण देनेवाले भगवन् विष्णो ! मुझे अनेकों जन्मोंके चक्रमें पड़नेसे बचाइये।

राजाका यह मनोहर वचन भगवान्‌के गुणोंसे गुँथा हुआ था। इसे सुनकर सत्यनामवाले प्रधान मन्त्रीको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने हाथीपर बैठकर ढिंढोरा पीटते हुए सारे नगरमें घोषणा करा दी। तीर्थयात्राकी इच्छासे महाराजने जो आज्ञा दी थी उसके अनुसार सब प्रजाको यह आदेश दिया—‘पुरवासियो! आप सब लोग महाराजके साथ तुरंत नीलगिरिको चलें और सब पापोंके हरनेवाले पुरुषोत्तम भगवान्‌का दर्शन करें। ऐसा करके आपलोग समस्त संसार-समुद्रको अपने लिये गायकी खुरके समान बना लें। साथ ही सब लोग अपने-अपने शरीरको शङ्ख, चक्र आदि चिह्नोंसे विभूषित करें।’ इस प्रकार प्रधान सचिवने, जो श्रीघुनाथजीके चरणोंका ध्यान करनेके कारण अपने शोक-सन्तापको दूर कर चुके थे, राजा रत्नग्रीवके अद्भुत आदेशकी सर्वत्र घोषणा करा दी। उसे सुनकर सारी प्रजा आनन्द-रसमें निमग्र हो गयी। सबने पुरुषोत्तमका दर्शन करके अपना उद्धार करनेका निश्चय किया। पुरवासी ब्राह्मण सुन्दर वेष धारण करके राजाको आशीर्वाद और वरदान देते हुए शिष्योंके साथ नगरसे बाहर निकले, क्षत्रियवीर धनुष धारण करके चले और वैश्य नाना प्रकारकी उपयोगी वस्तुएँ लिये आगे बढ़े। शूद्र भी संसार-सागरसे उद्धार पानेकी बात सोचकर पुलकित हो रहे थे। धोबी, चमार, शहद बेचनेवाले, किरात, मकान बनानेवाले कारीगर, दर्जी, पान बेचनेवाले, तबला बजानेवाले, नाटकसे जीविका निभानेवाले नट आदि, तेली, बजाज, पुराणकी कथा सुनानेवाले सूत, मागध तथा वन्दी—ये सभी हर्षमें भरकर राजधानीसे बाहर निकले। वैद्य-वृत्तिसे जीविका चलानेवाले चिकित्सक तथा भोजन बनाने और स्वादिष्ट रसोंका ज्ञान रखनेवाले रसोइये भी महाराजकी प्रशंसा करते हुए पुरीसे बाहर निकले। राजा रत्नग्रीवने भी प्रातःकाल सन्ध्योपासन आदि करके शुद्ध अन्तःकरण-वाले ब्राह्मण देवताको, जो तपस्वियोंमें श्रेष्ठ थे, अपने पास बुलाया और उनकी आज्ञा लेकर वे नगरसे बाहर निकले। आगे-आगे राजा थे और पीछे-पीछे पुरवासी मनुष्य। उस समय वे ताराओंसे घिरे हुए

चन्द्रमाकी भाँति शोभा पा रहे थे। एक कोस जानेके बाद उन्होंने विधिके अनुसार मुण्डन कराया और दण्ड, कमण्डलु तथा सुन्दर मृग-चर्म धारण किये। इस प्रकार वे महायशस्वी राजा उत्तम वेषसे युक्त होकर भगवान्‌के ध्यानमें तत्पर हो गये और उन्होंने अपने मनको काम-क्रोधादि दोषोंसे रहित बना लिया। उस समय भिन्न-भिन्न बाजोंको बजानेवाले लोग बारंबार दुन्दुभि, भेरी, आनक, पणव, शङ्ख और वीणा आदिकी ध्वनि फैला रहे थे। सभी यात्री यही कहते हुए आगे बढ़ रहे थे कि ‘समस्त दुःखोंको दूर करनेवाले देवेश्वर! आपकी जय हो, पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध परमेश्वर! मुझे अपने स्वरूपका दर्शन कराइये।’

तदनन्तर जब महाराज रत्नग्रीव सब लोगोंके साथ यात्राके लिये चल दिये तो मार्गमें उन्हें अनेकों स्थानोंपर महान् सौभाग्यशाली वैष्णवोंके द्वारा किया जानेवाला श्रीकृष्णका कीर्तन सुनायी पड़ा। जगह-जगह गोविन्दका गुणगान हो रहा था—‘भक्तोंको शरण देनेवाले पुरुषोत्तम! लक्ष्मीपते! आपकी जय हो।’ काञ्चीनरेश यात्राके पथमें अनेकों अभ्युदयकारी तीर्थोंका सेवन और दर्शन करते तथा तपस्वी ब्राह्मणके मुखसे उनकी महिमा भी सुनते जाते थे। भगवान् विष्णुसे सम्बन्ध रखनेवाली अनेकों प्रकारकी विचित्र बातें सुननेसे राजाका भलीभाँति मनोरञ्जन होता था और वे मार्गके बीच-बीचमें अपने गायकोंद्वारा महाविष्णुकी महिमाका गान कराया करते थे। महाराज रत्नग्रीव बड़े बुद्धिमान् और जितेन्द्रिय थे, वे स्थान-स्थानपर दीनों, अंधों, दुःखियों तथा पङ्कुओंको उनकी इच्छाके अनुकूल दान देते रहते थे। साथ आये हुए सब लोगोंके सहित अनेकों तीर्थोंमें स्नान करके वे अपनेको निर्मल एवं भव्य बना रहे थे और भगवान्‌का ध्यान करते हुए आगे बढ़ रहे थे। जाते-जाते महाराजने अपने सामने एक ऐसी नदी देखी जो सब पापोंको दूर करनेवाली थी। उसके भीतरके पत्थर (शालग्राम) चक्रके चिह्नसे अङ्कित थे। वह मुनियोंके हृदयकी भाँति स्वच्छ दिखायी देती थी। उस नदीके किनारे अनेकों महर्षियोंके समुदाय कई पद्मिनीयोंमें बैठकर उसे

सुशोभित कर रहे थे। उस सरिताका दर्शन करके महाराजने धर्मके ज्ञाता तपस्वी ब्राह्मणसे उसका परिचय पूछा; क्योंकि वे अनेकों तीर्थोंकी विशेष महिमाके ज्ञानमें बढ़े-चढ़े थे। राजाने प्रश्न किया—‘स्वामिन्! महर्षि-समुदायके द्वारा सेवित यह पवित्र नदी कौन है? जो अपने दर्शनसे मेरे चित्तमें अत्यन्त आहाद उत्पन्न कर रही है।’ बुद्धिमान् महाराजका यह बचन सुनकर विद्वान् ब्राह्मणने उस तीर्थका अद्भुत माहात्म्य बतलाना आरम्भ किया।

ब्राह्मणने कहा—राजन्! यह गण्डकी नदी है [इसे शालग्रामी और नारायणी भी कहते हैं], देवता और असुर सभी इसका सेवन करते हैं। इसके पावन जलकी उत्ताल तरङ्गे राशि-राशि पातकोंको भी भस्म कर डालती है। यह अपने दर्शनसे मानसिक, स्पर्शसे कर्मजनित तथा जलका पान करनेसे वाणीद्वारा होनेवाले पापोंके समुदायको दग्ध करती है। पूर्वकालमें प्रजापति ब्रह्माजीने सब प्रजाको विशेष पापमें लिप्त देखकर अपने गण्डस्थल (गाल) के जलकी बूँदोंसे इस पापनाशिनी नदीको उत्पन्न किया। जो उत्तम लहरोंसे सुशोभित इस पुण्यसलिला नदीके जलका स्पर्श करते हैं, वे मनुष्य पापी हों तो भी पुनः माताके गर्भमें प्रवेश नहीं करते। इसके भीतरसे जो चक्रके चिह्नोंद्वारा अलङ्कृत पत्थर प्रकट होते हैं, वे साक्षात् भगवान्‌के ही विग्रह हैं—भगवान् ही उनके रूपमें प्रादुर्भूत होते हैं। जो मनुष्य प्रतिदिन चक्रके चिह्नसे युक्त शालग्रामशिलाका पूजन करता है वह फिर कभी माताके उदरमें प्रवेश नहीं करता। जो बुद्धिमान् श्रेष्ठ शालग्रामशिलाका पूजन करता है, उसको दम्प और लोभसे रहित एवं सदाचारी होना चाहिये। परायी ऋषी और पराये धनसे मुँह मोड़कर यत्पूर्वक चक्राङ्कित शालग्रामका पूजन करना चाहिये। द्वारकामें लिया हुआ चक्रका चिह्न और गण्डकी नदीसे उत्पन्न हुई शालग्रामकी शिला—ये दोनों मनुष्योंके सौ जन्मोंके पाप भी एक ही क्षणमें हर लेते हैं। हजारों पापोंका आचरण करनेवाला मनुष्य क्यों न हो, शालग्रामशिलाका चरणामृत पीकर तत्काल पवित्र हो

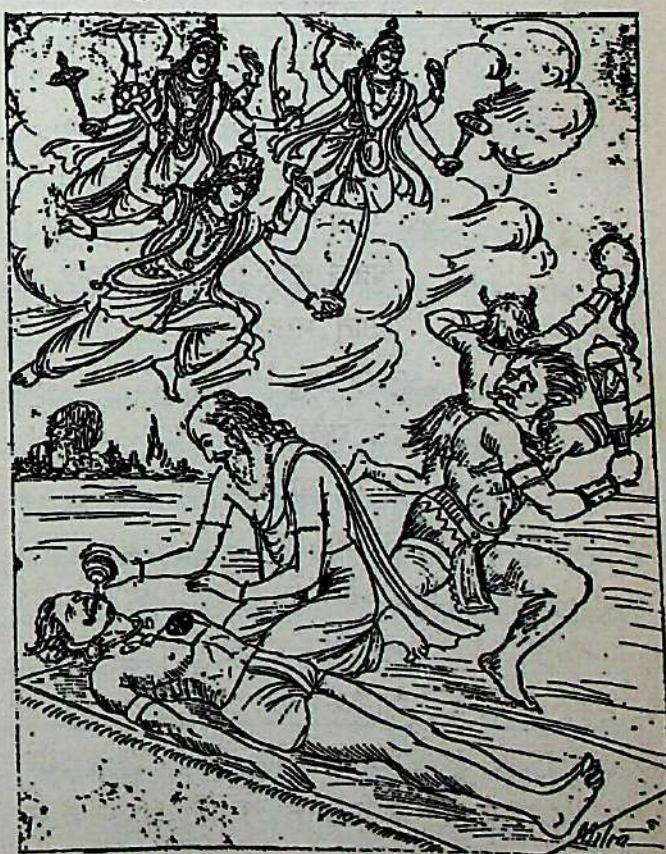
सकता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा वेदोक्त मार्गपर स्थित रहनेवाला शूद्र गृहस्थ भी शालग्रामकी पूजा करके मोक्ष प्राप्त कर सकता है। परन्तु ऋषीको कभी शालग्रामशिलाका पूजन नहीं करना चाहिये। विधवा हो या सुहागिन, यदि वह स्वर्गलोक एवं आत्मकल्याणकी इच्छा रखती है तो शालग्रामशिलाका स्पर्श न करे। यदि मोहवश उसका स्पर्श करती है तो अपने किये हुए पुण्य-समूहका त्याग करके तुरंत नरकमें पड़ती है। कोई कितना ही पापाचारी और ब्रह्महत्यारा क्यों न हो, शालग्रामशिलाको स्नान कराया हुआ जल (भगवान्‌का चरणामृत) पी लेनेपर परमगतिको प्राप्त होता है। भगवान्‌को निवेदित तुलसी, चन्दन, जल, शङ्ख, घण्टा, चक्र, शालग्रामशिला, ताम्रपात्र, श्रीविष्णुका नाम तथा उनका चरणामृत—ये सभी वस्तुएँ पावन हैं। उपर्युक्त नौ वस्तुओंके साथ भगवान्‌का चरणामृत पापराशिको दग्ध करनेवाला है। ऐसा सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थको जाननेवाले शान्तचित्त महर्षियोंका कथन है। राजन्! समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेसे तथा सब प्रकारके यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का पूजन करनेसे जो अद्भुत पुण्य होता है, वह भगवान्‌के चरणामृतकी एक-एक बूँदमें प्राप्त होता है।

[चार, छः, आठ आदि] समसंख्यामें शालग्राम-मूर्तियोंकी पूजा करनी चाहिये। परन्तु समसंख्यामें दो शालग्रामोंकी पूजा उचित नहीं है। इसी प्रकार विषमसंख्यामें भी शालग्राममूर्तियोंकी पूजा होती है, किन्तु विषममें तीन शालग्रामोंकी नहीं। द्वारकाका चक्र तथा गण्डकी नदीके शालग्राम—इन दोनोंका जहाँ समागम हो, वहाँ समुद्रगमिनी गङ्गाकी उपस्थिति मानी जाती है। यदि शालग्रामशिलाएँ रुखी हों तो वे पुरुषोंको आयु, लक्ष्मी और उत्तम कीर्तिसे वशित कर देती हैं; अतः जो चिकनी हों, जिनका रूप मनोहर हो, उन्हींका पूजन करना चाहिये। वे लक्ष्मी प्रदान करती हैं। पुरुषको आयुकी इच्छा हो या धनकी, यदि वह शालग्राम-शिलाका पूजन करता है तो उसकी ऐहलैकिक और पारलैकिक—सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। राजन्! जो मनुष्य बड़ा भाग्यवान् होता है, उसीके प्राणान्तके

समय जिह्वापर भगवान्‌का पवित्र नाम आता है और उसीकी छातीपर तथा आसपास शालग्रामशिला मौजूद रहती है। प्राणोंके निकलते समय अपने विश्वास या भावनामें ही यदि शालग्रामशिलाकी स्फुरणा हो जाय तो उस जीवकी निःसन्देह मुक्ति हो जाती है। पूर्वकालमें भगवान्‌ने बुद्धिमान् राजा अम्बरीषसे कहा था कि 'ब्राह्मण, संन्यासी तथा चिकनी शालग्रामशिला—ये तीन इस भूमप्डलपर मेरे स्वरूप हैं। पापियोंका पाप नाश करनेके लिये मैंने ही ये स्वरूप धारण किये हैं।' जो अपने किसी प्रिय व्यक्तिको शालग्रामकी पूजा करनेका आदेश देता है वह स्वयं तो कृतार्थ होता ही है, अपने पूर्वजोंको भी शीघ्र ही वैकुण्ठमें पहुँचा देता है।

इस विषयमें काम-क्रोधसे रहित वीतराग महर्षिगण एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दियों करते हैं। पूर्वकालकी बात है, धर्मशून्य मगधदेशमें एक पुलक्स-जातिका मनुष्य रहता था, जो लोगोंमें शबरके नामसे प्रसिद्ध था। सदा अनेकों जीव-जन्मुओंकी हत्या करना और दूसरोंका धन लूटना, यही उसका काम था। राग-द्वेष और काम-क्रोधादि दोष सर्वदा उसमें भेरे रहते थे। एक दिन वह व्याध समस्त प्राणियोंको भय पहुँचाता हुआ घूम रहा था, उसके मनपर मोह छाया हुआ था; इसलिये वह इस बातको नहीं जानता था कि उसका काल समीप आ पहुँचा है। यमराजके भयङ्कर दूत हाथोंमें मुद्रर और पाश लिये वहाँ पहुँचे। उनके ताँबे-जैसे लाल-लाल केश, बड़े-बड़े नख तथा लंबी-लंबी दाढ़े थीं। वे सभी काले-कलूटे दिखायी देते थे तथा हाथोंमें लोहेकी साँकलें लिये हुए थे। उन्हें देखते ही प्राणियोंको मूर्छा आ जाती थी। वहाँ पहुँचकर वे कहने लगे—'सम्पूर्ण जीवोंको भय पहुँचानेवाले इस पापीको बाँध लो।' तदनन्तर सब यमदूत उसे लोहेके पाशसे बाँधकर बोले—'दुष्ट ! दुरात्मा ! तूने कभी मनसे भी शुभकर्म नहीं किये; इसलिये हम तुझे रैरव-नरकमें डालेंगे। जन्मसे लेकर अबतक तूने कभी भगवान्‌की सेवा नहीं की। समस्त पापोंको दूर करनेवाले श्रीनारायणदेवका कभी स्मरण नहीं किया; अतः धर्मराजकी आज्ञासे हम तुझे

बारंबार पीटते हुए लोहशङ्कु, कुम्भीपाक अथवा अतिरैरव नरकमें ले जायेगे।' ऐसा कहकर यमदूत ज्यों ही उसे ले जानेको उद्यत हुए त्यों ही महाविष्णुके चरणकमलोंकी सेवा करनेवाले एक भक्त महात्मा वहाँ आ पहुँचे। उन वैष्णव महात्माने देखा कि यमदूत पाश, मुद्रर और दण्ड आदि कठोर आयुध धारण किये हुए हैं तथा पुलक्सको लोहेकी साँकलेंसे बाँधकर ले जानेको उद्यत हैं। भगवद्भक्त महात्मा बड़े दयालु थे। उस समय पुलक्सकी अवस्था देखकर उनके हृदयमें अत्यन्त करुणा भर आयी और उन्होंने मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया—'यह पुलक्स मेरे समीप रहकर अत्यन्त कठोर यातनाको प्राप्त न हो, इसलिये मैं अभी यमदूतोंसे इसको छुटकारा दिलाता हूँ।' ऐसा सोचकर वे कृपालु मुनीश्वर हाथमें शालग्रामशिला लेकर पुलक्सके निकट गये और भगवान् शालग्रामका पवित्र चरणामृत, जिसमें तुलसीदल भी मिला हुआ था, उसके मुखमें डाल दिया। फिर



उसके कानमें उन्होंने राम-नामका जप किया, मस्तकपर तुलसी रखी और छातीपर महाविष्णुकी शालग्रामशिला रखकर कहा—'यातना देनेवाले यमदूत यहाँसे चले

जायें। शालग्रामशिलाका स्पर्श इस पुल्कसके महान् पातकको भस्म कर डाले।' वैष्णव महात्माके इतना कहते ही भगवान् विष्णुके पार्षद, जिनका स्वरूप बड़ा अद्भुत था, उस पुल्कसके निकट आ पहुँचे; शालग्रामकी शिलाके स्पर्शसे उसके सारे पाप नष्ट हो गये थे। वे पार्षद पीताम्बर धारण किये शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित हो रहे थे। उन्होंने आते ही उस दुःसह लोहपाशसे पुल्कसको मुक्त कर दिया। उस महापापीको छुटकारा दिलानेके बाद वे यमदूतोंसे बोले—‘तुमलोग किसकी आज्ञाका पालन करनेवाले हो, जो इस प्रकार अधर्म कर रहे हो? यह पुल्कस तो वैष्णव है, इसने पूजनीय देह धारण कर रखा है, फिर किसलिये तुमने इसे बन्धनमें डाला था?’ उनकी बात सुनकर यमदूत बोले—‘यह पापी है, हमलोग धर्मराजकी आज्ञासे इसे ले जानेको उद्यत हुए हैं, इसने कभी मनसे भी किसी प्राणीका उपकार नहीं किया है। इसने जीवहिंसा जैसे बड़े-बड़े पाप किये हैं। तीर्थ-यात्रियोंको तो इसने अनेकों बार लूटा है। यह सदा परायी स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट करनेमें ही लगा रहता था। सभी तरहके पाप इसने किये हैं; अतः हमलोग इस पापीको ले जानेके उद्देश्यसे ही यहाँ उपस्थित हुए हैं। आपलोगोंने सहसा आकर क्यों इसे बन्धनसे मुक्त कर दिया?’

विष्णुदूत बोले—यमदूतो! ब्रह्महत्या आदिका पाप हो या करोड़ों प्राणियोंके वध करनेका, शालग्राम-शिलाका स्पर्श सबको क्षणभरमें जला डालता है। जिसके कानोंमें अकस्मात् भी रामनाम पड़ जाता है, उसके सारे पापोंको वह उसी प्रकार भस्म कर डालता है,

जैसे आगकी चिनगारी रुईको।* जिसके मस्तकपर तुलसी, छातीपर शालग्रामकी मनोहर शिला तथा मुख या कानमें रामनाम हो वह तत्काल मुक्त हो जाता है। इस पुल्कसके मस्तकपर भी पहलेसे ही तुलसी रखी हुई है, इसकी छातीपर शालग्रामकी शिला है तथा अभी तुरंत ही इसको श्रीरामका नाम भी सुनाया गया है; अतः इसके पापोंका समूह दग्ध हो गया और अब इसका शरीर पवित्र हो चुका है। तुमलोगोंको शालग्रामशिलाकी महिमाका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं है; यह दर्शन, स्पर्श अथवा पूजन करनेपर तत्काल ही सारे पापोंको हर लेती है।

इतना कहकर भगवान् विष्णुके पार्षद चुप हो गये। यमदूतोंने लौटकर यह अद्भुत घटना धर्मराजसे कह सुनायी तथा श्रीरघुनाथजीके भजनमें लगे रहनेवाले वे वैष्णव महात्मा भी यह सोचकर कि ‘यह यमराजके पाशसे मुक्त हो गया और अब परमपदको प्राप्त होगा’ बहुत प्रसन्न हुए। इसी समय देवलोकसे बड़ा ही मनोहर, अत्यन्त अद्भुत और उज्ज्वल विमान आया तथा वह पुल्कस उसपर आरूढ हो बड़े-बड़े पुण्यवानोंद्वारा सेवित स्वर्गलोकको चला गया। वहाँ प्रचुर भोगोंका उपभोग करके वह फिर इस पृथ्वीपर आया और काशीपुरीके भीतर एक शुद्ध ब्राह्मणवंशमें जन्म लेकर उसने विश्वनाथजीकी आराधना की एवं अन्तमें परमपदको प्राप्त कर लिया। वह पुल्कस पापी था तो भी साधु-संगके प्रभावसे शालग्रामशिलाका स्पर्श पाकर यमदूतोंकी भयङ्कर पीड़ासे मुक्त हो परमपदको पा गया। राजन्! यह मैंने तुम्हें शालग्रामशिलाके पूजनकी महिमा बतलायी है, इसका श्रवण करके मनुष्य सब पापोंसे हृष्ट जाता और भोग तथा मोक्षको प्राप्त होता है।



* रमेति नाम यच्छ्रेत्रे विश्रम्भादागतं यदि। करोति पापसंदाहं तूलं वह्निकणो यथा ॥ (२०।८०)

राजा रत्नग्रीवका नीलपर्वतपर भगवान्का दर्शन करके रानी आदिके साथ वैकुण्ठको जाना तथा शत्रुघ्नका नीलपर्वतपर पहुँचना

सुमति कहते हैं—सुमित्रानन्दन ! गण्डकी है। वे भक्तवत्सल नाम धारण करते हैं; अतः नदीका यह अनुपम माहात्म्य सुनकर राजा रत्नग्रीवने अपनेको कृतार्थ माना। उन्होंने उस तीर्थमें स्नान करके अपने समस्त पितरोंका तर्पण किया। इससे उनको बड़ा हर्ष हुआ। फिर शालग्रामशिलाकी पूजाके उद्देश्यसे उन्होंने गण्डकी नदीसे चौबीस शिलाएँ ग्रहण कीं और चन्दन आदि उपचार चढ़ाकर बड़े प्रेमसे उनकी पूजा की। तत्पश्चात् वहाँ दीनों और अंधोंको विशेष दान देकर राजाने पुरुषोत्तममन्दिरको जानेके लिये प्रस्थान किया। इस प्रकार क्रमशः यात्रा करते हुए वे उस तीर्थमें पहुँचे, जहाँ गङ्गा और समुद्रका सङ्गम हुआ है। वहाँ जाकर उन्होंने ब्राह्मणोंसे प्रसन्नतापूर्वक पूछा—‘स्वामिन् ! बताइये, नीलाचल यहाँसे कितनी दूर है ? जहाँ साक्षात् भगवान् पुरुषोत्तम निवास करते हैं तथा देवता और असुर भी जिनके सामने मस्तक नवाते हैं ?’

उस समय तपस्वी ब्राह्मणको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने राजासे बड़े आदरके साथ कहा—‘राजन् ! नीलपर्वतका विश्वन्दित स्थान है तो यही; किन्तु न जाने वह हमें दिखायी क्यों नहीं देता।’ वे बारंबार इस बातको दुहराने लगे कि ‘नीलाचलका वह स्थान, जो महान् पुण्यफल प्रदान करनेवाला है तथा जहाँ भगवान् पुरुषोत्तमका निवास है, यही है। उसका दर्शन क्यों नहीं होता ? यह बात समझमें नहीं आती। इसी स्थानपर मैंने स्नान किया था, यहीं मुझे वे भील दिखायी दिये थे और इसी मार्गसे मैं पर्वतके ऊपर चढ़ा था।’ यह बात सुनकर राजाके मनमें बड़ी व्यथा हुई, वे कहने लगे—‘विप्रवर ! मुझे पुरुषोत्तमका दर्शन कैसे होगा ? तथा वह नीलपर्वत कैसे दिखायी देगा ? मुझे इसका कोई उपाय बताइये।’ तब तपस्वी ब्राह्मणने विस्मित होकर कहा—‘राजन् ! हमलोग गङ्गासागर-सङ्गममें स्नान करके यहाँ तबतक ठहरे रहें जबतक कि नीलाचलका दर्शन न हो जाय। भगवान् पुरुषोत्तम पापहारी कहलाते

हैं। वे भक्तवत्सल नाम धारण करते हैं; अतः हमलोगोंपर शीघ्र ही कृपा करेंगे। वे देवाधिदेवोंके भी शिरोमणि हैं, अपने भक्तोंका कभी परित्याग नहीं करते। अबतक उन्होंने अनेकों भक्तोंकी रक्षा की है, इसलिये महामते ! तुम उन्हींका गुणगान करो।’ ब्राह्मणकी बात सुनकर राजाने व्यथित चित्तसे गङ्गा-सागर-सङ्गममें स्नान किया। इसके बाद उन्होंने उपवासका ब्रत लिया। ‘जब भगवान् पुरुषोत्तम दर्शन देनेकी कृपा करेंगे तभी उनकी पूजा करके भोजन करूँगा, अन्यथा निराहार ही रहूँगा।’ ऐसा नियम करके वे गङ्गासागरके तटपर बैठ गये और भगवान्का गुणगान करते हुए उपवासब्रतका पालन करने लगे।

राजा बोले—प्रभो ! आप दीनोंपर दया करनेवाले हैं; आपकी जय हो। भक्तोंका दुःख दूर करनेवाले पुरुषोत्तम ! आपका नाम मङ्गलमय है, आपकी जय हो। भक्तजनोंकी पीड़ाका नाश करनेके लिये ही आपने सगुण विग्रह धारण किया है, आप दुष्टोंका विनाश करनेवाले हैं; आपकी जय हो ! जय हो !! आपके भक्त प्रह्लादको उसके पिता दैत्यराजने बड़ी व्यथा पहुँचायी—शूलीपर चढ़ाया, फाँसी दी, पानीमें डुबोया, आगमें जलाया और पर्वतसे नीचे गिराया; किन्तु आपने नृसिंहरूप धारण करके प्रह्लादको तत्काल संकटसे बचा लिया; उसका पिता देखता ही रह गया। मतवाले गजराजका पैर ग्राहके मुखमें पड़ा था और वह अत्यन्त दुःखी हो रहा था; उसकी दशा देख आपके हृदयमें करुणा भर आयी और आप उसे बचानेके लिये शीघ्र ही गरुड़पर सवार हुए; किन्तु आगे चलकर आपने पक्षिराज गरुड़को भी छोड़ दिया और हाथमें चक्र लिये बड़े वेगसे दौड़े। उस समय अधिक वेगके कारण आपकी बनमाला जोर-जोरसे हिल रही थी और पीताम्बरका छोर आकाशमें फहरा रहा था। आपने तत्काल पहुँचकर गजराजको ग्राहके चंगुलसे छुड़ाया

और ग्राहको मौतके घाट उतार दिया। जहाँ-जहाँ आपके सेवकोंपर सङ्कट आता है वहीं-वहीं आप देह धारण करके अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं। आपकी लीलाएँ मनको मोहने तथा पापको हर लेनेवाली हैं। उन्हींके द्वारा आप भक्तोंका पालन करते हैं। भक्तवल्लभ ! आप दीनोंके नाथ हैं, देवताओंके मुकुटमें जड़े हुए हरी आपके चरणोंका स्पर्श करते हैं। प्रभो ! आप करोड़ों पापोंको भस्म करनेवाले हैं। मुझे अपने चरण-कमलोंका दर्शन दीजिये। यदि मैं पापी हूँ तो भी आपके मानसमें—आपको प्रिय लगनेवाले इस पुरुषोत्तमक्षेत्रमें आया हूँ; अतः अब मुझे दर्शन दीजिये। देव-दानव-वन्दित परमेश्वर ! हम आपके ही हैं। आप पाप-राशिका नाश करनेवाले हैं। आपकी यह महिमा मुझे भूली नहीं है। सबके दुःखोंको दूर करनेवाले दयामय ! जो लोग आपके पवित्र नामोंका कीर्तन करते हैं, वे पाप-समुद्रसे तर जाते हैं। यदि संतोंके मुखसे सुनी हुई मेरी यह बात सची है तो आप मुझे प्राप्त होइये—मुझे दर्शन देकर कृतार्थ कीजिये।

सुमति कहते हैं—इस प्रकार राजा रत्नग्रीव रात-दिन भगवान्का गुणगान करते रहे। उन्होंने क्षणभरके लिये भी न तो कभी विश्राम किया, न नींद ली और न कोई सुख ही उठाया। वे चलते-फिरते, ठहरते, गीत गाते तथा वार्तालाप करते समय भी निरन्तर यही कहते कि—‘पुरुषोत्तम ! कृपानाथ ! आप मुझे अपने खरूपकी झाँकी कराइये।’ इस तरह गङ्गासागरके तटपर रहते हुए राजाके पाँच दिन व्यतीत हो गये। तब दयासागर श्रीगोपालने कृपापूर्वक विचार किया कि ‘यह राजा मेरी महिमाका गान करनेके कारण सर्वथा पापरहित हो गया है; अतः अब इसे मेरे देव-दानव-वन्दित प्रियतम विग्रहका दर्शन होना चाहिये।’ ऐसा सोचकर भगवान्का हृदय करुणासे भर गया और वे संन्यासीका वेष धारण करके राजाके समीप गये। तपस्वी ब्राह्मणने देखा, भगवान् अपने भक्तपर कृपा करनेके लिये हाथमें त्रिदण्ड ले यतिका वेष बनाये यहाँ उपस्थित हुए हैं। नृपश्रेष्ठ रत्नग्रीवने ‘ॐ नमो नारायणाय’ कहकर

संन्यासी बाबाको नमस्कार किया और अर्ध्य, पाद्य तथा आसन आदि निवेदन करके उनका विधिवत् पूजन किया। इसके बाद वे बोले—‘महात्मन् ! आज मैं सौभाग्यकी कोई तुलना नहीं है; क्योंकि आज आप-जैसे साधु पुरुषने कृपापूर्वक मुझे दर्शन दिया है। मैं समझता हूँ, इसके बाद अब भगवान् गोविन्द भी मुझे अपना दर्शन देंगे।’ यह सुनकर संन्यासी बाबाने कहा—‘राजन् ! मेरी बात सुनो, मैं अपनी ज्ञानशक्तिसे भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालकी बात जानता हूँ। इसलिये जो कुछ भी कहूँ, उसे एकाग्रचित्त होकर सुनना, कल दोपहरके समय भगवान् तुम्हें दर्शन देंगे, वही दर्शन, जो ब्रह्माजीके लिये भी दुर्लभ है, तुम्हें सुलभ होगा। तुम अपने पाँच आत्मीय-जनोंके साथ परमपदको प्राप्त होओगे। तुम, तुम्हारे मन्त्री, तुम्हारी रानी, ये तपस्वी ब्राह्मण तथा तुम्हारे नगरमें रहनेवाला करम्ब नामका साधु, जो जातिका तन्तुवाय—कपड़ा बुननेवाला जुलाहा है—इन सबके साथ तुम पर्वतश्रेष्ठ नीलगिरिपर जा सकोगे। वह पर्वत देवताओंद्वारा पूजित तथा ब्रह्मा और इन्द्रद्वारा अभिवन्दित है।’ यह कहकर संन्यासी बाबा अन्तर्धान हो गये, अब वे कहीं दिखायी नहीं देते थे। उनकी बात सुनकर राजाको बड़ा हर्ष हुआ। साथ ही विस्मय भी। उन्होंने तपस्वी ब्राह्मणसे पूछा—स्वामिन् ! वे संन्यासी कौन थे, जो यहाँ आकर मुझसे बात कर गये हैं, इस समय वे फिर दिखायी नहीं देते, कहाँ चले गये ? उन्होंने मेरे चित्तको बड़ा हर्ष प्रदान किया है।’

तपस्वी ब्राह्मणने कहा—राजन् ! वे समस्त पापोंका नाश करनेवाले भगवान् पुरुषोत्तम ही थे, जो तुम्हारे महान् प्रेमसे आकृष्ट होकर यहाँ आये थे। कल दोपहरके समय महान् पर्वत नीलगिरि तुम्हारे सामने प्रकट होगा, तुम उसपर चढ़कर भगवान्का दर्शन करके कृतार्थ हो जाओगे।

ब्राह्मणका यह वचन अमृत-राशिके समान सुखदायी प्रतीत हुआ; उसने राजाके हृदयकी सारी चिन्ताओंका नाश कर दिया। उस समय काञ्ची-नरेशको

जो आनन्द मिला, उसका ब्रह्माजी भी अनुभव नहीं कर सकते। दुन्दुभी बजने लगी तथा वीणा, पणव और गोमुख आदि बाजे भी बज उठे। महाराज रत्नग्रीवके मनमें उस समय बड़ा उल्लास छा गया था। वे प्रतिक्षण भगवान्‌का गुणगान करते हुए, नाचते, खड़े होते, हँसते, बोलते और बात करते थे। उन्हें सब सन्तापोंका नाश करनेवाले धनीभूत आनन्दकी प्राप्ति हुई थी। तदनन्तर सारा दिन भगवान्‌के कीर्तन और स्मरणमें बिताकर राजा रत्नग्रीव रातमें गङ्गाजीके तटपर, जो महान् फल प्रदान करनेवाला है, सो रहे। सपनेमें उन्होंने देखा, 'मेरा स्वरूप चतुर्भुज हो गया है। मैं शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और शार्ङ्ग-धनुष धारण किये हुए हूँ तथा भगवान् पुरुषोत्तमके सामने रुद्र आदि देवताओंके साथ नृत्य कर रहा हूँ।'



उन्हें यह भी दिखायी दिया कि शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म आदि आयुध तथा विश्वकूसेन आदि पार्षदगण परम सुन्दर दिव्य स्वरूपसे प्रकट हो सदा श्रीलक्ष्मीपतिकी उपासनामें संलग्न रहते हैं। यह सब देखकर उन्हें अद्भुत हर्ष और आश्चर्य हुआ। अपनी मनोवाञ्छित कामना पूर्ण करनेवाले भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन पाकर

महाबुद्धिमान् राजाने अपनेको उनका कृपापात्र माना। स्वप्रमें ये सारी बातें देखकर जब वे प्रातःकाल नींदसे उठे तो तपस्वी ब्राह्मणको बुलाकर उन्होंने अपने देखे हुए सपनेका सारा समाचार उनसे कह सुनाया। उसे सुनकर बुद्धिमान् ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ, उन्होंने कहा—'राजन् ! तुमने जिन भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन किया है, वे तुम्हें अपना शङ्ख, चक्र आदि चिह्नोंसे विभूषित स्वरूप प्रदान करना चाहते हैं।' यह सुनकर महामना रत्नग्रीवने दीन-दुःखियोंको उनकी इच्छाके अनुसार दान दिलाया। फिर गङ्गासागर-सङ्गममें स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण किया तथा भगवान्‌के गुणोंका गान करते हुए वे उनके दर्शनकी प्रतीक्षा करने लगे। तदनन्तर, जब दोपहरका समय हुआ तो आकाशमें बारंबार दुन्दुभियाँ बजने लगीं। देवताओंके हाथसे बजाये जानेके कारण उनसे बड़े जोरकी आवाज होती थी। सहसा राजाके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा हुई। देवता कहने लगे—'नृपश्रेष्ठ ! तुम धन्य हो ! नीलाचलका प्रत्यक्ष दर्शन करो।' देवताओंकी कही हुई यह बात ज्यों ही राजाके कानोंमें पड़ी, ज्यों ही नीलगिरिके नामसे प्रसिद्ध वह महान् पर्वत उनकी आँखोंके समक्ष प्रकट हो गया। करोड़ों सूर्योंकी समान उसका प्रकाश छा रहा था। चारों ओरसे सोने और चाँदीके शिखर उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। राजा सोचने लगे—क्या यह अग्रि प्रज्वलित हो रहा है या दूसरे सूर्यका उदय हुआ है? अथवा स्थिर कान्ति धारण करनेवाला विद्युतपुञ्ज ही सहसा सामने प्रकट हो गया है?

तपस्वी ब्राह्मणने अत्यन्त शोभासम्पन्न नीलगिरिको देखकर राजासे कहा—'महाराज ! यही वह परम पवित्र महान् पर्वत है।' यह सुनकर नृपश्रेष्ठ रत्नग्रीवने मस्तक झुकाकर उसे प्रणाम किया और कहा—'मैं धन्य और कृतकृत्य हो गया; क्योंकि इस समय मुझे नीलाचलका प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा है। राजमन्त्री, रानी और करम्ब नामका जुलाहा—ये भी नीलाचलका दर्शन पाकर बड़े प्रसन्न हुए। नरश्रेष्ठ ! उपर्युक्त पाँचों व्यक्तियोंने

विजयनामक मुहूर्तमें नीलगिरिपर चढ़ना आरम्भ किया। उस समय उन्हें देवताओंद्वारा बजायी हुई महान् दुन्दुभियोंकी ध्वनि सुनायी दे रही थी। पर्वतके ऊपरी शिखरपर, जो विचित्र वृक्षोंसे सुशोभित हो रहा था, उन्होंने एक सुवर्णजटित परम सुन्दर देवालय देखा। जहाँ प्रतिदिन ब्रह्माजी आकर भगवान्‌की पूजा करते हैं तथा श्रीहरिको सन्तोष देनेवाला नैवेद्य भोग लगाते हैं। वह अद्भुत एवं उज्ज्वल देवालय देखकर राजा सबके साथ उसके भीतर प्रविष्ट हुए। वहाँ एक सोनेका सिंहासन था, जो बहुमूल्य मणियोंसे जटित होनेके कारण अत्यन्त विचित्र दिखायी दे रहा था। उसके ऊपर भगवान् चतुर्भुज रूपसे विराजमान थे! उनकी इँकी बड़ी मनोहर दिखायी देती थी। चण्ड, प्रचण्ड और विजय आदि पार्षद उनकी सेवामें खड़े थे। नृपश्रेष्ठ रलग्रीवने अपनी रानी और सेवकोंसहित भगवान्‌को प्रणाम किया।

प्रणामके पश्चात् वेदोक्त मन्त्रोद्घारा उन्हें विधिवत् स्नान कराया और प्रसन्न चित्तसे अर्ध्य, पाद्य आदि उपचार अर्पण किये। इसके बाद भगवान्‌के श्रीविग्रहमें चन्दन लगाकर उन्हें वस्त्र निवेदन किया तथा धूप-आरती करके सब प्रकारके स्वादसे युक्त मनोहर नैवेद्य भोग लगाया। अन्तमें पुनः प्रणाम करके तापस ब्राह्मणके साथ वे भगवान्‌की स्तुति करने लगे। उसमें उन्होंने अपनी बुद्धिके अनुसार श्रीहरिके गुण-समुदायसे ग्रथित स्तोत्रोंका संग्रह सुनाया था।

राजा बोले—भगवन्! एकमात्र आप ही पुरुष (अन्तर्यामी) हैं। आप ही प्रकृतिसे परे साक्षात् भगवान् हैं। आप कार्य और कारणसे भिन्न तथा महत्तत्व आदिसे पूजित हैं। सृष्टि-रचनामें कुशल ब्रह्माजी आपहीके नाभि-कमलसे उत्पन्न हुए हैं तथा संहारकारी रुद्रका आविर्भाव भी आपहीके नेत्रोंसे हुआ है। आपकी ही आज्ञासे ब्रह्माजी इस संसारकी सृष्टि करते हैं। पुराणपुरुष! आदिकालका जो स्थावर-जङ्गमरूप जगत् दिखायी देता है, वह सब आपसे ही उत्पन्न हुआ है। आप ही इसमें चेतनाशक्ति डालकर इस संसारको चेतन बनाते हैं। जगदीश्वर! वास्तवमें आपका जन्म तो कभी होता ही नहीं है; अतएव आपका अन्त भी नहीं है। प्रभो! आपमें वृद्धि, क्षय और परिणाम—इन तीनों विकारोंका सर्वथा अभाव है, तथापि आप भक्तोंकी रक्षा और धर्मकी स्थापनाके लिये अपने अनुरूप गुणोंसे युक्त दिव्य जन्म-कर्म स्वीकार करते हैं। आपने मत्स्यावतार धारण करके शङ्खासुरको मारा और वेदोंकी रक्षा की। ब्रह्मन्! आप महापुरुष (पुरुषोत्तम) और सबके पूर्वज हैं। महाविष्णो! शेष भी आपकी महिमाको नहीं जानते। भगवती वाणी भी आपको समझ नहीं पाती, किर मेरे-जैसे अन्यान्य अज्ञानी जीव कैसे आपकी स्तुति करनेमें समर्थ हो सकते हैं?*



* एकस्वं पुरुषः साक्षात् भगवान् प्रकृतेः परः। कार्यकारणतो भिन्नो महत्तत्वादिपूजितः ॥
ल्पनामिकमलज्जाजे ब्रह्मा सृष्टिविचक्षणः। तथा संहारकर्ता च रुद्रस्त्वत्रेत्रसंभवः ॥
त्वयाऽऽज्ञासः करोत्यस्य विश्वस्य परिचेष्टितम् ॥

इस प्रकार स्तुति करके राजाने भगवानके चरणोंमें मस्तक नवाकर पुनः प्रणाम किया। उस समय उनका स्वर गद्गद हो रहा था। समस्त अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया था। उनकी इस स्तुतिसे भगवान् पुरुषोत्तम बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने राजासे सत्य और सार्थक वचन कहा।

श्रीभगवान् बोले—राजन्! तुम्हारे द्वारा की हुई इस स्तुतिसे मुझे बड़ा हर्ष हुआ है। महाराज! तुम यह जान लो कि मैं प्रकृतिसे परे रहनेवाला परमात्मा हूँ। अब तुम शीघ्र ही मेरा नैवेद्य (प्रसाद) ग्रहण करो। इससे परम मनोहर चतुर्भुज रूपको प्राप्त होकर परमपदको जाओगे। जो मनुष्य तुम्हारे किये हुए इस स्तोत्रस्त्रोत्से मेरी स्तुति करेगा; उसे भी मैं अपना उत्तम दर्शन दूँगा, जो भोग और मोक्ष—दोनों प्रदान करनेवाला है।

भगवान्के कहे हुए इस वचनको सुनकर राजाने अपनी सेवामें रहनेवाले चारों स्वजनोंके साथ नैवेद्य भक्षण किया। तदनन्तर क्षुद्रधण्टिकाओंसे सुशोभित सुन्दर विमान उपस्थित हुआ। उस समय धर्मात्मा राजा रत्नग्रीवने, जो भगवान्के कृपापात्र हो चुके थे, श्रीपुरुषोत्तमदेवका दर्शन करके उनके चरणोंमें प्रणाम किया तथा उनकी आज्ञा ले अपनी रानीके साथ विमानपर जा बैठे। फिर भगवान्के देखते-देखते अद्भुत वैकुण्ठलोकमें चले गये। राजाके मन्त्री भी धर्मपरायण तथा धर्मवेत्ताओंमें सबसे श्रेष्ठ थे; अतः वे भी विमानपर बैठकर उनके साथ ही गये। सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेवाले तपस्वी ब्राह्मण भी चतुर्भुज-स्वरूपको प्राप्त होकर वैकुण्ठको चले गये। इसी प्रकार करम्बने भी भगवान्के गुणोंका गायन करनेके पुण्यसे उनका दर्शन पाया और सम्पूर्ण देवताओंके लिये दुर्लभ भगवद्-धामको प्रस्थान किया। सभी एक ही साथ परम अद्भुत विष्णुलोककी ओर प्रस्थित हुए। सबके चार-चार भुजाएँ

थीं। सबके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म शोभा पा रहे थे। सभी मेघके समान श्यामसुन्दर और विशुद्ध स्वभाववाले थे। सबके हाथ कमलोंकी भाँति सुशोभित थे। हार, केयूर और कङ्गोंसे सभीके अङ्ग विभूषित थे। इस प्रकार उन सब लोगोंने वैकुण्ठधामकी यात्रा की। साथमें आये हुए प्रजावर्गके लोगोंने विमानोंकी पंक्तियाँ देखीं तथा दुन्दुभींकी ध्वनिको भी श्रवण किया। उस समय एक ब्राह्मण भी वहाँ गये थे, जो भगवान्के चरणारविन्दोंमें बड़ा प्रेम रखनेवाले थे। उनके चित्तपर भगवद्विरहका इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि वे चतुर्भुज-स्वरूप हो गये। यह अद्भुत बात देखकर सब लोग ब्राह्मणके महान् सौभाग्यकी सराहना करने लगे और गङ्गासागर-सङ्गममें स्नान करके काञ्चीनगरीमें लौट आये। सब लोग इसके बाहर थे कि 'उत्तम बुद्धिवाले महाराज रत्नग्रीवका अहोभाग्य है, जो वे इसी शरीरसे श्रीविष्णुके परमधामको चले गये।'

[**सुमति कहते हैं—**]राजन्! यही वह नीलगिरि है, जिसका भगवान् पुरुषोत्तमने आदर बढ़ाया है। इसका दर्शन करनेमात्रसे मनुष्य परमपद—वैकुण्ठधामको प्राप्त हो जाते हैं। जो सौभाग्यशाली पुरुष नीलगिरिके इस माहात्म्यको सुनता है तथा जो दूसरे लोगोंको सुनाता है, वे दोनों ही परमधामको प्राप्त होते हैं। इसका श्रवण और स्मरण करनेमात्रसे बुरे सपने नष्ट हो जाते हैं तथा अन्तमें भगवान् पुरुषोत्तम इस संसारसे उद्धार कर देते हैं। ये नीलाचलनिवासी पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रके ही स्वरूप हैं तथा देवी सीता साक्षात् महालक्ष्मी हैं। ये दोनों दम्पत्ति ही समस्त कारणोंके भी कारण हैं। भगवान् श्रीराम अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करके सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र कर देंगे। उनका नाम ब्रह्महस्याके प्रायश्चित्तमें भी जपनेके लिये बताया गया

* त्वतो जाते पुराणाद्यं जगत् स्थास्तु चरिष्णु च। चेतनाशक्तिमाविश्य त्वमेनं चेतयस्यहो ॥

तव जन्म तु नास्त्येव नान्तस्तव जगत्पते। वृद्धिक्षयं परीणामास्त्वयि सन्त्येव नो विभो ॥

तथापि भक्तरक्षार्थं धर्मस्थापनहेतवे। करोषि जन्मकर्मणि ह्यनुरूपगुणानि च ॥

त्वया मात्स्यं वपुर्धृत्वा शङ्खस्तु निहतोऽसुरः। वेदाः सुरक्षिता ब्रह्मन् महापुरुषपूर्वज ॥

शेषो न वेत्ति मह ते भारत्यपि महेश्वरी। किमुतान्ये महाविष्णो मादृशास्तु कुबुद्धयः ॥ (२२। २८—३४)

है। [राम-नाम लेनेसे ब्रह्महत्या-जैसे पातक भी दूर हो जाते हैं।] सुमित्रानन्दन ! इस समय तुम्हारा यज्ञ-सम्बन्धी घोड़ा पर्वतश्रेष्ठ नीलगिरिके निकट जा पहुँचा है। महामते ! तुम भी वहाँ चलकर भगवान् पुरुषोत्तमको नमस्कार करो। वहाँ जानेसे हम सब लोग निष्पाप होकर अन्तमें परमपदको प्राप्त होंगे; क्योंकि भगवान्के प्रसादसे अबतक अनेक मनुष्य भवसागरके पार हो चुके हैं।

[शोषजी कहते हैं—] वात्स्यायनजी ! इस प्रकार

सुमति भगवान्की महिमाका वर्णन कर रहे थे; इतनेहीमें वह अश्व पृथ्वीको अपनी टापोसे खोदता हुआ वायुके समान वेगसे चलकर नीलाचलपर पहुँच गया। तब राजा शत्रुघ्न भी उसके पीछे-पीछे जाकर नीलगिरिपर पहुँचे और गङ्गासागर-सङ्गममें स्नान करके पुरुषोत्तमका दर्शन करनेके लिये गये। निकट जाकर उन्होंने देव-दानव-वन्दित भगवान्को प्रणाम किया और उनकी स्तुति करके अपनेको कृतार्थ माना।



चक्राङ्का नगरीके राजकुमार दमनद्वारा घोड़ेका पकड़ा जाना तथा राजकुमारका प्रतापाग्र्यको युद्धमें परास्त करके स्वयं पुष्कलके द्वारा पराजित होना

शोषजी कहते हैं—मुने ! तदनन्तर वह घोड़ा नीलाचलपर थोड़ी देर ठहरकर घास चरता हुआ आगे बढ़ गया। उसका वेग मनके समान तीव्र था। श्रेष्ठ वीर शत्रुघ्न, राजा लक्ष्मीनिधि, भयङ्कर वाहनवाले राजकुमार पुष्कल तथा राजा प्रतापाग्र्य—ये सभी उसकी रक्षा कर रहे थे। कई करोड़ वीरोंसे सुरक्षित वह यज्ञसम्बन्धी अश्व क्रमशः आगे बढ़ता हुआ राजा सुबाहुद्वारा परिपालित चक्राङ्का नगरीके पास जा पहुँचा। उस समय राजाका पुत्र दमन शिकार खेल रहा था। उसकी दृष्टि उस घोड़ेपर पड़ी, जो चन्दन आदिसे चर्चित तथा मस्तकमें सुवर्णमय पत्रसे शोभायमान था। राजकुमार दमनने उस पत्रको बाँचा, सुन्दर अक्षरोंमें लिखा होनेके कारण उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। पत्रका अभिप्राय समझकर वह बोला—‘अहो ! भूमण्डलपर मेरे पिताजीके जीते-जी यह इतना बड़ा अहङ्कार कैसा ? जिसने यह धमण्ड दिखाया है उसे मेरे धनुषसे छूटे हुए बाण इस उद्घटताका फल चखायेगे। आज मेरे तीखे बाण शत्रुघ्नके समस्त शरीरको घायल करके उन्हें लहू-लुहान कर देंगे, जिससे वे फूले हुए पलाशकी भाँति दिखायी देंगे। आज सभी श्रेष्ठ योद्धा मेरी भुजाओंका महान् बल देखें ! मैं अपने धनुर्दण्डसे करोड़ों बाणोंकी वर्षा करूँगा।’

राजकुमार दमनने ऐसा कहकर घोड़ेको तो अपने

नगरमें भेज दिया और स्वयं हर्ष तथा उत्साहमें भरकर सेनापतिसे कहा—‘महामते ! शत्रुओंका सामना करनेके लिये मेरी सेना तैयार कर दो।’ इस प्रकार सेनाको सुसज्जित करके वह शीघ्र ही युद्ध-क्षेत्रमें सामने जाकर डट गया। उस समय उसका स्वरूप बड़ा उग्र दिखायी देता था। इसी बीचमें घोड़ेके पीछे चलनेवाले योद्धा भी वहाँ आ पहुँचे और अत्यन्त व्याकुल होकर बारम्बार एक-दूसरेसे पूछने लगे—‘महाराजका वह यज्ञसम्बन्धी अश्व, जो भालपत्रसे चिह्नित था, कहाँ चला गया ?’ इतनेहीमें शत्रुओंको ताप देनेवाले राजा प्रतापाग्र्यने देखा, सामने ही कोई सेना तैयार होकर खड़ी है, जो वीरोचित शब्दोंका उच्चारण करती हुई गर्जना कर रही है। प्रतापाग्र्यके सिपाहियोंने उनसे कहा—‘महाराज जान पड़ता है, यही राजा घोड़ा ले गया है; अन्यथा यह वीर अपने सैनिकोंके साथ हमारे सामने क्यों खड़ा होता ?’ यह सुनकर प्रतापाग्र्यने अपना एक सेवक भेजा। उसने जाकर पूछा—‘महाराज श्रीरामचन्द्रजीका अश्व कहाँ है ? कौन ले गया है ? क्यों ले गया है ? क्या वह भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको नहीं जानता ?’

राजकुमार दमन बड़ा बलवान् था, वह सेवकका ऐसा वचन सुनकर बोला—‘अरे ! भाल-पत्र आदि चिह्नोंसे अलङ्कृत उस यज्ञसम्बन्धी अश्वको मैं ले गया हूँ। उसकी सेवामें जो शूरवीर हों, वे आवें और मुझे

जीतकर बलपूर्वक यहाँसे घोड़ेको छुड़ा ले जायँ।' राजकुमारका वचन सुनकर सेवकको बड़ा रोष हुआ, तथापि वह हँसता हुआ वहाँसे लौट गया और राजाके पास जाकर उसने दमनकी कही हुई सारी बातें ज्यों-की-त्यों सुना दीं। उसे सुनते ही महाबली प्रतापाग्र्यकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और वे चार घोड़ोंसे सुशोभित सुवर्णमय रथपर सवार हो बड़े-बड़े वीरोंको साथ ले राजकुमारसे युद्ध करनेके लिये चले। उनकी सहायतामें बहुत बड़ी सेना थी। आगे बढ़कर वे धनुषपर टङ्कार देने लगे। उस समय रोषपूर्ण नेत्रोंवाले राजा प्रतापाग्र्यके पीछे-पीछे बहुत-से घुड़सवार और हाथीसवार भी गये। निकट जाकर प्रतापाग्र्यने युद्धके लिये उद्यत राजकुमारको सम्बोधित करके कहा—'कुमार ! तू तो अभी बालक है। क्या तूने ही हमारे श्रेष्ठ घोड़ेको बाँध रखा है ? अरे ! समस्त वीरशिरोमणि जिनके चरणोंकी सेवा करते हैं, उन महाराज श्रीरामचन्द्रजीको तू नहीं जानता ? दैत्यराज रावण भी जिनके अन्द्रुत प्रतापको नहीं सह सका, उन्हींके घोड़ेको ले जाकर तूने अपने नगरमें पहुँचा दिया है ! जान ले, मैं तेरे सामने आया हुआ काल हूँ, तेरा घोर शत्रु हूँ। छोकरे ! तू अब तुरंत चला जा और घोड़ेको छोड़ दे, फिर जाकर बालकोंकी भाँति खेल-कूदमें जी बहला !'

दमनका हृदय बड़ा विशाल था, वह प्रतापाग्र्यकी ऐसी बातें सुनकर मुस्कराया और उनकी सेनाको तिनकेके समान समझता हुआ बोला—'महाराज ! मैंने बलपूर्वक आपके घोड़ेको बाँधा और अपने नगरमें पहुँचा दिया है, अब जीते-जी उसे लौटा नहीं सकता। आप बड़े बलवान् हैं तो युद्ध कीजिये। आपने जो यह कहा—'तू अभी बालक है, इसलिये जाकर खेल-कूदमें जी बहला' उसके लिये इतना ही कहना है कि अब आप युद्धके मुहानेपर ही मेरा खेल देखिये।'

इतना कहकर सुबाहु-कुमारने अपने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और राजा प्रतापाग्र्यकी छातीको लक्ष्य करके सौ बाणोंका संधान किया। परन्तु राजा प्रतापाग्र्यने अपने हाथकी फुर्ती दिखाते हुए उन सभी

बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। यह देखकर राजकुमार दमनको बड़ा क्रोध हुआ और वह बाणोंकी वर्षा करने लगा। तदनन्तर, दमनने अपने धनुषपर तीन सौ बाणोंका संधान किया और उन्हें शत्रुपर चलाया। उन्होंने प्रतापाग्र्यकी छाती छेद डाली और रक्तमें नहाकर वे उसी भाँति नीचे गिरे, जैसे श्रीरामचन्द्रजीकी भक्तिसे विमुख हुए पुरुषोंका पतन हो जाता है। इसके बाद राजकुमारने शङ्खध्वनिके साथ गर्जना की। उसका पराक्रम देखकर प्रतापाग्र्य क्रोधसे जल उठे और बोले—'वीर ! अब तू मेरा अन्द्रुत पराक्रम देख !' यों कहकर उन्होंने तुरंत तीखे बाणोंकी बौछार आरम्भ कर दी। वे बाण घोड़े और पैदल—सबके ऊपर पड़ते दिखायी देने लगे। उस समय राजकुमार दमनने प्रतापाग्र्यकी बाणवर्षाको रोककर कहा—'आर्य ! यदि आप शूरवीर हैं तो मेरी एक ही मार सह लीजिये। मैं अभिमानपूर्वक प्रतिज्ञा करके एक बात कहता हूँ, इसे सुनिये—वीरवर ! यदि मैं इस बाणके द्वारा आपको रथसे नीचे न गिरा हूँ तो जो लोग युक्तिवादमें कुशल होनेके कारण मतवाले होकर वेदोंकी निन्दा करते हैं, उनका वह नरकमें डुबोनेवाला पाप मुझे ही लगे।' यह कहकर उसने कालके समान भयङ्कर, आगकी ज्वालाओंसे व्याप्त एवं अत्यन्त तीक्ष्ण बाण तरकशसे निकालकर अपने धनुषपर चढ़ाया। वह कालाग्निके समान देवीष्यमान हो रहा था। राजकुमारने अपने शत्रुके हृदयको निशाना बनाया और बाण छोड़ दिया। वह बड़े वेगसे शत्रुकी ओर चला। प्रतापाग्र्यने जब देखा कि शत्रुका बाण मुझे गिरानेके लिये आ रहा है, तो उन्होंने उसे काट डालनेके लिये कई तीखे बाण अपने धनुषपर चढ़ाये। किन्तु राजकुमारका बाण प्रतापाग्र्यके सब बाणोंको बीचसे काटता हुआ उनके धैर्ययुक्त हृदयतक पहुँच ही गया। हृदयपर चोट करके वह उसके भीतर घुस गया। राजा प्रतापाग्र्य उसकी चोट खाकर पृथ्वीपर गिर पड़े। उन्हें मूर्छ्छित—चेतनाहीन एवं रथकी बैठकसे धरतीपर गिरा देख सारथिने उठाकर रथपर बिठाया और युद्धभूमिसे बाहर ले गया। उस समय राजाकी सेनामें

बड़ा हाहाकार मचा । समस्त योद्धा भागकर वहाँ पहुँचे जहाँ करोड़ों वीरोंसे घिरे हुए शत्रुघ्नजी मौजूद थे । प्रतापाग्र्यको परास्त करके राजकुमार दमनने विजय पायी और अब वह शत्रुघ्नकी प्रतीक्षा करने लगा ।

उधर शत्रुघ्नको जब यह हाल मालूम हुआ तो वे क्रोधमें भरकर दाँतोंसे दाँत पीसते हुए बारंबार सैनिकोंसे पूछने लगे—‘कौन मेरा घोड़ा ले गया है ? किसने शूर-शिरोमणि राजा प्रतापाग्र्यको परास्त किया है ?’ तब सेवकोंने कहा—‘राजा सुबाहुके पुत्र दमनने प्रतापाग्र्यको पराजित किया है और वे ही यजका घोड़ा ले गये हैं।’ यह सुनकर शत्रुघ्न बड़े वेगसे चलकर युद्धभूमिमें आये । वहाँ उन्होंने देखा, कितने ही हाथियोंके गण्डस्थल विदीर्ण हो गये हैं, घोड़े अपने सवारोंसहित घायल होकर मरे पड़े हैं । यह सब देखकर शत्रुघ्नके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये; वे अपने योद्धाओंसे बोले—‘यहाँ मेरी सेनामें सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान रखनेवाला कौन ऐसा वीर है, जो राजकुमार दमनको परास्त कर सकेगा ?’ शत्रुघ्नका यह वचन सुनकर शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले पुष्कलके हृदयमें दमनको जीतनेका उत्साह हुआ और उन्होंने इस प्रकार कहा—‘स्वामिन् ! कहाँ यह छोटा-सा राजकुमार दमन और कहाँ आपका असीम बल ! महामते ! मैं अभी जा रहा हूँ, आपके प्रतापसे दमनको परास्त करूँगा । युद्धके लिये मुझे सेवकके उद्यत रहते हुए कौन घोड़ा ले जायेगा ? श्रीरघुनाथजीका प्रताप ही सारा कार्य सिद्ध करेगा । स्वामिन् ! मेरी प्रतिज्ञा सुनिये; इससे आपको प्रसन्नता होगी । यदि मैं दमनको परास्त न करूँ तो श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दोंके रसास्वादनसे विलग (श्रीरामचरणचिन्तनसे दूर) रहनेवाले पुरुषोंको जो पाप लगता है, वही मुझे भी लगे । यदि मैं दमनपर विजय न पाऊँ तो जो पुत्र माताके चरणोंसे पृथक् दूसरा कोई तीर्थ मानकर उसके साथ विरोध करता है, उसको लगनेवाला पाप मुझे भी लगे ।’

पुष्कलकी यह प्रतिज्ञा सुनकर शत्रुघ्नजीके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने उन्हें युद्धमें जानेकी आज्ञा

दे दी । आज्ञा पाकर पुष्कल बहुत बड़ी सेनाके साथ उस स्थानपर गये, जहाँ वीरवंशमें उत्पन्न राजकुमार दमन मौजूद था । युद्धक्षेत्रमें पुष्कलको आया जान वीरग्रगण्य दमन भी अपनी सेनासे घिरा हुआ आगे बढ़ा । दोनोंका एक-दूसरेसे सामना हुआ । अपने-अपने रथपर बैठे हुए दोनों वीर बड़ी शोभा पा रहे थे, उस समय पुष्कलने महाबली राजकुमारसे कहा—‘दमन ! तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मैं तुम्हारे साथ युद्ध करनेके लिये प्रतिज्ञा करके आया हूँ, मेरा नाम पुष्कल है, मैं भरतजीका पुत्र हूँ; तुम्हें अपने शस्त्रोंसे परास्त करूँगा । महामते ! तुम भी हर तरहसे तैयार हो जाओ ।’ पुष्कलकी उपर्युक्त बात सुनकर उसने हँसते-हँसते उत्तर दिया—‘भरतनन्दन ! मुझे राजा सुबाहुका पुत्र समझो, मेरा नाम दमन है; पिताके प्रति भक्ति रखनेके कारण मेरे सारे पाप दूर हो गये हैं, महाराज शत्रुघ्नका घोड़ा ले जानेवाला मैं ही हूँ । विजय तो दैवके अधीन है, दैव जिसे देगा—जिसे अपनी कृपासे अलङ्कृत करेगा, उसे ही विजय मिलेगी । परन्तु तुम युद्धके मुहानेपर डटे रहकर मेरा पराक्रम देखो ।’

यों कहकर दमनने धनुष चढ़ाया और उसे कानतक खींचकर शत्रुओंके प्राण लेनेवाले तीखे बाणोंको छोड़ना आरम्भ किया । उन बाणोंने आकाशमण्डलको ढक लिया और उनकी छायासे सूर्यदेवकी किरणोंका प्रकाश भी रुक गया । राजकुमारके चलाये हुए उन बाणोंकी चोट खाकर कितने ही मनुष्य, रथ, हाथी और घोड़े धरतीपर लोटते दिखायी देने लगे । शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले पुष्कलने उसका वह पराक्रम देखा तथा आचमन करके एक बाण हाथमें लिया और उसे अंग्रिदेवके मन्त्रसे विधिपूर्वक अभिमन्त्रित करके अपने धनुषपर रखा । तदनन्तर भलीभाँति खींचकर उसे शत्रुओंके ऊपर छोड़ दिया । धनुषसे छूटते ही उस बाणसे युद्धके मुहानेपर भयङ्कर आग प्रकट हुई । वह अपनी ज्वालाओंसे आकाशको चाटती हुई प्रलयांग्रिके समान प्रज्वलित हो उठी । फिर तो दमनकी सेना रणभूमिमें दाध होने लगी, उसके ऊपर त्रास छा गया और वह आगकी लपटोंसे पीड़ित होकर भाग चली ।

राजकुमार दमनके छोड़े हुए सभी बाण अग्रिकी ज्वालाओंमें झुल्सकर सब औरसे नष्ट हो गये। अपनी सेना दग्ध होती देख दमन क्रोधसे भर गया। वह सभी अश्व-शस्त्रोंका विद्वान् था; इसलिये उसने वह आग बुझानेके लिये वरुणास्त्र हाथमें लिया और शत्रुपर छोड़ दिया। उसके छोड़े हुए वरुणास्त्रने रथ और घोड़े आदिसे भरी हुई पुष्कलकी सेनाको जलसे आश्वासित कर दिया। शत्रुओंके रथ और हाथी पानीमें ढूबते दिखायी देने लगे तथा अपने पक्षके योद्धाओंको शान्ति मिली। पुष्कलने देखा, मेरी सेना जलराशिसे पीड़ित होकर काँपती, क्षुब्ध होती और नष्ट होती जा रही है तथा मेरा आग्रेयास्त्र शत्रुके वरुणास्त्रसे शान्त हो गया है। तब अत्यन्त क्रोधके कारण उसकी आँखें लाल हो गयीं और उसने वायव्यास्त्रसे अभिमन्त्रित करके एक बहुत बड़ा बाण अपने धनुषपर रखा। तदनन्तर वायव्यास्त्रकी प्रेरणासे बड़े जोरकी हवा उठी और उसने अपने वेगसे वहाँ घिरी हुई मेघोंकी घटाको छिन्न-भिन्न कर दिया। राजकुमार दमनने अपने सैनिकोंको वायुसे पराजित होते देख अपने धनुषपर पर्वतास्त्रका संधान किया। फिर तो शत्रुयोद्धाओंके मस्तकपर पर्वतोंकी वर्षा होने लगी। उन पर्वतोंने वायुकी गतिको रोक दिया।

अब हवा कहीं भी नहीं जा पाती थी। यह देख पुष्कलने अपने धनुषपर वज्रास्त्रका प्रयोग किया। तब वज्रके आघातसे वे सभी पर्वत क्षणभरमें तिलके समान टुकड़े-टुकड़े हो गये। साथ ही वह वज्र उच्चस्वरसे गर्जना करता हुआ राजकुमार दमनकी छातीपर बड़े वेगसे गिरा। छातीके बिंध जानेके कारण राजकुमारको गहरी चोट पहुँची, इससे उस बलवान् वीरको बड़ी व्यथा हुई। उसका हृदय व्याकुल हो उठा और वह मूर्च्छित हो गया। दमनका सारथि युद्धनीतिमें निपुण था। वह राजकुमारको मूर्च्छित देखकर उसे रणभूमिसे एक कोस दूर हटा ले गया। फिर तो उसके योद्धा अदृश्य हो गये—इधर-उधर भाग खड़े हुए और राजधानीमें जाकर उन्होंने राजकुमारके मूर्च्छित होनेका समाचार कह सुनाया। पुष्कल धर्मके ज्ञाता थे; उन्होंने संग्राम-भूमिमें इस प्रकार विजय पाकर श्रीरघुनाथजीके वचनोंका स्मरण करते हुए फिर किसीपर प्रहार नहीं किया। तदनन्तर दुन्दुभि बज उठी, जोर-जोरसे जय-जयकार होने लगा। सब ओरसे साधुवादके मनोहर वचन सुनायी देने लगे। पुष्कलको विजयी देखकर शत्रुघ्न बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सुमति आदि मन्त्रियोंसे घिरकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।



राजा सुबाहुका भाई और पुत्रोंसहित युद्धमें आना तथा सेनाका क्रौञ्च-व्यूहनिर्माण

शेषजी कहते हैं—मुने ! उधर राजा सुबाहुने जब देखा कि मेरे सैनिक रक्तमें ढूबे हुए आ रहे हैं तो उनका शोक शान्त-सा करते हुए उन्होंने अपने पुत्रकी करतूत पूछी। राजाका प्रश्न सुनकर उनके सेवकोंने, जो खूनसे लथपथ हो रहे थे तथा जिन्होंने रक्तसे भीगे हुए वस्त्र धारण कर रखा था, इस प्रकार उत्तर दिया—‘राजन् ! आपके पुत्रने स्वर्णमय पत्र आदिके चिह्नोंसे अलङ्कृत यज्ञसम्बन्धी अश्वको जब आते देखा तो वीरताके गर्वसे शत्रुघ्नको तिनकेके समान समझकर—उनकी कुछ भी परवा न करके उसे पकड़वा लिया। इतनेहीमें घोड़ेके पीछे चलनेवाला रक्षक थोड़ी-सी सेनाके साथ वहाँ आ

पहुँचा। उसके साथ राजकुमारका बड़ा भारी युद्ध हुआ, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। आपके पुत्र दमन अपने बाणोंसे उस अश्व-रक्षकको मूर्च्छित करके ज्यों ही स्थिर हुए त्यों ही शत्रुघ्न भी अपनी सेनाओंसे घिरे हुए उपस्थित हो गये। तदनन्तर दोनों दलोंमें बड़ा भयङ्कर युद्ध छिड़ा, उसमें सब प्रकारके अश्व-शस्त्रोंका प्रयोग होने लगा। उस युद्धमें आपके महाबली पुत्रने अनेकों बार विजय पायी है, किन्तु इस समय शत्रुघ्नके भतीजेने वज्रास्त्र छोड़कर आपके वीर पुत्रको रणभूमिमें मूर्च्छित कर दिया है।’

सेवकोंकी यह बात सुनकर राजा सुबाहु राजधानीसे

निकलकर उस स्थानको चले, जहाँ उनके पुत्रको पीड़ा पहुँचानेवाले शत्रुघ्न मौजूद थे।

राजा सुबाहुको सुवर्णभूषित रथपर सवार हो नगरसे निकलते देख समस्त शत्रुओंपर प्रहार करनेवाली शत्रुघ्नकी सेना युद्धके लिये तैयार हो गयी। राजा सुबाहुके भाईका नाम था सुकेतु, वे गदायुद्धमें प्रवीण थे। वे भी अपने रथपर सवार होकर युद्धके लिये आये। राजाका पुत्र चित्राङ्ग सब प्रकारकी युद्धकलामें निपुण था। वह भी रथारुद्ध होकर शीघ्र ही शत्रुघ्नकी मतवाली सेनापर चढ़ आया। उसके छोटे भाईका नाम था विचित्र। वह विचित्र प्रकारसे संग्राम करनेमें कुशल था। अपने भाईका दुःख सुनकर उसके मनमें बड़ी व्यथा हो रही थी, इसलिये वह भी सोनेके रथपर सवार हो। युद्धके लिये उपस्थित हुआ। इनके सिवा और भी अनेकों धनुर्धर वीर, जो सभी अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता थे, राजाकी आज्ञा पाकर वीरोंसे भरी हुई संग्राम-भूमिमें गये। राजा सुबाहुने बड़े रोषमें भरकर युद्धक्षेत्रमें पदार्पण किया और वहाँ अपने पुत्रको बाणोंसे पीड़ित एवं मूर्च्छित होकर पड़ा देख राजाको बड़ा दुःख हुआ और वे पल्लवोंसे उसके ऊपर हवा करने लगे। उन्होंने कुमारके शरीरपर जलका छींटा दिया और अपने कोमल हाथसे उसका स्पर्श किया। इससे महान् अस्त्रवेत्ता वीरवर दमनको धीरे-धीरे चेत हो आया। होशमें आते ही दमन

उठ बैठा और बोला—‘मेरा धनुष कहाँ है? और पुष्कल यहाँसे कहाँ चला गया? मुझसे भिड़कर मैं बाणोंके आघातसे पीड़ित होकर वह युद्ध छोड़कर कहाँ भाग गया?’ पुत्रके ये वचन सुनकर राजा सुबाहु बड़े प्रसन्न हुए और उसे छातीसे लगा लिया। पिताको उपस्थित देख दमनने लज्जासे गर्दन झुका ली। उसका सारा शरीर अस्त्रोंकी मारसे घायल हो गया था, तो भी उसने बड़ी भक्तिके साथ पिताके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया। बेटेको पुनः रथपर बिठाकर युद्धक्षेत्रमें कुशल राजा सुबाहुने सेनापतिसे कहा—‘इस युद्धमें तुम अपनी सेनाको क्रौञ्च-व्यूहके रूपमें खड़ी करो; उस व्यूहको जीतना शत्रुके लिये अत्यन्त कठिन है। उसीका आश्रय लेकर मैं राजा शत्रुघ्नकी सेनापर विजय प्राप्त करूँगा।’ महाराज सुबाहुकी बात सुनकर सेनापतिने अपने सैनिकोंका क्रौञ्च नामक सुन्दर व्यूह बनाया। उसमें मुखके स्थानपर सुकेतु और कण्ठकी जगह चित्राङ्ग खड़े हुए। पंखोंके स्थानपर दोनों राजकुमार—दमन और विचित्र थे। स्वयं राजा सुबाहु व्यूहके पुच्छ भागमें स्थित हुए। मध्यभागमें उनकी विशाल सेना थी, जो रथ, गज, अश्व और पैदल—इन चारों अङ्गोंसे शोभा पा रही थी। इस प्रकार विचित्र क्रौञ्चव्यूहकी रचना करके सेनाध्यक्षने राजासे निवेदन किया—‘महाराज! व्यूह सम्पन्न हो गया।’



राजा सुबाहुकी प्रशंसा तथा लक्ष्मीनिधि और सुकेतुका द्वन्द्ययुद्ध

शेषजी कहते हैं—मुनिवर! राजा सुबाहुकी सेनाका आकार बड़ा भयंकर दिखायी देता था, वह मेघोंकी घटाके समान जान पड़ती थी। उसे देखकर शत्रुघ्न अपने मन्त्री सुमतिसे गम्भीर वाणीमें कहा—‘मन्त्रिवर! मेरा घोड़ा किसके नगरमें जा पहुँचा है? यह सेना तो समुद्रकी लहरोंके समान दिखायी पड़ती है।’

सुमतिने कहा—राजन्! यहाँसे पास ही चक्राङ्ग नामवाली सुन्दर नगरी विराजमान है। उसके भीतर ऐसे

मनुष्य निवास करते हैं, जो भगवान् विष्णुकी भक्तिसे पापरहित हो गये हैं। ये धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ राजा सुबाहु उसी नगरीके स्वामी हैं। इस समय ये अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ तुम्हारे सामने विराजमान हैं। ये नरेश सदा अपनी ही स्त्रीके प्रति अनुराग रखते हैं। परायी स्त्रियोंपर कभी दृष्टि नहीं डालते। इनके कानोंमें सदा विष्णुकी ही कथा गूँजती है। अन्य विषयोंका प्रतिपादन करनेवाली कथा-वार्ता ये कभी नहीं सुनते। प्रजाकी आयके छठे भागसे अधिक दूसरेका धन कभी नहीं ग्रहण करते। ये

धर्मात्मा हैं और विष्णु-बुद्धिसे भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं। सदा भगवान्‌की सेवामें लगे रहते और भगवान् विष्णुके चरणारविन्दोंका मकरन्द पान करनेके लिये भ्रमरकी भाँति लोलुप बने रहते हैं। परधर्मसे विमुख हो सदा स्वधर्मका ही सेवन करते हैं। वीरोंमें कहीं भी इनके बलकी समानता नहीं है। इस समय अपने पुत्रका युद्धके मैदानमें गिरना सुनकर ये क्रोध और शोकसे व्याकुल होकर युद्धके लिये उपस्थित हुए हैं।

मन्त्रीकी बात सुनकर शत्रुघ्ने अपने श्रेष्ठ योद्धाओंसे कहा—‘वीरो ! राजा सुबाहुके सैनिकोंने आज क्रौञ्चव्यूहका निर्माण किया है। इसके मुख और पक्षभागमें प्रधान-प्रधान योद्धा खड़े हुए हैं। तुमलोगोंमें कौन ऐसा शास्त्रवेत्ता है, जो उन वीरोंका भेदन करेगा ? जिसमें व्यूहका भेदन करनेकी शक्ति हो, जो वीरोंपर विजय पानेके लिये उद्यत हो, वह मेरे हाथसे पानका बीड़ा उठा ले ।’ उस समय वीर लक्ष्मीनिधिने क्रौञ्च-व्यूहको तोड़नेकी प्रतिज्ञा करके बीड़ा उठा लिया। पुष्कलने उनके पीछे सहायताके लिये जानेका विचार किया। तदनन्तर शत्रुघ्नकी आज्ञासे रिपुताप, नीलरत्न, उग्रास्य और वीरमर्दन—ये सब लोग क्रौञ्चव्यूहका भेदन करनेके लिये लक्ष्मीनिधिके साथ गये।

व्यूहके मुख-भागमें सुकेतु खड़े थे, उनसे लक्ष्मीनिधिने कहा—‘मैं राजा जनकका पुत्र हूँ, मेरा नाम लक्ष्मीनिधि है; मैं कहता हूँ, समस्त दानवकुलका विनाश करनेवाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके यज्ञसम्बन्धी अश्वको छोड़ दो, नहीं तो मेरे बाणोंसे घायल होकर तुम्हें यमराजके लोकमें जाना पड़ेगा ।’ वीराग्रगण्य लक्ष्मीनिधिके ऐसा कहनेपर महाबली सुकेतुने बड़े वेगसे अपना धनुष चढ़ाया और तुरंत ही रण-क्षेत्रमें बाणोंकी झड़ी लगा दी। यह देख लक्ष्मीनिधिने भी अपने धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ायी और सुकेतुके बाण-समूहको वेगपूर्वक नष्ट करके उनकी छातीमें छः तीखे बाण मारे। उनके प्रहारसे सुकेतुकी छाती

छिद गयी। इससे क्रोधमें भरकर उन्होंने बीस तीखे बाणोंसे लक्ष्मीनिधिको मारा। तब लक्ष्मीनिधिने अपने धनुषपर अनेकों सुटूढ़ एवं तेज धारवाले बाण चढ़ाये। उनमेंसे चार सायकोंद्वारा उन्होंने सुकेतुके घोड़ोंको मार डाला, एकसे उनकी भयङ्कर ध्वजाको हँसते-हँसते काट गिराया, एक बाणसे सारथिका मस्तक धड़से अलग करके पृथ्वीपर डाल दिया, एकके द्वारा उन्होंने रोषमें भरकर प्रत्यञ्चासहित सुकेतुके धनुषको काट डाला तथा एक बाणसे उनकी छातीमें बड़े वेगसे प्रहार किया। लक्ष्मीनिधिके इस अद्भुत कर्मको देखकर समस्त वीरोंको बड़ा विस्मय हुआ।

धनुष, रथ, घोड़े और सारथिके नष्ट हो जानेपर सुकेतु बहुत बड़ी गदा हाथमें लेकर युद्धके लिये आगे बढ़े। गदायुद्धमें कुशल शत्रुको विशाल गदा लिये आते देख लक्ष्मीनिधि भी लोहेकी बनी हुई भारी गदा लेकर रथसे उतर पड़े और गदायुद्धमें प्रवीण वे दोनों वीर एक-दूसरेको जीतनेके लिये अत्यन्त क्रोधपूर्वक युद्ध करने लगे। उस समय लक्ष्मीनिधिने कुपित होकर गदा ऊपर उठायी और सुकेतुकी छातीपर गहरी चोट पहुँचानेके लिये वे बड़े वेगसे उनकी ओर झपटे; किन्तु महाबली सुकेतुने उनकी चलायी हुई गदाको अपने हाथमें पकड़ लिया और पुनः वही गदा उनकी छातीमें दे मारी। अपनी गदाको शत्रुके हाथमें गयी देख राजा लक्ष्मीनिधिने बाहु-युद्धके द्वारा लड़नेका विचार किया। फिर तो दोनों एक-दूसरेसे गुथ गये, पैरमें पैर, हाथमें हाथ और छातीमें छाती सटाकर बड़े वेगसे युद्ध करने लगे। इस प्रकार एक-दूसरेका वध करनेकी इच्छासे परस्पर भिड़े हुए वे दोनों वीर आपसके बलसे आक्रान्त होकर मूर्च्छित हो गये, यह देखकर हजारों योद्धा विस्मय-विमुग्ध हो उन दोनोंकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे ‘राजा लक्ष्मीनिधि धन्य हैं ! तथा महाराज सुबाहुके बलवान् भ्राता सुकेतु भी धन्य हैं !!’

पुष्कलके द्वारा चित्राङ्गका वध, हनुमानजीके चरण-प्रहारसे सुबाहुका शापोद्धार तथा उनका आत्मसमर्पण

शेषजी कहते हैं—मुने ! राजकुमार चित्राङ्ग क्रौञ्चव्यूहके कण्ठभागमें रथपर विराजमान था । अनेकों वीरोंसे घिरे हुए होनेके कारण उसकी बड़ी शोभा हो रही थी । वाराहावतारधारी भगवान् विष्णुने जिस प्रकार समुद्रमें प्रवेश किया था, उसी प्रकार उसने भी शत्रुघ्नकी सेनामें प्रवेश किया । उसका धनुष अत्यन्त सुदृढ़ और मेघ-गर्जनाके समान टङ्कार करनेवाला था । चित्राङ्गने उसे खींचकर चढ़ाया और करोड़ों शत्रुओंको भस्म करनेवाले तीखे बाणोंका प्रहार आरम्भ किया । उन बाणोंसे समस्त शरीर छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण बहुत-से योद्धा धराशायी हो गये । इस प्रकार घोर संग्राम आरम्भ हो जानेपर पुष्कल भी युद्धके लिये गये । चित्राङ्ग और पुष्कल दोनों एक-दूसरेसे भिड़ गये । उस समय उन दोनोंका स्वरूप बड़ा ही मनोहर दिखायी देता था । पुष्कलने सुन्दर भ्रामकास्त्रका प्रयोग करके चित्राङ्गके दिव्य रथको आकाशमें घुमाना आरम्भ किया । यह एक अद्भुत-सी बात हुई । एक मुहूर्तातक आकाशमें चक्रर लगानेके बाद घोड़ोंसहित वह रथ बड़े कष्टसे स्थिर हुआ और युद्धभूमिमें आकर ठहरा । उस समय चित्राङ्गने कहा—‘पुष्कल ! तुमने बड़ा उत्तम पराक्रम दिखाया । श्रेष्ठ योद्धा संग्राममें ऐसे कर्मोंकी बड़ी सराहना करते हैं । तुम घोड़ोंसहित मेरे रथको आकाशमें घुमाते रह गये ! किन्तु अब मेरा भी पराक्रम देखो, जिसकी शूरवीर प्रशंसा करते हैं ।’ ऐसा कहकर चित्राङ्गने युद्धमें बड़े भयङ्कर अस्त्रका प्रयोग किया । उस बाणसे आबद्ध होकर पुष्कलका रथ आकाशमें पक्षीकी भाँति घोड़े और सारथिसहित चक्र लगाने लगा । पुत्रका यह पराक्रम देखकर राजा सुबाहुको बड़ा विस्मय हुआ ।

शत्रुघ्नीरोंका दमन करनेवाले पुष्कल जब किसी तरह धरतीपर आकर ठहरे तो उन्होंने घोड़े और सारथिसहित चित्राङ्गके रथको अपने बाणोंसे नष्ट कर दिया । जब वह रथ टूट गया तो वीर चित्राङ्ग पुनः दूसरे

रथपर सवार हुआ; परन्तु पुष्कलने लगे हाथ उसे भी अपने बाणोंसे नष्ट कर डाला । इस प्रकार उस युद्धके मैदानमें वीर पुष्कलने राजकुमार चित्राङ्गके दस रथ चौपट कर दिये । तब चित्राङ्ग एक विचित्र रथपर सवार होकर पुष्कलके साथ युद्ध करनेके लिये बड़े वेगसे आया । उसने क्रोधमें भरकर पाँच भल्ल हाथमें लिये और महातेजस्वी भरत-पुत्रके मस्तकको उनका निशाना बनाया । उन भल्लोंकी चोट खाकर पुष्कल क्रोधसे जल उठे और धनुषपर बाणका सम्भान करके चित्राङ्गको मार डालनेकी प्रतिज्ञा करते हुए बोले—‘चित्राङ्ग ! यदि इस बाणसे मैं तुम्हारे प्राण न ले लूँ तो शील और सदाचारसे शोभा पानेवाली सती नारीको कलङ्कित करनेसे यमराजके वशमें पड़े हुए पापी मनुष्योंको जिस लोककी प्राप्ति होती है, वही मुझे भी मिले ! मेरी यह प्रतिज्ञा सत्य हो ।’ पुष्कलका यह उत्तम वचन सुनकर शत्रुपक्षके वीरोंका नाश करनेवाला बुद्धिमान् वीर चित्राङ्ग हँसकर बोला—‘शूरशिरोमणे ! प्राणियोंकी मृत्यु सदा और सर्वत्र ही हो सकती है; अतः मुझे अपने मरनेका दुःख नहीं है; किन्तु तुम मेरे वधके लिये जो बाण छोड़ोगे, उसे मैं यदि काट न डालूँ तो उस अवस्थामें मेरी प्रतिज्ञा सुनो—जो मनुष्य तीर्थ-यात्राकी इच्छा रखनेवाले पुरुषका मानसिक उत्साह नष्ट करता है, उसको लगानेवाला पाप मुझे भी लगे; क्योंकि उस दशामें मैं प्रतिज्ञा-भङ्गका अपराधी समझा जाऊँगा ।’ इतना कहकर चित्राङ्ग चुप हो गया । उसने अपने धनुषको सँभाला ।

तब पुष्कल बोले—‘यदि मैंने निष्कपट भावसे श्रीरामचन्द्रजीके युगल चरणोंकी उपासना की हो तो मेरी बात सच्ची हो जाय । यदि मैं अपनी स्त्रीके सिवा दूसरी किसी स्त्रीका मनमें भी विचार न करता होऊँ तो इस सत्यके प्रभावसे युद्धमें मेरा वचन सत्य हो ।’ यह कहकर पुष्कलने तुरंत ही अपने धनुषपर एक बाण चढ़ाया, जो कालग्रिके समान तेजस्वी तथा वीरोंके

मस्तकका उच्छेद करनेवाला था । उस बाणको उन्होंने चित्राङ्गके ऊपर छोड़ दिया । वह बाण छूटता देख बलवान् राजकुमारने भी धनुषपर कालग्रिमें समान एक तीक्ष्ण बाण रखा और उससे अपने वधके लिये आते हुए पुष्कलके बाणको काट डाला । उस समय बाणके कट जानेपर पुष्कलकी सेनामें भारी हाहाकार मचा । कटे हुए बाणका पिछला आधा भाग धरतीपर गिर पड़ा; किन्तु पूर्वार्ध भाग, जिसमें बाणका फल (नोंक) जुड़ा हुआ था, आगे बढ़ा । उसने एक ही क्षणमें कमलकी नालके समान चित्राङ्गका गला काट डाला । राजकुमारका सुन्दर मस्तक किरीट और कुण्डलोंसहित पृथ्वीपर गिर पड़ा और आकाशसे गिरे हुए चन्द्रमाकी भाँति शोभा पाने लगा । भरतकुमार वीरवर पुष्कलने राजकुमार चित्राङ्गको भूमिपर पड़ा देख उस क्रौञ्च-व्यूहके भीतर प्रवेश किया, जो समस्त वीरोंसे सुशोभित हो रहा था ।

तदनन्तर अपने पुत्र चित्राङ्गको प्राणहीन होकर धरतीपर पड़ा देख राजा सुबाहु पुत्रशोकसे अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करने लगे । उस समय राजकुमार विचित्र और दमन अपने-अपने रथपर बैठकर आये और पिताके चरणोंमें प्रणाम करके समयोचित वचन बोले—‘राजन् ! हमलोगोंके जीते-जी आपके हृदयमें दुःख क्यों हो रहा है । वीर पुरुषोंको तो युद्धमें मृत्यु अत्यन्त अभीष्ट होती है । यह चित्राङ्ग धन्य है, जो वीर-भूमिमें शोभा पा रहा है । महामते ! आप शोक छोड़िये, दुःखसे इतने आतुर क्यों हो रहे हैं ? मान्यवर ! हम दोनोंको युद्धके लिये आज्ञा दीजिये और स्वयं भी युद्धमें मन लगाइये ।’ अपनी वीरतापर गर्व करनेवाले दोनों पुत्रोंका यह वचन सुनकर महाराजने शोक छोड़ दिया और युद्धके लिये निश्चय किया । साथ ही संग्राममें उन्मत्त होकर लड़नेवाले वे दोनों भाई विचित्र और दमन भी अपने समान योद्धाकी अभिलाषा करते हुए असंख्य सैनिकोंसे भरी हुई शत्रुकी सेनामें घुस गये । दमनने रिपुतापके और विचित्रने नीलरत्नके साथ लोहा लिया । वे दोनों वीर रणभूमिमें उत्साहपूर्वक युद्ध करने लगे । स्वयं राजा

सुबाहु सुवर्णजटिंत रथपर सवार हो करोड़ों वीरोंसे घिरे हुए शत्रुघ्नके साथ युद्ध करनेके लिये चले । सुबाहुको पुत्रवधके कारण रोषमें भरकर युद्धके लिये आते और सैनिकोंका नाश करते देखकर शत्रुघ्नके पार्श्वभागकी रक्षा करनेवाले हनुमानजी उनकी ओर दौड़े । नख ही उनके आयुध थे और वे युद्धमें मेघकी भाँति विकट गर्जना कर रहे थे । उस समय सुबाहुने दस बाणोंसे हनुमानजीकी छातीमें बड़े वेगसे चोट की । परन्तु हनुमानजी बड़े भयंकर वीर थे । उन्होंने सुबाहुके छोड़े हुए सभी बाण अपने हाथसे पकड़ लिये और उन्हें तिल-तिल करके तोड़ डाला । वे महान् बलवान् तो थे ही; राजाके रथको अपनी पूँछमें लपेटकर वेगपूर्वक खींच ले चले । उन्हें रथ लेकर जाते देख नृपश्रेष्ठ सुबाहु आकाशमें ही खड़े हो गये और तीखी नोंकवाले सायकोंसे उनकी पूँछ, मुख, हृदय, बाहु और चरणोंमें बारम्बार चोट पहुँचाने लगे । तब कपिवर हनुमानजीको बड़ा क्रोध हुआ । उन्होंने वेगसे उछलकर उत्तम योद्धाओंसे सुशोभित राजा सुबाहुकी छातीमें लात मारी । राजा उनके चरण-प्रहारसे मूर्छित होकर धरतीपर गिर पड़े और मुखसे गरम-गरम रक्त बमन करने लगे । उस समय वे जोर-जोरसे साँस लेते हुए काँप रहे थे । मूर्छावस्थामें ही राजाने एक स्वप्न देखा—‘अयोध्यापुरीमें सरयूके तटपर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी यज्ञ-मण्डपके भीतर विराजमान हैं । यज्ञ करनेवालोंमें श्रेष्ठ अनेक ब्राह्मण उन्हें धेरकर बैठे हुए हैं । ब्रह्मा आदि देवता और करोड़ों ब्रह्माण्डके प्राणी हाथ जोड़े खड़े हैं तथा बारम्बार भगवान्की स्तुति कर रहे हैं । भगवान् श्रीरामका विग्रह श्याम रंगका है, उनके नेत्र सुन्दर हैं । उन्होंने अपने हाथमें मृगका सींग धारण कर रखा है । नारद आदि देवर्षिगण हाथोंसे वीणा बजाते हुए उनका सुयश गान कर रहे हैं । चारों वेद मूर्तिमान् होकर रघुनाथजीकी उपासना करते हैं । संसारमें जो कुछ भी सुन्दर वस्तुएँ हैं, उन सबके दाता पूर्ण ब्रह्म भगवान् श्रीराम ही हैं ।’

इस प्रकार स्वप्न देखते-देखते वे जाग उठे, उन्हें चेत हो आया । फिर तो वे शत्रुघ्नजीके चरणोंकी ओर

पैदल ही चल दिये। धर्मज्ञ महाराजने युद्धके लिये उद्यत हुए सुकेतु, विचित्र और दमनको बुलाकर लड़नेसे रोका और कहा—“अब शीघ्र ही युद्ध बंद करो, दमन! यह बहुत बड़ा अन्याय हुआ, जो तुमने भगवान् श्रीरामके तेजस्वी अश्वको पकड़ लिया। ये श्रीरामचन्द्रजी कार्य और कारणसे परे साक्षात् परब्रह्म हैं, चराचर जगत्के स्वामी हैं, मानव-शरीर धारण करनेपर भी वे वास्तवमें मनुष्य नहीं हैं। इन्हें इस रूपमें जान लेना ही ब्रह्मज्ञान है। इस तत्त्वको मैं अभी समझ पाया हूँ। मेरे पापहीन पुत्रो! पूर्वकालमें असिताङ्गमुनिके शापसे मेरा ज्ञानरूपी धन नष्ट हो गया था। [वह प्रसङ्ग मैं सुना रहा हूँ—] प्राचीन समयकी बात है, मैं तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे तीर्थयात्राके लिये निकला था। उस यात्रामें मुझे अनेकों धर्मज्ञ ऋषि-महर्षियोंके दर्शन हुए। एक दिन ज्ञान-प्राप्तिकी इच्छासे मैं असिताङ्गमुनिकी सेवामें गया। उस समय उन ब्रह्मर्षिने मेरे ऊपर कृपा करके इस प्रकार उपदेश देना आरम्भ किया—‘वे जो अयोध्यापुरीके स्वामी महाराज श्रीरामचन्द्रजी हैं, उन्होंका नाम परब्रह्म है तथा जो उनकी धर्मपत्नी जनककिशोरी भगवती सीता हैं, वे भगवान्की साक्षात् चिन्मयी शक्ति मानी गयी हैं। दुस्तर एवं अपार संसार-सागरसे पार जानेकी इच्छा रखनेवाले योगीजन यम-नियम आदि साधनोंके द्वारा साक्षात् श्रीरघुनाथजीकी ही उपासना करते हैं। वे ही ध्वजामें गरुड़का चिह्न धारण करनेवाले भगवान् नारायण हैं। स्मरण करनेमात्रसे ही वे बड़े-बड़े पापोंको हर लेते हैं। जो विद्वान् उनकी उपासना करेगा, वह इस संसार-समुद्रसे तर जायगा।’ मुनिकी बात सुनकर मैंने उनका उपहास करते हुए कहा—‘राम कौन बड़े शक्तिशाली हैं। ये तो एक साधारण मनुष्य हैं! इसी प्रकार हर्ष और शोकमें दूबी हुई ये जानकीदेवी भी क्या चीज हैं? जो अजन्मा है, उसका जन्म कैसा? तथा जो अकर्ता है, उसके लिये संसारमें आनेका क्या प्रयोजन है? मुने! मुझे तो आप उस तत्त्वका उपदेश दीजिये, जो जन्म, दुःख और जगवस्थासे परे हो।’ मेरे ऐसा कहनेपर उन विद्वान् मुनीश्वरने मुझे शाप दे दिया। वे बोले—‘ओ

नीच! तू श्रीरघुनाथजीके स्वरूपको नहीं जानता तो भी मेरे कथनका प्रतिवाद कर रहा है, इन भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी निन्दा करता है और ‘ये साधारण मनुष्य हैं’ ऐसा कहकर उनका उपहास कर रहा है; इसलिये तू तत्त्वज्ञानसे शून्य होकर केवल पेट पालनेमें लगा रहेगा।’ यह सुनकर मैंने महर्षिके चरण पकड़ लिये और अपने प्रति उनके हृदयमें दयाका सञ्चार किया। वे करुणाके सागर थे, मेरी प्रार्थनासे पिघल गये और बोले—‘राजन्! जब तुम श्रीरघुनाथजीके यज्ञमें विभ्र डालोगे और हनुमानजी वेगपूर्वक तुम्हारे ऊपर चरण-प्रहर करेगे, उसी समय तुम्हें भगवान् श्रीरामके स्वरूपका ज्ञान होगा; अन्यथा अपनी बुद्धिसे तुम उन्हें नहीं जान सकोगे।’ मुनिवर असिताङ्गने पहले ही जो बात बतायी थी, उसका इस समय मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। अतः अब मेरे महाबली सैनिक रघुनाथजीके शोभायमान अश्वको ले आवें। उसके साथ ही मैं बहुत-सा धन-वस्तु तथा यह राज्य भी भगवान्को अर्पण कर दूँगा। वह यज्ञ अत्यन्त पुण्य प्रदान करनेवाला है। उसमें श्रीराम-चन्द्रजीका दर्शन करके मैं कृतार्थ हो जाऊँगा, इसलिये घोड़ेसहित अपना सर्वस्व समर्पण कर देना ही मुझे अच्छा जान पड़ता है।’

उत्तम रीतिसे युद्ध करनेवाले सुबाहुपुत्रोंने पिताकी बात सुनकर बड़ा हर्ष प्रकट किया। वे महाराज सुबाहुको श्रीरघुनाथजीके दर्शनके लिये उत्कण्ठित देखकर उनसे बोले—‘राजन्! हमलोग आपके चरणोंके सिवा और कुछ नहीं जानते, अतः आपके हृदयमें जो शुभ सङ्कल्प प्रकट हुआ है, वह शीघ्र ही पूर्ण होना चाहिये। सफेद चँवरसे सुशोभित, रत्न और माला आदिकी शोभासे सम्पन्न तथा चन्दन आदिके द्वारा चर्चित यह यज्ञ-सम्बन्धी अश्व शत्रुघ्नजीके पास ले जाइये। आपकी आज्ञाके अनुसार उपयोग होनेमें ही इस राज्यकी सार्थकता है। स्वमिन्! प्रचुर समृद्धियोंसे भरे हुए कोष, हाथी, घोड़े, वस्त्र, रत्न, मोती तथा मूँगे आदि द्रव्य लाखोंकी संख्यामें प्रस्तुत हैं। इनके सिवा और भी जो-जो महान् अशुद्धयकी वस्तुएँ हैं, उन सबको

श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें समर्पित कीजिये। महामते ! हम सभी पुत्र आपके किङ्गर हैं, हमें भी भगवान्की सेवामें अर्पण कीजिये ।'

पुत्रोंके ये वचन सुनकर महाराज सुबाहुको बड़ा हर्ष हुआ। वे आज्ञा-पालनके लिये उद्यत हुए अपने वीर पुत्रोंसे इस प्रकार बोले—‘तुम सब लोग हाथोंमें हथियार ले नाना प्रकारके रथोंसे घिरकर कवच आदिसे सुसज्जित हो घोड़ेको यहाँ ले आओ। तत्पश्चात् मैं राजा शत्रुघ्नके पास चलूँगा ।’

शेषजी कहते हैं—राजा सुबाहुके वचन सुनकर विचित्र, दमन, सुकेतु तथा अन्यान्य शूरवीर उनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये उद्यत हो नगरमें गये और उस मनोहर अश्वको, जो सफेद चौंवरसे संयुक्त और खर्णपत्र आदिसे अलङ्कृत था, राजाके सामने ले आये। रत्नमाला आदिसे विभूषित और मनके समान वेगवान् उस अश्वमेध यज्ञके घोड़ेको लाया गया देख बुद्धिमान् राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ परम धार्मिक शत्रुघ्नजीके समीप पैदल ही चले। उन्हें अच्छी तरह मालूम था कि ‘यह धन नक्षर है, जो लोग



इसमें आसक्त होते हैं; उन्हें यह दुःख ही देता है।’ यही सोचकर वे विनाशकी ओर जानेवाले धनका सदुपयोग करनेके लिये वहाँसे चले। निकट जाकर उन्होंने देखा—शत्रुघ्नजी श्वेतछत्रसे सुशोभित हैं तथा मन्त्री सुमातिसे भगवान् श्रीरामकी कथावार्ता पूछ रहे हैं। भयकी बात तो उन्हें छू भी नहीं सकी थी। वे वीरोचित शोभासे उद्दीप हो रहे थे।

उनका दर्शन करके पुत्रसहित राजा सुबाहुने शत्रुघ्नजीके चरणोंमें प्रणाम किया और अत्यन्त हर्षमें भरकर कहा—‘मैं धन्य हो गया।’ उस समय उनका मन एकमात्र श्रीरघुनाथजीके चिन्तनमें लगा हुआ था। शत्रुघ्नने देखा ये उद्घट राजा सुबाहु मेरे प्रेमी होकर मिलने आये हैं, तो वे आसनसे उठ खड़े हुए और सबके साथ बाँहें पसारकर मिले। विपक्षी वीरोंका नाश करनेवाले राजा सुबाहुने शत्रुघ्नजीका भलीभाँति पूजन करके अत्यन्त हर्ष प्राप्त किया और गदगद स्वरसे कहा—‘करुणानिधे ! आज मैं पुत्र, कुटुम्ब और वाहनसहित धन्य हो गया; क्योंकि इस समय मुझे करोड़ों राजाओं-द्वारा अभिवन्दित आपके चरणोंका दर्शन हो रहा है। मेरा पुत्र दमन अभी नादान है, इसीलिये इसने इस श्रेष्ठ अश्वको पकड़ लिया है; आप इसके अनीतिपूर्ण बर्ताविको क्षमा कीजिये। जो सम्पूर्ण देवताओंके भी देवता हैं तथा जो लीलासे ही इस जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं, उन रघुवंशशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीको यह नहीं जानता, इसीसे इसके द्वारा यह अपराध हो गया है। हमारे इस राज्यका प्रत्येक अङ्ग समृद्धिशाली है। सेना और सवारियोंकी संख्या भी बहुत बढ़ी-चढ़ी है। ये सब श्रीरामकी सेवामें समर्पित हैं। ये मेरे पुत्र और हम भी आपहीके हैं। हम सब लोगोंके स्वामी भगवान् श्रीराम ही हैं। हम आपकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करेंगे। मेरी दी हुई ये सभी वस्तुएँ स्वीकार करके इन्हें सफल बनाइये। मेरे पास कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो ग्रहण करनेके योग्य न हो। श्रीरामजीके चरणारविन्दोंके मधुकर हनुमानजी कहाँ हैं ? उन्हींकी कृपासे मैं राजाधिराज भगवान् रामका दर्शन

करूँगा । साधुओंका सङ्ग हो जानेपर इस पृथ्वीपर क्या-क्या नहीं मिल जाता ! मैं महामूढ़ था; किन्तु संतके प्रसादसे ही आज मेरा ब्रह्मशापसे उद्धार हुआ है । अब मैं पद्मपत्रके समान विशाल लोचनोंवाले महाराज श्रीरघुनाथजीका दर्शन करके इस लोकमें जन्म लेनेका सम्पूर्ण एवं दुर्लभ फल प्राप्त करूँगा । मेरी आयुका बहुत बड़ा भाग श्रीरामके वियोगमें ही बीत गया । अब थोड़ी-सी ही आयु शेष रह गयी है; इसमें मैं श्रीरघुनाथजीका कैसे दर्शन करूँगा ? मुझे यज्ञकर्ममें कुशल श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन कराइये, जिनके चरणोंकी धूलिसे पवित्र होकर शिला भी मुनिपत्नी हो गयी तथा युद्धमें जिनके मुखारविन्दका अवलोकन करके अनेकों बीर परमपदको प्राप्त हो गये । जो लोग आदरपूर्वक श्रीरघुनाथजीके नाम लेते हैं, वे उसी परम धामको प्राप्त होते हैं, जिसका योगी लोग चिन्तन किया करते हैं । अयोध्याके लोग धन्य हैं, जो अपने नेत्र-पुटोंके द्वारा श्रीरामके मुखकमलका मकरन्द पान करके सुख पाते और महान् अभ्युदयको प्राप्त होते हैं ।'

शत्रुघ्ने कहा—राजन् ! आप ऐसा क्यों कहते हैं ? आप वृद्ध होनेके नाते मेरे पूज्य हैं । आपका यह सारा राज्य राजकुमार दमनके अधिकारमें रहना चाहिये । क्षत्रियोंका कर्तव्य ही ऐसा है, जो युद्धका अवसर उपस्थित कर देता है । सम्पूर्ण राज्य और यह धन—सब मेरी आज्ञासे लौटा ले जाइये । महीपते ! जिस प्रकार

श्रीरघुनाथजी मेरे लिये मन-वाणीद्वारा सदा ही पूज्य है, उसी प्रकार आप भी पूजनीय होंगे । इस घोड़ेके पीछे चलनेके लिये आप भी तैयार हो जाइये ।

परम बुद्धिमान् शत्रुघ्नजीका कथन सुनकर सुबाहुने अपने पुत्रको राज्यपर अभिषिक्त कर दिया । उस समय शत्रुघ्नजीने उनकी बड़ी सराहना की । तदनन्तर वे महारथियोंसे घिरकर रणभूमिमें गये और पुष्कलके हाथसे मरे हुए अपने पुत्रका विधिपूर्वक दाह-संस्कार करके कुछ देरतक शोकमें डूबे रहे; उनका वह शोक साधारण लोगोंकी ही दृष्टिमें था । वास्तवमें तो वे महारथी नरेश तत्त्वज्ञानी थे; अतः श्रीरघुनाथजीका निरन्तर स्मरण करते हुए उन्होंने ज्ञानके द्वारा अपना समस्त शोक दूर कर दिया । फिर अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर रथपर बैठे और विशाल सेनाके साथ महारथियोंको आगे करके शत्रुघ्नके पास आये । राजा शत्रुघ्ने सुबाहुको सम्पूर्ण सेनाके साथ उपस्थित देख घोड़ेकी रक्षाके लिये जानेका विचार किया । सुबाहुके यहाँसे छूटनेपर वह भालपत्रसे चिह्नित अश्व भारतवर्षकी वामावर्त परिक्रमा करता हुआ पूर्वदिशाके अनेकों देशोंमें गया । उन सभी देशोंमें बड़े-बड़े शूरवीरोंद्वारा पूजित भूपाल उस अश्वको प्रणाम करते थे । कोई भी उसे पकड़ता नहीं था । कोई विचित्र-विचित्र वस्त्र, कोई अपना महान् राज्य तथा कोई धन-वैभव या और कोई वस्तु भेटके लिये लाकर अश्वसहित शत्रुघ्नको प्रणाम करते थे ।



तेजःपुरके राजा सत्यवान्‌की जन्मकथा—सत्यवान्‌का शत्रुघ्नको सर्वस्व-समर्पण

शेषजी कहते हैं—मुनिवर ! सुवर्णपत्रसे शोभा पानेवाला यह यज्ञसम्बन्धी अश्व पूर्वोक्त देशोंमें भ्रमण करता हुआ तेजःपुरमें गया, जहाँके राजा सत्यवान् सत्यधर्मका आश्रय लेकर प्रजाका पालन करते थे । तदनन्तर शत्रुके नगरका विध्वंस करनेवाले श्रीरघुनाथजीके भाई शत्रुघ्नजी करोड़ों वीरोंसे घिरकर घोड़ेके पीछे-पीछे उस राजाके नगरसे होकर निकले । वह नगर बड़ा रमणीय था । चित्र-विचित्र प्राकार उसकी

शोभा बड़ा रहे थे । हजारों देव-मन्दिरोंके कारण वह सब ओरसे शोभायमान दिखायी देता था । भगवान् शङ्करके मस्तकपर निवास करनेवाली महादेवी भगवती भागीरथी वहाँ प्रवाहित हो रही थीं । उनके तटपर ऋषि-महर्षियोंका समुदाय निवास करता था । तेजःपुरमें रहनेवाले प्रत्येक ब्राह्मणके घरमें जो अग्निहोत्रका धुआँ उठता था, वह पापमें डूबे हुए बड़े-बड़े पातकियोंको भी पवित्र कर देता था । उस नगरको देखकर शत्रुघ्ने सुमतिसे पूछा—

'मन्त्रिवर ! यह सामने दिखायी देनेवाला नगर किसका है, जो धर्मपूर्वक पालित होनेके कारण मेरे मनको अपार आनन्द प्रदान करता है ?'

सुमतिने कहा—स्वामिन् ! यहाँके राजा भगवान् विष्णुके भक्त हैं। आप सावधान होकर उनकी कल्याणमयी कथाओंको सुनें। उनका श्रवण करनेसे मनुष्य ब्रह्महत्या-जैसे पापसे भी मुक्त हो जाता है। इस नगरके राजाका नाम है सत्यवान्। वे श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दोंका रस-पान करनेके लिये श्रमर एवं जीवन्मुक्त हैं। उन्हें यज्ञ और उसके अङ्गोंका पूर्ण ज्ञान है। वे महान् कर्मठ और प्रजाजनोंके रक्षक हैं। पूर्वकालमें यहाँ ऋतम्भर नामके एक राजा हो गये हैं। उन्हें कोई सन्तान नहीं थी। उनके कई स्त्रियाँ थीं, परन्तु उनमेंसे किसीके गर्भसे भी राजाको पुत्रकी प्राप्ति नहीं हुई। एक दिन दैववश उनके यहाँ जाबालि नामक मुनि पधारे। राजाने कुशल-प्रश्नके पश्चात् उनसे पुत्र उत्पन्न होनेका उपाय पूछा।

ऋतम्भरने कहा—स्वामिन् ! मैं सन्तानहीन हूँ; मुझे कोई ऐसा उपाय बताइये, जो पुत्र उत्पन्न होनेमें सहायक हो। जिसका प्रयोग करनेसे मेरी वंश-परम्पराकी रक्षा करनेवाला एक श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हो।

राजाकी यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ जाबालिने कहा—“राजन् ! सन्तान-प्राप्तिकी इच्छावाले मनुष्यके लिये तीन प्रकारके उपाय बताये गये हैं—भगवान् विष्णुकी, गौकी अथवा भगवान् शिवकी कृपा; अतः तुम देवस्वरूपा गौकी पूजा करो; क्योंकि उसकी पूँछ, मुँह, सींग तथा पृष्ठभागमें भी देवताओंका निवास है। जो प्रतिदिन अपने घरपर घास आदिके द्वारा गौकी पूजा करता है, उसपर देवता और पितर सदा सन्तुष्ट रहते हैं। जो उत्तम व्रतका पालन करनेवाला मनुष्य प्रतिदिन

नियमपूर्वक गौको भोजन देता है, उसके सभी मनोरथ उस सत्य धर्मका अनुष्ठान करनेके कारण पूर्ण हो जाते हैं। यदि घरमें प्यासी हुई गाय बँधी रहे, रजस्वला कन्या अविवाहित हो तथा देवताके विग्रहपर दूसरे दिनका चढ़ाया हुआ निर्माल्य पड़ा रहे तो ये सभी दोष पहलेके किये हुए पुण्यको नष्ट कर डालते हैं। जो मनुष्य घास चरती हुई गौको रोकता है, उसके पूर्वज पितर पतनोन्मुख होकर काँप उठते हैं। जो मूढ़बुद्धि मानव गौको लाठीसे मारता है, उसे हाथसे हीन होकर यमराजके नगरमें जाना पड़ता है।* जो गौके शरीरसे डाँस और मच्छरोंको हटाता है, उसके पूर्वज कृतार्थ होकर अधिक प्रसन्नताके कारण नाच उठते हैं और कहते हैं ‘हमारा यह वंशज बड़ा भाग्यवान् है, अपनी गो-सेवाके द्वारा यह हमें तार देगा।’

“इस विषयमें जानकार लोग एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, जो धर्मराजके नगरमें राजा जनकके सामने अद्भुत रूपसे घटित हुआ था। एक समयकी बात है, राजा जनकने योगके द्वारा अपने शरीरका परित्याग कर दिया। उस समय उनके पास एक विमान आया, जो क्षुद्र-घण्टिकाओंसे शोभा पा रहा था। राजा दिव्य-देहसे विमानपर आरूढ़ होकर चल दिये और उनके त्यागे हुए शरीरको सेवकगण उठा ले गये। राजा जनक धर्मराजकी संयमनीपुरीके निकटवर्ती मार्गसे जा रहे थे। उस समय करोड़ों नरकोंमें जो पापाचारी जीव यातना भोग रहे थे, वे जनकके शरीरकी वायुका स्पर्श पाकर सुखी हो गये। परन्तु जब वे उस स्थानसे आगे निकले तो पापपीड़ित प्राणी उन्हें जाते देख भयभीत होकर जोर-जोरसे चील्कार करने लगे। वे नहीं चाहते थे कि राजा जनकसे वियोग हो। उन्होंने करुणा-जनक वाणीमें कहा—‘पुण्यात्मन् ! यहाँसे न जाओ। तुम्हरे

* तृष्णिता गौगृहि बद्धा गेहे कन्या रजस्वला। देवताश्च सनिर्माल्या हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥

यो वै गां प्रतिषिध्येत चरत्तों स्वं तृणं नरः। तस्य पूर्वे च पितरः कम्पते पतनोन्मुखाः ॥

यो वै ताडयते यष्ट्या धेनुं मत्यो विमूढधीः। धर्मराजस्य नगरे स याति करवर्जितः ॥ (३०। २७—२९)

शरीरको छूकर चलनेवाली वायुका स्पर्श पाकर हम यातनापीडित प्राणियोंको बड़ा सुख मिल रहा है।'

"सजा बड़े धर्मात्मा थे, उन दुःखी जीवोंकी पुकार सुनकर उनके हृदयमें करुणा भर आयी। वे सोचने लगे—'यदि मेरे रहनेसे इन प्राणियोंको सुख होता है, तो अब मैं इसी नगरमें निवास करूँगा; यही मेरे लिये मनोहर स्वर्ग है।' ऐसा विचार करके राजा जनक दुःखी प्राणियोंको सुख पहुँचानेके लिये वही—नरकके दरवाजेपर ही ठहर गये। उस समय उनका हृदय दयासे परिपूर्ण हो रहा था। इतनेहीमें नरकके उस दुःखदायी द्वारपर नाना प्रकार पातकके करनेवाले प्राणियोंको कठोर यातना देते हुए स्वयं धर्मराज उपस्थित हुए। उन्होंने देखा, महान् पुण्यात्मा तथा दयालु राजा जनक विमानपर आरूढ़ हो नरकके दरवाजेपर खड़े हैं। उन्हें देखकर प्रेतराज हँस पड़े और बोले—'राजन् ! तुम तो समस्त धर्मात्माओंके शिरोमणि हो, भला तुम यहाँ कैसे आये ? यह स्थान तो प्राणियोंकी हिसा करनेवाले पापाचारी एवं दुष्टात्मा जीवोंके लिये है। यहाँ तुम्हारे समान पुण्यात्मा पुरुष नहीं आते। यहाँ उन्हीं मनुष्योंका आगमन होता है, जो अन्य प्राणियोंसे द्रोह करते, दूसरोंपर कलङ्क लगाते तथा औरेंका धन लूट-खसोटकर जीविका चलाते हैं। जो अपनी सेवामें लगी हुई धर्म-परायणा पलीको बिना किसी अपराधके त्याग देता है, उसको भी यहाँ अना पड़ता है। जो धनके लालचमें फँसकर मित्रके साथ धोखा करता है, वह मनुष्य यहाँ आकर मेरे हाथसे भयङ्कर यातना प्राप्त करता है। जो मूढ़चित्त मानव दम्प, द्वेष अथवा उपहासवश मन, वाणी एवं क्रियाद्वारा कभी भगवान् श्रीरामका स्मरण नहीं करता, उसे बांधकर मैं नरकोंमें डाल देता हूँ और अच्छी तरह पकाता हूँ। जिन्होंने नरकके कष्टका निवारण करनेवाले रमानाथ

भगवान् श्रीविष्णुका स्मरण किया है, वे मेरे स्थानको छोड़कर बहुत शीघ्र वैकुण्ठधामको प्राप्त होते हैं। मनुष्योंके शरीरमें तभीतक पाप ठहर पाता है, जबतक कि वे अपनी जिह्वासे श्रीराम-नामका उच्चारण नहीं करते।* महामते ! जो बड़े-बड़े पापोंका आचरण करनेवाले हैं, उन्हीं लोगोंको मेरे दूत यहाँ ले आते हैं ! तुम्हरे-जैसे पुण्यात्माओंकी ओर तो वे देख ही नहीं सकते; अतः महाराज ! यहाँसे जाओ और अनेक प्रकारके दिव्य भोगोंका उपभोग करो। इस श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ होकर अपने उपार्जित किये हुए पुण्यको भोगो।'

"जनकने कहा—'नाथ ! मुझे इन दुःखी जीवोंपर दया आती है, अतः इन्हें छोड़कर मैं नहीं जा सकता। मेरे शरीरकी वायुका स्पर्श पाकर इन लोगोंको सुख मिल रहा है। धर्मराज ! यदि आप नरकमें पड़े हुए इन सभी प्राणियोंको छोड़ दें, तो मैं पुण्यात्माओंके निवासस्थान स्वर्गको सुखपूर्वक जा सकता हूँ।'

"धर्मराज बोले—राजन् ! [यह जो तुम्हारे सामने खड़ा है] इस पापीने अपने मित्रकी पलीके साथ, जो इसके ऊपर पूर्ण विश्वास करती थी, बलात्कार किया है; इसलिये मैंने इसे लोहशङ्कु नामक नरकमें डालकर दस हजार वर्षोंतक पकाया है। इसके पश्चात् इसे सूअरकी योनिमें डालकर अन्तमें मनुष्यके शरीरमें उत्पन्न करना है। मनुष्य-योनिमें यह नपुंसक होगा। इस दूसरे पापीने अनेकों बार बलपूर्वक परायी झिल्लियोंका आलिङ्गन किया है; इसलिये यह सौ वर्षोंतक रौरव नरकमें पकाया जायगा और यह जो पापी खड़ा है, यह बड़ी नीच बुद्धिका है। इसने दूसरोंका धन चुराकर स्वयं भोगा है; इसलिये इसके दोनों हाथ काटकर मैं इसे पूयशोणित नामक नरकमें पकाऊँगा। इसने सायंकालके समय

* ये गम्भीरन सा वाचा कर्मणा दम्पतोऽपि वा । द्वेषद्वा चोपहासाद्वा न स्मरत्येव मूढधीः ॥
तं बप्नामि पुनस्त्वेषु निक्षिप्य श्रपयामि च । यैः स्मृतो वै रमानाथो नरकफ्लेशवारकः ॥
ते मत्स्थानं विहायाशु वैकुण्ठात्म्यं प्रयान्त्यहो । तावत्पापं मनुष्याणामङ्गेषु नृप तिष्ठति ॥
यावद्वामं रसनया न गृह्णति सुदुर्मतिः ॥

भूखसे पीड़ित हो घरपर आये हुए अतिथिका वचनद्वारा भी स्वागत-सत्कार नहीं किया है; अतः इसे अन्धकारसे भरे हुए तामिस नामक नरकमें गिराना उचित है। वहाँ भ्रमरोंसे पीड़ित होकर यह सौ बर्षोंतक यातना भोगे। यह पापी उच्च स्वरसे दूसरोंकी निन्दा करते हुए कभी लज्जित नहीं हुआ है तथा उसने भी कान लगा-लगाकर अनेकों बार दूसरोंकी निन्दा सुनी है; अतः ये दोनों पापी अन्धकूपमें पड़कर दुःख-पर-दुःख उठा रहे हैं। यह जो अत्यन्त उद्धिग्र दिखायी दे रहा है, मित्रोंसे द्रोह करनेवाला है, इसीलिये इसे रौरव नरकमें पकाया जाता है। नरश्रेष्ठ ! इन सभी पापियोंको इनके पापोंका भोग कराकर छुटकारा दूँगा। अतः तुम उत्तम लोकोंमें जाओ; क्योंकि तुमने पुण्य-राशिका उपार्जन किया है।

“जनकने पूछा—धर्मराज ! इन दुःखी जीवोंका नरकसे उद्धार कैसे होगा ? आप वह उपाय बतावें, जिसका अनुष्ठान करनेसे इन्हें सुख मिले।

“धर्मराज बोले—महाराज ! इन्होंने कभी भगवान् विष्णुकी आराधना नहीं की, उनकी कथा नहीं सुनी, फिर इन पापियोंको नरकसे छुटकारा कैसे मिल सकता है ! इन्होंने बड़े-बड़े पाप किये हैं तो भी यदि तुम इन्हें छुड़ाना चाहते हो तो अपना पुण्य अर्पण करो। कौन-सा पुण्य ? सो मैं बतलाता हूँ। एक दिन प्रातः-काल उठकर तुमने शुद्ध चित्तसे श्रीरघुनाथजीका ध्यान किया था, जिनका नाम महान् पापोंका भी नाश करनेवाला है। नरश्रेष्ठ ! उस दिन तुमने जो अकस्मात् ‘राम-राम’ का उच्चारण किया था, उसीका पुण्य इन पापियोंको दे डालो; जिससे इनका नरकसे उद्धार हो जाय।”

जाबालि कहते हैं—महाराज ! बुद्धिमान् धर्मराजके उपर्युक्त वचन सुनकर राजा जनकने अपने जीवनभरका कमाया हुआ पुण्य उन पापियोंको दे डाला। उनके सङ्कल्प करते ही नरकमें पड़े हुए जीव तत्क्षण वहाँसे मुक्त हो गये और दिव्य शरीर धारण करके जनकसे बोले—‘राजन् ! आपकी कृपासे हमलोग एक ही क्षणमें इस दुःखदायी नरकसे छुटकारा पा गये, अब हम परमधामको जा रहे हैं।’ राजा जनक सम्पूर्ण प्राणियों-

पर दया करनेवाले थे; उन्होंने नरकसे निकले हुए प्राणियोंका सूर्यके समान तेजस्वी रूप देखकर मन-ही-मन बड़े सन्तोषका अनुभव किया। वे सभी प्राणी दयासागर महाराज जनककी प्रशंसा करते हुए दिव्य लोकको चले गये। नरकस्थ प्राणियोंके चले जानेपर राजा जनकने सम्पूर्ण धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ यमराजसे प्रश्न किया।

राजाने कहा—धर्मराज ! आपने कहा था कि पाप करनेवाले मनुष्य ही आपके स्थानपर आते हैं, धर्मिक चर्चामें लगे रहनेवाले जीवोंका यहाँ आगमन नहीं होता। ऐसी दशामें मेरा यहाँ किस पापके कारण आना हुआ है ? आप धर्मात्मा हैं; इसलिये मेरे पापका समस्त कारण आरम्भसे ही बतावें।

धर्मराज बोले—राजन् ! तुम्हारा पुण्य बहुत बड़ा है। इस पृथ्वीपर तुम्हारे समान पुण्य किसीका नहीं है। तुम श्रीरघुनाथजीके युगलचरणारविन्दोंका मकरन्द पान करनेवाले भ्रमर हो। तुम्हारी कीर्तिमयी गङ्गा मलसे भरे हुए समस्त पापियोंको पवित्र कर देती है। वह अत्यन्त आनन्द प्रदान करनेवाली और दुष्टोंको तारनेवाली है। तथापि तुम्हारा एक छोटा-सा पाप भी है, जिसके कारण तुम पुण्यसे भरे होनेपर भी संयमनीपुरीके पास आये हो। एक समयकी बात है—एक गाय कहाँ चर रही थी, तुमने पहुँचकर उसके चरनमें रुकावट डाल दी। उसी पापका यह फल है कि तुम्हें नरकका दरवाजा देखना पड़ा है। इस समय तुम उससे छुटकारा पा गये तथा तुम्हारा पुण्य पहलेसे बहुत बढ़ गया; अतः अपने पुण्यद्वारा उपार्जित नाना प्रकारके उत्तम भोगोंका उपभोग करो। श्रीरघुनाथजी करुणाके सागर हैं। उन्होंने इन दुःखी जीवोंका दुःख दूर करनेके लिये ही संयमनीके इस महामार्गमें तुम-जैसे वैष्णवको भेज दिया है। सुव्रत ! यदि तुम इस मार्गसे नहीं आते तो इन बेचारोंका नरकसे उद्धार कैसे होता ! महामते ! दूसरोंके दुःखसे दुःखी होनेवाले तुम्हारे-जैसे दया-धाम महात्मा आर्त प्राणियोंका दुःख दूर करते ही हैं।

जाबालि कहते हैं—ऐसा कहते हुए यमराजको प्रणाम करके राजा जनक परमधामको चले गये।

इसलिये नृपश्रेष्ठ ! तुम गौकी पूजा करो; वह सन्तुष्ट होनेपर तुम्हें शीघ्र ही धर्मपरायण पुत्र देगी।

सुमति कहते हैं—सुमित्रानन्दन ! जाबालिके मुँहसे धेनु-पूजाकी बात सुनकर राजा ऋतम्भरने आदर-पूर्वक पूछा—‘मुने ! गौकी किस प्रकार यत्पूर्वक पूजा करनी चाहिये ? पूजा करनेसे वह मनुष्यको कैसा बना देती है ?’ तब जाबालिने विधिके अनुसार धेनु-पूजाका

इस प्रकार वर्णन किया—‘राजन् ! गो-सेवाका व्रत लेनेवाला पुरुष प्रतिदिन गौको चरानेके लिये जंगलमें जाय। गायको यव खिलाकर उसके गोबरमें जो यव आ जायँ, उनका संग्रह करे। पुत्रकी इच्छा रखनेवाले पुरुषके लिये उन्हीं यवोंको भक्षण करनेका विधान है। जब गौ जल पीये तभी उसको भी पवित्र जल पीना चाहिये। जब वह ऊँचे स्थानमें रहे तो उसको उससे नीचे स्थानमें रहना चाहिये, प्रतिदिन गौके शरीरसे डाँस और मच्छरोंको हटावे और स्वयं ही उसके खानेके लिये घास ले आवे। इस प्रकार सेवामें लगे रहनेपर गौ तुम्हें धर्मपरायण पुत्र प्रदान करेगी।’

जाबालि मुनिकी यह बात सुनकर राजा ऋतम्भरने श्रीरघुनाथजीका स्मरण किया और शुद्धचित्त होकर व्रतका पालन आरम्भ किया। वे पहले बताये अनुसार धेनुकी रक्षा करते हुए उसे चरानेके लिये प्रतिदिन महान् वनमें जाया करते थे। श्रीरामचन्द्रजीके नामका स्मरण करना और सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें लगे रहना—यही उनका प्रतिदिनका कार्य था। उनकी सेवासे सन्तुष्ट होकर सुरभिने कहा—‘राजन् ! तुम अपने हार्दिक अभिप्रायके अनुसार मुझसे कोई कर माँगो, जो तुम्हारे मनको प्रिय लगे।’ तब राजा बोले—‘देवि ! मुझे ऐसा पुत्र दो, जो परम सुन्दर, श्रीरघुनाथजीका भक्त, पिताका सेवक तथा अपने धर्मका पालन करनेवाला हो।’ पुत्रकी इच्छा रखनेवाले राजाको मनोवाञ्छित वरदान देकर दयामयी देवी कामधेनु वहाँसे अन्तर्धान हो गयीं। समय आनेपर राजाको पुत्रकी प्राप्ति हुई, जो परम वैष्णव—श्रीरामचन्द्रजीका सेवक हुआ। पिताने उसका नाम सत्यवान् रखा। सत्यवान् बड़े ही पितृभक्त और इन्द्रके

समान पराक्रमी हुए। उनको पुत्रके रूपमें पाकर राजा ऋतम्भरको बड़ी प्रसन्नता हुई। अपने पुत्रको धार्मिक जानकर राजा हृषीमें मग्न रहते थे। वे राज्यका भर सत्यवान्को ही सौंप स्वयं तपस्याके लिये वनमें चले गये। वहाँ भक्तिपूर्ण हृदयसे भगवान् हृषीकेशकी आराधना करके वे निष्पाप हो गये और शरीरसहित भगवद्धमको प्राप्त हुए।

शत्रुघ्नजी ! ऋतम्भरके चले जानेपर राजा सत्यवानने भी अपने धर्मके अनुष्टानसे लोकनाथ श्रीरघुनाथजीको सन्तुष्ट किया। भगवान् रमानाथने प्रसन्न होकर सत्यवान्को अपने चरणकमलोंमें अविचल भक्ति प्रदान की, जो यंज्ञ करनेवाले पुरुषोंके लिये करोड़ों पुण्योंके द्वारा भी दुर्लभ है। वे प्रतिदिन सुस्थिर चित्तसे सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाली श्रीरघुनाथजीकी कथाका आयोजन करते हैं। उनके हृदयमें सबके प्रति दया भरी हुई है। जो लोग रमानाथ श्रीरघुनाथजीका पूजन नहीं करते, उनको वे इतना कठोर दण्ड देते हैं, जो यमराजके लिये भी भयङ्कर है। आठ वर्षके बाद अस्सी वर्षकी अवस्था होनेतक सभी मनुष्योंसे वे एकादशीका व्रत कराया करते हैं। तुलसीकी सेवा उन्हें बड़ी प्रिय है। लक्ष्मीपतिके चरणकमलोंमें चढ़ी हुई उत्तम माला उनके गलेसे कभी दूर नहीं होती है [अपनी भक्तिके कारण] वे ऋषियोंके भी पूजनीय हो गये हैं, फिर औरोंके लिये क्यों न होंगे। श्रीरघुनाथजीके स्मरणसे तथा उनके प्रति प्रेम करनेसे राजा सत्यवान्के सारे पाप धूल गये हैं, सम्पूर्ण अमङ्गल नष्ट हो गये हैं। ये श्रीरामचन्द्रजीके अद्भुत अश्वको पहचानकर यहाँ आयेंगे और तुम्हें अपना यह अकण्टक राज्य समर्पित करेंगे। राजन् ! जिसके विषयमें तुमने पूछा था, वह उत्तम प्रसंग मैंने तुमको सुना दिया।

शेषजी कहते हैं—तदनन्तर नाना प्रकारके आश्वर्योंसे युक्त वह यज्ञसम्बन्धी अश्व राजा सत्यवान्के नगरमें प्रविष्ट हुआ। उसे देखकर वहाँकी सारी जनताने राजाके पास जा निवेदन किया—‘महाराज ! भगवान् श्रीरामका अश्व इस नगरके मध्यसे होकर आ रहा है। शत्रुघ्न उसके रक्षक हैं।’ ‘राम’ यह दो अक्षरोंका

अत्यन्त मनोरम नाम सुनकर सत्यवान्‌के हृदयमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उनकी वाणी गदगद हो गयी। वे कहने लगे—‘जिन भगवान् श्रीरामको मैं सदा अपने हृदयमें धारण करता हूँ, मनमें चिन्तन करता हूँ उन्हींका अश्व शत्रुघ्नजीके साथ मेरे नगरमें आया है। उसके पास श्रीरामके चरणोंकी सेवा करनेवाले हनुमान्‌जी भी होंगे, जो कभी भी श्रीरघुनाथजीको अपने मनसे नहीं बिसारते। जहाँ शत्रुघ्न हैं, जहाँ वायुनन्दन हनुमान्‌जी हैं तथा जहाँ श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंकी सेवामें रहनेवाले अन्य लोग मौजूद हैं, वहीं मैं भी जाता हूँ।’ उन्होंने मन्त्रीको आज्ञा दी—‘तुम समूचे राज्यका बहुमूल्य धन लेकर शीघ्र ही मेरे साथ आओ। मैं श्रीरघुनाथजीके श्रेष्ठ अश्वकी रक्षा अथवा श्रीरामचरणोंकी सुदुर्लभ सेवा करनेके लिये जाऊँगा।’ यह कहकर वे सैनिकोंके साथ

शत्रुघ्नके पास चल दिये। इतनेहीमें श्रीरामके छोटे भाई शत्रुघ्न भी राजधानीमें आ पहुँचे। राजा सत्यवान् मन्त्रियोंके साथ उनके पास आये और चरणोंमें पड़कर उन्हें अपना समृद्धिशाली राज्य अर्पण कर दिया। शत्रुघ्नने राजा सत्यवान्‌को श्रीरामभक्त जानकर उनका विशाल राज्य उन्हींके पुत्रको, जिसका नाम रुक्म था, दे दिया। सत्यवान् हनुमान्‌जीसे मिलनेके पश्चात् श्रीरामसेवक सुबाहुसे मिले तथा और भी जितने राम-भक्त वहाँ पधारे थे, उन सबको हृदयसे लगाकर उन्होंने अपने-आपको कृतार्थ माना। फिर शत्रुघ्नजीके साथ होकर वे मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। इतनेहीमें वीर पुरुषोंद्वारा सुरक्षित वह अश्व दूर निकल गया; अतः शूरवीरोंसे घिरे हुए शत्रुघ्नजी भी राजा सत्यवान्‌को साथ लेकर वहाँसे चल दिये।



शत्रुघ्नके द्वारा विद्युन्माली और उग्रदंष्ट्रका वध तथा उसके द्वारा चुराये हुए अश्वकी प्राप्ति

शेषजी कहते हैं—मुनिवर ! रथियोंमें श्रेष्ठ शत्रुघ्न आदि बहुसंख्यक राजे-महाराजे करोड़ों रथोंके साथ चले जा रहे थे, इसी समय उस मार्गपर सहस्रा अत्यन्त भयझूर अश्वकार छा गया; जिसमें बुद्धिमान् पुरुषोंको भी अपने या परायेकी पहचान नहीं हो पाती थी। तदनन्तर पातालनिवासी विद्युन्माली नामक राक्षस निशाचरोंके समुदायसे घिरा हुआ वहाँ आया। वह रावणका हितैषी सुहृद् था। उसने घोड़ेको चुरा लिया। फिर तो दो ही घड़ीके पश्चात् वह सारा अश्वकार नष्ट हो गया। आकाश स्वच्छ दिखायी देने लगा। शत्रुघ्न आदि वीरोंने एक-दूसरेसे पूछा—‘घोड़ा कहाँ है ?’ उस अश्वराजके विषयमें परस्पर पूछ-ताछ करते हुए वे सब लोग कहने लगे—‘अश्वमेधका अश्व कहाँ है ? किस दुर्बुद्धिने उसका अपहरण किया है ?’ वे इस प्रकार कह ही रहे थे कि राक्षसराज विद्युन्माली अपने समस्त योद्धाओंके साथ दिखायी दिया। उसके योद्धा रथपर विराजमान हो अपने शौर्यसे शोभा पा रहे थे। विद्युन्माली स्वयं एक श्रेष्ठ विमानपर बैठा था और प्रधान-प्रधान राक्षस उसे

चारों ओरसे घेरकर खड़े थे। उन राक्षसोंके मुख दूषित एवं विकराल थे, दाढ़ें लम्बी थीं और आकृति बड़ी भयानक थी। वे ऐसे दिखायी दे रहे थे, मानो शत्रुघ्नकी सेनाको निगल जानेके लिये तैयार हों। तब सैनिकोंने राजाओंमें श्रेष्ठ शत्रुघ्नसे निवेदन किया—राजन् ! एक राक्षसने घोड़ेको पकड़ लिया है, अब आपको जैसा उचित जान पड़े वैसा कीजिये।’ उनकी बात सुनकर शत्रुघ्न अत्यन्त रोषमें भर गये और बोले—‘कौन ऐसा पराक्रमी राक्षस है, जिसने मेरे घोड़ेको पकड़ रखा है ?’ फिर वे मन्त्रीसे बोले—‘मन्त्रिवर ! बताओ, इस राक्षससे लोहा लेनेके लिये किन-किन वीरोंको नियुक्त करना चाहिये, जो उसका वध करनेके लिये उत्साह रखनेवाले अत्यन्त शूर, महान् शास्त्र धारण करनेवाले तथा प्रधान अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हों।’

सुप्रतिने कहा—हमारी सेनामें कुमार पुष्कल महान् वीर, अस्त्र-शास्त्रोंके ज्ञाता और शत्रुओंको ताप देनेवाले हैं; अतः ये ही विजयके लिये उद्यत हो युद्धमें उस राक्षसको जीतनेके लिये जायें। इनके सिवा

लक्ष्मीनिधि, हनुमानजी तथा अन्य योद्धा भी युद्धके लिये प्रस्थित हों। वीरोंमें अग्रगण्य अमात्य सुमतिके ऐसा कहनेपर शत्रुघ्ने संग्राम-कुशल वीर योद्धाओंसे कहा—‘सब प्रकारके अख-शस्त्रोंमें प्रवीण पुष्कल आदि जो-जो वीर यहाँ उपस्थित हैं, वे राक्षसको मारनेके विषयमें मेरे सामने कोई प्रतिज्ञा करें।’

पुष्कल बोले—राजन्! मेरी प्रतिज्ञा सुनिये, मैं अपने पराक्रमके भरोसे सब लोगोंके सुनते हुए यह अद्भुत प्रतिज्ञा कर रहा हूँ। यदि मैं अपने धनुषसे छूटे हुए बाणोंकी तीखी धारसे उस दैत्यको मूर्च्छित न कर दूँ—मुखपर बाल छितराये यदि वह धरतीपर न पड़ जाय, यदि उनके महाबली सैनिक मेरे बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर धराशायी न हो जायें तथा यदि मैं अपनी बात सच्ची करके न दिखा सकूँ तो मुझे वही पाप लगे, जो विष्णु और शिवमें तथा शिव और शक्तिमें भेद-दृष्टि रखनेवालेको लगता है। श्रीरघुनाथजीके चरण-कमलोंमें मेरी निश्चल भक्ति है, वही मेरी कही हुई सब बातें सत्य करेगी।

पुष्कलकी प्रतिज्ञा सुनकर युद्ध-कुशल हनुमानजीने श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका स्मरण करते हुए यह कल्याणमय वचन कहा—‘योगीजन अपने हृदयमें नित्य-निरन्तर जिनका ध्यान किया करते हैं, देवता और असुर भी अपना मुकुटमण्डित मस्तक झुकाकर जिनके चरणोंमें प्रणाम करते हैं तथा बड़े-बड़े लोकेश्वर जिनकी पूजा करते हैं, वे अयोध्याके अधिनायक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी मेरे स्वामी हैं। मैं उनका स्मरण करके जो कुछ कहता हूँ, वह सब सत्य होगा। राजन्! अपनी इच्छाके अनुसार चलनेवाले विमानपर बैठा हुआ यह दुर्बल एवं तुच्छ दैत्य किस गिनतीमें है! शीघ्र आज्ञा दीजिये, मैं अकेला ही इसे मार गिराऊँगा। राजा श्रीरघुनाथजी तथा महारानी जनककिशोरीकी कृपासे इस पृथ्वीपर कोई ऐसा कार्य नहीं है, जो मेरे लिये कभी भी असाध्य हो। यदि मेरी कही हुई यह बात झूठी हो तो मैं तत्काल श्रीरामचन्द्रजीकी भक्तिसे दूर हो जाऊँ। यदि मैं अपनी बात झूठी कर दूँ तो मुझे वही पाप लगे, जो-

काममोहित शूद्रको मोहवश ब्राह्मणीके साथ समागम करनेसे लगता है। जिसको सूँधनेसे मनुष्य नरकमें पड़ता है, जिसका स्पर्श करनेसे रौरव नरककी यातना भोगनी पड़ती है, उस मदिराका जो पुरुष जिह्वाके स्वादके वशीभूत होकर लोलुपतावश पान करता है, उसको जो पाप होता है वह मुझे ही लगे, यदि मैं श्रीरामजीकी कृपाके बलसे अपनी प्रतिज्ञाको सत्य न कर सकूँ तो निश्चय ही उपर्युक्त पापोंका भागी होऊँ।

उनके ऐसा कहनेपर दूसरे-दूसरे महावीर योद्धाओंने आवेशमें आकर अपने-अपने पराक्रमसे शोभा पानेवाली बड़ी-बड़ी प्रतिज्ञाएँ कीं। उस समय शत्रुघ्ने भी उन युद्धविशारद वीरोंको साधुवाद देकर उनकी प्रशंसा की और सबके देखते-देखते प्रतिज्ञा करते हुए कहा—‘वीरो! अब मैं तुमलोगोंके सामने अपनी प्रतिज्ञा बता रहा हूँ। यदि मैं उसके मस्तकको अपने सायकोंसे काटकर, छिन्न-भिन्न करके धड़ और विमानसे नीचे पृथ्वीपर न गिरा दूँ। तो आज निश्चय ही मुझे वह पाप लगे, जो झूठी गवाही देने, सुवर्ण चुराने और ब्राह्मणकी निन्दा करनेसे लगता है।’

शत्रुघ्नके ये वचन सुनकर वीर-पूजित योद्धा कहने लगे—‘श्रीरघुनाथजीके अनुज! आप धन्य हैं। आपके सिवा दूसरा कौन ऐसी प्रतिज्ञा कर सकता है। यह दुष्ट राक्षस क्या चीज है! इसका तुच्छ बल किस गिनतीमें है! महामते! आप एक ही क्षणमें इसका नाश कर डालेंगे।’ ऐसा कहकर वे महावीर योद्धा अख-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो गये और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये युद्धके मैदानमें उस राक्षसकी ओर प्रसन्नतापूर्वक चले। वह इच्छानुसार चलनेवाले विमानपर बैठा था। पुष्कल आदि वीरोंको उपस्थित देख उस राक्षसने कहा—‘अे! राम कहाँ है? मेरे सखा रावणको मारकर वह कहाँ चला गया है? आज उसको और उसके भाईको भी मारकर उन दोनोंके कण्ठसे निकलती हुई रक्तकी धाराका पान करूँगा और इस प्रकार रावण-वधका बदला चुकाऊँगा।’

पुष्कलने कहा—दुर्बुद्धि निशाचर! क्यों इतनी

शेषी बघार रहा है ? अच्छे योद्धा संग्राममें डॉंग नहीं हाँकते, अपने अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करके पराक्रम दिखाते हैं। जिन्होंने सुहृद् सेना और सवारियोंसहित रावणका संहार किया है, उन भगवान् श्रीरामके अश्वको लेकर तू कहाँ जा सकता है ?

शेषजी कहते हैं—युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले वीर पुष्कल्को ऐसी बातें करते देख राक्षसराज विद्युन्मालीने उनकी छातीको लक्ष्य करके बड़े वेगसे शक्तिका प्रहर किया। उसे आती देख पुष्कलने तेज धारवाले तीखे बाणोंसे उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले तथा अपने धनुषपर बहुत-से बाणोंका सम्मान किया, जो बड़े ही तीक्ष्ण और मनके समान वेगशाली थे। वे बाण राक्षसकी छातीमें लगकर तुरंत ही रक्तकी धारा बहाने लगे; पुष्कलके बाणप्रहरसे राक्षसपर मोह छा गया, उसके मस्तिष्कमें चक्कर आने लगा तथा वह अचेत होकर अपने कामग विमानसे धरतीपर गिर पड़ा। विद्युन्मालीका छोटा भाई उग्रदंष्ट्र वहाँ मौजूद था। उसने अपने बड़े भाईको जब गिरते देखा तो उसे पकड़ लिया और पुनः विमानके भीतर ही पहुँचा दिया; क्योंकि विमानके बाहर उसे शत्रुकी ओरसे अनिष्ट प्राप्त होनेकी आशङ्का थी। उसने बलवानोंमें श्रेष्ठ पुष्कलसे बड़े रोषके साथ कहा—‘दुर्मते ! मेरे भाईको गिराकर अब तू कहाँ जायगा।’ पुष्कलके नेत्र भी क्रोधसे लाल हो उठे थे। उग्रदंष्ट्र उपर्युक्त बातें कह ही रहा था कि उन्होंने दस बाणोंसे उस दुष्टकी छातीमें वेगपूर्वक प्रहर किया। उनकी चोटसे व्यथित होकर दैत्यने एक जलता हुआ त्रिशूल हाथमें लिया, जिससे अग्निकी तीन शिखाएँ उठ रही थीं। महावीर पुष्कलके हृदयमें वह भयङ्कर त्रिशूल लगा और वे गहरी मूर्छाको प्राप्त हो रथपर गिर पड़े। पुष्कलको मूर्च्छित जानकर पवननन्दन हनुमान्जी मन-ही-मन क्रोधसे अस्थिर हो उठे और उस राक्षससे बोले—‘दुर्बुद्ध ! मैं युद्धके लिये उपस्थित हूँ, मेरे रहते तू कहाँ जा संकता है ? तू घोड़ेका चोर है और सामने आ गया है, अतः मैं लातोंसे मारकर तेरे प्राण ले लूँगा।’ ऐसा कहकर हनुमान्जी आकाशमें स्थित हो गये और

विमानपर बैठे हुए शत्रुपक्षके योद्धा महान् दैत्योंको नखोंसे विदीर्ण करके मौतके घाट उतारने लगे। किन्हींको पूँछसे मार डाला, किन्हींको पैरेसे कुचल डाला तथा कितनोंको उन्होंने दोनों हाथोंसे चीर डाला। जहाँ-जहाँ वह विमान जाता था, वहाँ-वहीं वायु-नन्दन हनुमान्जी इच्छानुसार रूप धारण करके प्रहर करते हुए ही दिखायी देते थे। इस प्रकार जब विमानपर बैठे हुए बड़े-बड़े योद्धा व्याकुल हो गये तब दैत्यराज उग्रदंष्ट्रने हनुमान्जीपर आक्रमण किया। उस दुर्बुद्धने प्रज्वलित अग्निके समान कान्ति धारण करनेवाले अत्यन्त तीखे त्रिशूलसे उनके ऊपर प्रहार किया; परन्तु महाबली हनुमान्जीने अपने पास आये हुए उस त्रिशूलको अपने मुँहमें ले लिया। यद्यपि वह सारा-सा-सारा लोहेका बना हुआ था, तथापि उसे दाँतोंसे चबाकर उन्होंने चूर्ण कर डाला तथा उस दैत्यको कई तमाचे जड़ दिये। उनके थप्पड़ोंकी मार खाकर राक्षसको बड़ी पीड़ा हुई और उसने सम्पूर्ण लोकोंमें भय उत्पन्न करनेवाली मायाका प्रयोग किया। उस समय चारों ओर घोर अस्थकार छा गया, जिसमें कोई भी दिखायी नहीं देता था। इतने बड़े जनसमुदायमें वहाँ अपना या पराया कोई भी किसीको पहचान नहीं पाता था। चारों ओर नगे, कुरुप, उग्र एवं भयंकर दैत्य दिखायी देते थे। उनके बाल बिखरे हुए थे और मुख विकराल प्रतीत होते थे। उस समय सब लोग व्याकुल हो गये, सबको एक-दूसरेसे भय होने लगा। सभी यह समझकर कि कोई महान् उत्पात आया हुआ है, वहाँसे भागने लगे। तब महायशस्वी शत्रुघ्नजी रथपर बैठकर वहाँ आये और भगवान् श्रीरामका स्मरण करके उन्होंने अपने धनुषपर बाणोंका सम्मान किया। वे बड़े पराक्रमी थे। उन्होंने मोहनास्त्रके द्वारा राक्षसी मायाका नाश कर दिया और आकाशमें उस असुरको लक्ष्य करके बाणोंकी बौछार आरम्भ कर दी। उस समय सारी दिशाएँ प्रकाशमय हो गयीं, सूर्यके चारों ओर पड़ा हुआ धेरा निवृत्त हो गया। सुवर्णमय पञ्चसे शोभा पानेवाले लाखों बाण उस राक्षसके विमानपर पड़ने लगे। कुछ ही देरमें वह विमान टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। वह इतना

ऊँचा दिखायी देता था, मानो अमरावतीपुरीका एक भाग ही टूटकर भूतलके एक स्थानमें पड़ा हो। तब उस दैत्यको बड़ा क्रोध हुआ और उसने अपने धनुषपर अनेकों बाणोंका सम्मान किया तथा राम-भ्राता शत्रुघ्नको उन बाणोंका निशाना बनाकर बड़ी विकट गर्जना की। शत्रुघ्न बड़े शक्तिशाली थे, उन्होंने अपने धनुषपर वायव्याख्यका प्रयोग किया, जो राक्षसोंको कँपा देनेवाला था। उस अस्त्रकी मार खाकर व्योमचारी भूत-बेताल मस्तकके बाल छितराये आकाशसे पृथ्वीपर गिरते दिखायी देने लगे। राम-भ्राता शत्रुघ्नके उस अस्त्रको देखकर राक्षस-कुमारने अपने धनुषपर पाशुपताख्यका प्रयोग किया। समस्त वीरोंका विनाश करनेवाले उस अस्त्रको चारों ओर फैलते देखकर उसका निवारण करनेके लिये शत्रुघ्नने नारायण नामक अस्त्र छोड़ा। नारायणाख्यने एक ही क्षणमें शत्रुपक्षके सभी अस्त्रोंको

शान्त कर दिया। निशाचरोंके छोड़े हुए सभी बाण विलीन हो गये। तब विद्युन्मालीने क्रोधमें भरकर शत्रुघ्नको मारनेके लिये एक तीक्ष्ण एवं भयङ्कर त्रिशूल हाथमें लिया। उसे शूल हाथमें लिये आते देख शत्रुघ्न अर्धचन्द्राकार बाणसे उसकी भुजा काट डाली। फिर कुण्डलोंसहित उसके मस्तकको भी धड़से अलग कर दिया। भाईका मस्तक कट गया, यह देखकर प्रतापी उग्रदंष्ट्रने शूरवीरोंद्वारा सेवित शत्रुघ्नको मुकेसे मारना आरम्भ किया। किन्तु शत्रुघ्नने क्षुरप्र नामक सायकसे उसका भी मस्तक उड़ा दिया। तदनन्तर मरनेसे बचे हुए सभी राक्षस अनाथ हो गये; इसलिये उन्होंने शत्रुघ्नके चरणोंमें पड़कर वह यज्ञका घोड़ा उन्हें अर्पण कर दिया। फिर तो विजयके उपलक्ष्यमें वीणा झंकृत होने लगी; सब ओर शङ्ख बज उठे तथा शूरवीरोंका मनोहर विजयनाद सुनायी देने लगा।



शत्रुघ्न आदिका घोड़ेसहित आरण्यक मुनिके आश्रमपर जाना, मुनिकी आत्म-कथामें रामायणका वर्णन और अयोध्यामें जाकर उनका श्रीरघुनाथजीके स्वरूपमें मिल जाना

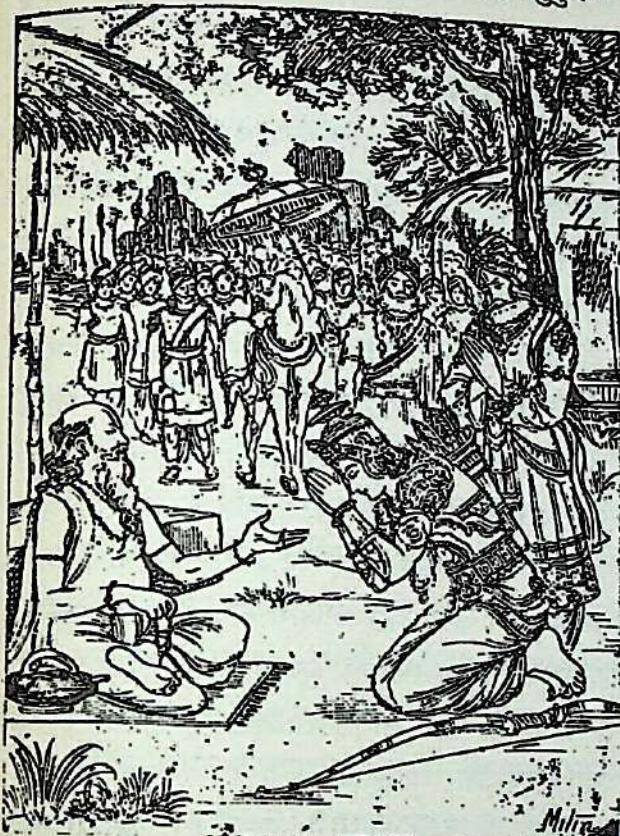
शेषजी कहते हैं—राक्षसोंद्वारा अपहरण किये हुए घोड़ेको पाकर पुष्कलसहित राजा शत्रुघ्नको बड़ा हर्ष हुआ। दुर्जय दैत्य विद्युन्मालीके मारे जानेपर समस्त देवता निर्भय हो गये। उन्हें बड़ा सुख मिला। तदनन्तर शत्रुघ्नने उस उत्तम अश्वको छोड़ा। फिर तो वह उत्तर-दिशामें भ्रमण करने लगा। सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंमें प्रवीण श्रेष्ठ रथी, घुड़सवार और पैदल सिपाही उसकी रक्षामें नियुक्त थे। धूमता-धामता वह नर्मदाके तटपर जा पहुँचा, जहाँ बहुत-से ऋषि-महर्षि निवास करते हैं। नर्मदाका जल ऐसा जान पड़ता था, मानो पानीके व्याजसे नील-रलोंका रस ही दिखायी दे रहा हो। वहाँ तटपर उन्होंने एक पुरानी पर्णशाला देखी, जो पलाशके पत्तोंसे बनी हुई थी और नर्मदाकी लहरें उसे अपने जलसे सीधे रही थीं। शत्रुघ्नजी सम्पूर्ण धर्म, अर्थ, कर्म और कर्तव्यके ज्ञानमें निपुण थे; उन्होंने सर्वज्ञ एवं नीतिकुशल मन्त्री सुमतिसे पूछा—‘मन्त्रिवर !

बताओ, यह पवित्र आश्रम किसका है ?’

सुमतिने कहा—महाराज ! यहाँ एक श्रेष्ठ मुनि रहते हैं, जो सम्पूर्ण शास्त्रोंके विद्वान् हैं; इनका दर्शन करके हमलोगोंके समस्त पाप धुल जायेंगे। इसलिये तुम इन्हें प्रणाम करके इन्हींसे पूछो। ये तुम्हें सब कुछ बता देंगे। इनका नाम आरण्यक है, ये श्रीरघुनाथजीके चरणोंके सेवक हैं तथा उनके चरणकमलोंके मकरन्दका आस्वादन करनेके लिये सदा लोलुप बने रहते हैं। इन्होंने बड़ी उग्र तपस्या की है और ये समस्त शास्त्रोंके मर्मज्ञ हैं।

सुमतिका यह धर्मयुक्त वचन सुनकर शत्रुघ्नजी थोड़े-से सेवकोंको साथ ले मुनिका दर्शन करनेके लिये गये। पास जा उन सभी वीरोंने विनीतभावसे मस्तक झुकाकर तापसोंमें श्रेष्ठ आरण्यक मुनिको नमस्कार किया। मुनिने उन सब लोगोंसे पूछा—‘आपलोग कहाँ एकत्रित हुए हैं तथा कैसे यहाँ पधारे हैं ? ये सब बातें स्पष्टरूपसे बताइये।’

सुमतिने कहा—मुने ! वे सब लोग रघुकुल-



नरेशके अश्वकी रक्षा कर रहे हैं। वे इस समय सब सामग्रियोंसे युक्त अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान करनेवाले हैं।

आरण्यक बोले—सब सामग्रियोंको एकत्रित करके भाँति-भाँतिके सुन्दर यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे क्या लाभ ? वे तो अत्यन्त अल्प पुण्य प्रदान करनेवाले हैं तथा उनसे क्षणभङ्गुर फलकी ही प्राप्ति होती है। स्थिर ऐश्वर्यपदको देनेवाले तो एकमात्र रमानाथ भगवान् श्रीरघुवीर ही हैं। जो लोग उन भगवान्को छोड़कर दूसरेकी पूजा करते हैं, वे मूर्ख हैं। जो मनुष्योंके स्मरण करनेमात्रसे पहाड़-जैसे पापोंका भी नाश कर डालते हैं, उन भगवान्को छोड़कर मूढ़ मनुष्य योग, याग और व्रत आदिके द्वारा क्षेत्र उठाते हैं। सकाम पुरुष अथवा निष्काम योगी भी जिनका अपने हृदयमें चिन्तन करते हैं तथा जो मनुष्योंको मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं, वे भगवान्

श्रीराम स्मरण करनेमात्रसे सारे पापोंको दूर कर देते हैं।*

पूर्वकालकी बात है, मैं तत्त्वज्ञानकी इच्छासे ज्ञानी गुरुका अनुसन्धान करता हुआ बहुत-से तीर्थोंमें भ्रमण करता रहा; किन्तु किसीने मुझे भी तत्त्वका उपदेश नहीं दिया। उसी समय एक दिन भाग्यवश मुझे लोमश मुनि मिल गये। वे स्वर्गलोकसे तीर्थयात्राके लिये आये थे। उन महर्षिको प्रणाम करके मैंने पूछा—‘स्वामिन् ! मैं इस अद्भुत और दुर्लभ मनुष्य-शरीरको पाकर भयङ्गर भव-सागरके पार जाना चाहता हूँ, ऐसी दशामें मुझे क्या करना चाहिये ?’ मेरी यह बात सुनकर वे मुनिश्रेष्ठ बोले—‘विप्रवर ! एकाग्रचित्त होकर पूर्ण श्रद्धाके साथ सुनो, संसार-समुद्रसे तरनेके लिये दान, तीर्थ, व्रत, नियम, यम, योग तथा यज्ञ आदि अनेकों साधन हैं। ये सभी स्वर्ग प्रदान करनेवाले हैं; किन्तु महाभाग ! मैं तुमसे एक परम गोपनीय तत्त्वका वर्णन करता हूँ, जो सब पापोंका नाश करनेवाला और संसार-सागरसे पार उत्तरनेवाला है। नास्तिक और श्रद्धाहीन पुरुषको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। निन्दक, शाठ तथा भक्तिसे द्वेष रखनेवाले पुरुषके लिये भी इस तत्त्वका उपदेश करना मना है। जो काम और क्रोधसे रहित हो, जिसका चित्त शान्त हो तथा जो भगवान् श्रीरामका भक्त हो उसीके सामने इस गूढ़ तत्त्वका वर्णन करना चाहिये। यह समस्त दुःखोंका नाश करनेवाला सर्वोत्तम साधन है। श्रीरामसे बड़ा कोई देवता नहीं, श्रीरामसे बढ़कर कोई व्रत नहीं, श्रीरामसे बड़ा कोई योग नहीं तथा श्रीरामसे बढ़कर कोई यज्ञ नहीं है। श्रीरामका स्मरण, जप और पूजन करके मनुष्य परम पदको प्राप्त होता है। उसे इस लोक और परलोककी उत्तम समृद्धि मिलती है। श्रीरघुनाथजी सम्पूर्ण कामनाओं और फलोंके दाता है। मनके द्वारा स्मरण और ध्यान करनेपर वे अपनी उत्तम भक्ति प्रदान करते हैं, जो संसार-समुद्रसे तारनेवाली है। चाण्डाल भी

* मूढ़ों लोकों हरिं त्यक्त्वा करेत्यन्यसमर्चनम् । रघुवीरं
यो नैः सृतमात्रोऽसौ हरते पापपर्वतम् । तं मुक्त्वा क्षिण्यते मूढ़ो योगयागवतादिभिः ॥

रमानाथं स्थिरैश्वर्यपदप्रदम् ॥

यो नैः सृतमात्रोऽसौ हरते पापपर्वतम् । तं मुक्त्वा क्षिण्यते मूढ़ो योगयागवतादिभिः ॥

सकामैयोगिभिर्वापि चिन्त्यते कामवजितैः । अपवर्गप्रदं नृणां सृतमात्राखिलाघहम् ॥ (३५ । ३१—३४)

श्रीरामका स्मरण करके परमगतिको प्राप्त कर लेता है। फिर तुम्हारे-जैसे वेद-शास्त्रपरायण पुरुषोंके लिये तो कहना ही क्या है? यह सम्पूर्ण वेद और शास्त्रोंका रहस्य है, जिसे मैंने तुमपर प्रकट कर दिया। अब जैसा तुम्हारा विचार हो, वैसा ही करो। एक ही देवता है—श्रीराम, एक ही ब्रत है—उनका पूजन, एक ही मन्त्र है—उनका नाम, तथा एक ही शास्त्र है—उनकी स्तुति। अतः तुम सब प्रकारसे परममनोहर श्रीरामचन्द्रजीका भजन करो; इससे तुम्हारे लिये यह महान् संसार-सागर गायके खुरके समान तुच्छ हो जायगा।'*

महर्षि लोमशका वचन सुनकर मैंने पुनः प्रश्न किया—‘मुनिवर! मनुष्योंको भगवान् श्रीरामका ध्यान और पूजन कैसे करना चाहिये?’ यह सुनकर उन्होंने स्वयं श्रीरामका ध्यान करते हुए मुझे सब बातें बतायी—‘साधकको इस प्रकार ध्यान करना चाहिये, स्मणीय अयोध्या नगरी परम चित्र-विचित्र मण्डपोंसे शोभा पा रही है। उसके भीतर एक कल्पवृक्ष है, जिसके मूलभागमें परम मनोहर सिंहासन विराजमान है। वह सिंहासन बहुमूल्य मरकत-मणि, सुवर्ण तथा नीलमणि आदिसे सुशोभित है और अपनी कान्तिसे गहन अस्थकारका नाश कर रहा है। वह सब प्रकारकी मनोभिलषित समृद्धियोंको देनेवाले है। उसके ऊपर भक्तोंका मन मोहनेवाले श्रीरघुनाथजी बैठे हुए हैं। उनका दिव्य विग्रह दूर्वादलके समान रथाम है, जो देवराज इन्द्रके द्वारा पूजित होता है। भगवान्‌का सुन्दर मुख अपनी शोभासे राकाके पूर्ण चन्द्रकी कमनीय कान्तिको भी तिरस्कृत कर रहा है। उनका तेजस्वी ललाट

अष्टमीके अर्धचन्द्रकी सुषमा धारण करता है। मस्तकपर काले-काले धुँधराले केश शोभा पा रहे हैं। मुकुटके मणियोंसे उनका मुख-मण्डल उद्घासित हो रहा है। कानोंमें पहने हुए मकराकार कुण्डल अपने सौन्दर्यसे भगवान्‌की शोभा बढ़ा रहे हैं। मूँगेके समान सुन्दर कान्ति धारण करनेवाले लाल-लाल ओठ बड़े मनोहर जान पड़ते हैं। चन्द्रमाकी किरणोंसे होड़ लगानेवाली दन्तपट्टियों तथा जपा-पुष्पके समान रंगवाली जिह्वाके कारण उनके श्रीमुखका सौन्दर्य और भी बढ़ गया है। शङ्खके आकारवाला कमनीय कण्ठ, जिसमें ऋक् आदि चारों वेद तथा सम्पूर्ण शास्त्र निवास करते हैं, उनके श्रीविग्रहको सुशोभित कर रहा है। श्रीरघुनाथजी सिंहके समान ऊँचे और मांसल कंधेवाले हैं। वे केयूर एवं कड़ोंसे विभूषित विशाल भुजाएँ धारण किये हुए हैं। उनकी दोनों बाँहें अंगूठीमें जड़े हुए हीरेकी शोभासे देदीप्यमान और घुटनोंतक लंबी हैं। विस्तृत वक्षःस्थल लक्ष्मीके निवाससे शोभा पा रहा है। श्रीवत्स आदि चिह्नोंसे अङ्कित होनेके कारण भगवान् अत्यन्त मनोहर जान पड़ते हैं। महान् उदर, गहरी नाभि तथा सुन्दर कटिभाग उनकी शोभा बढ़ाते हैं। रत्नोंकी बनी हुई करधनीके कारण श्रीअङ्गोंकी सुषमा बहुत बढ़ गयी है। निर्मल ऊरु और सुन्दर घुटने भी सौन्दर्यवृद्धिमें सहायक हो रहे हैं। भगवान्‌के चरण, जिनका योगीलोग ध्यान करते हैं, बड़े कोमल हैं। उनके तलवेमें वज्र, अङ्कुश और यव आदिकी उत्तम रेखाएँ हैं। उन युगल चरणोंसे श्रीरघुनाथजीके विग्रहकी बड़ी शोभा हो रही है। +

‘इस प्रकार ध्यान और स्मरण करके तुम संसार-

* रामान्नास्ति परो देवो रामान्नास्ति परं ब्रतम्। न हि रामात्परो योगो न हि रामात्परो मखः॥

तं सृत्वा चैव जप्त्वा च पूजयित्वा नरः पदम्। प्राप्नोति परमामृद्धिमैहिकामुष्यिकों तथा॥

संस्मृते मनसा ध्यातः सर्वकामफलप्रदः। ददाति परमां भक्तिं संसारभोधितारिणीम्॥

श्वपाकोऽपि हि संस्मृत्य रामं याति परां गतिम्। ये वेदशास्त्रानिरतास्त्वादृशास्त्रं कि पुनः॥

सर्वेषां वेदशास्त्राणां रहस्यं ते प्रकाशितम्। समाचर तथा त्वं वै यथा स्यात्ते मनीषितम्॥

एको देवो रामचन्द्रो ब्रतमें तदर्चनम्। मन्त्रोऽय्येकश्च तत्राम शास्त्रं तद्वयेव तत्सुतिः॥

तस्मात्सर्वात्मना रामचन्द्रं भज मनोहरम्। यथा गोप्यदवतुच्छो भवेत्संसारसागरः॥ (३५। ४६—५२)

+ अयोध्यानगरे रथे चित्रमण्डपशोभिते। ध्यायेत्कल्पतरोमूलं सर्वकामसमृद्धिदम्॥

सागरसे तर जाओगे । जो मनुष्य प्रतिदिन चन्दन आदि सामग्रियोंसे इच्छानुसार श्रीरामचन्द्रजीका पूजन करता है, उसे इहलोक और परलोककी उत्तम समृद्धि प्राप्त होती है, तुमने श्रीरामके ध्यानका प्रकार पूछा था । सो मैंने तुम्हें बता दिया । इसके अनुसार ध्यान करके भवसागरके पार हो जाओ ।'

आरण्यकने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! मैं आपसे पुनः कुछ प्रश्न करता हूँ, मुझे उनका उत्तर दीजिये । महामते ! गुरुजन अपने सेवकपर कृपा करके उहें सब बातें बता देते हैं । महाभाग ! आप प्रतिदिन जिनका ध्यान करते हैं वे श्रीराम कौन हैं तथा उनके चरित्र कौन-कौन-से हैं ? यह बतानेकी कृपा कीजिये । द्विजश्रेष्ठ ! श्रीरामने किसलिये अवतार लिया था ? वे क्यों मनुष्यशरीरमें प्रकट हुए थे ? आप मेरा सन्देह निवारण करनेके लिये सब बातोंको शीघ्र बताइये ।

मुनिके परम कल्याणमय वचन सुनकर महर्षि लोमशने श्रीरामचन्द्रजीके अद्भुत चरित्रिका वर्णन किया । वे बोले—‘योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान्-ने सम्पूर्ण लोकोंको दुःखी जानकर संसारमें अपनी कीर्ति फैलानेका विचार किया । ऐसा करनेका उद्देश्य यह था कि जगत्‌के मनुष्य मेरी कीर्तिका गान करके घोर संसारसे तर जायेंगे । यह समझकर भक्तोंका मन लुभानेवाले दयासागर भगवान्-ने चार विग्रहोंमें अवतार धारण किया । साथ ही उनकी

हादिनी शक्ति लक्ष्मी भी अवतीर्ण हुई । पूर्वकालमें त्रेतायुग आनेपर सूर्यवंशमें श्रीरघुनाथजीका पूर्णावतार हुआ । उनकी श्रीरामके नामसे प्रसिद्धि हुई । श्रीरामके नेत्र कमलके समान शोभायमान थे । लक्ष्मण सदा उनके साथ रहते थे । धीर-धीर उन्होंने यौवनमें प्रवेश किया । तत्पश्चात् पिताकी आज्ञासे दोनों भाई—श्रीराम और लक्ष्मण महर्षि विश्वामित्रके अनुगामी हुए । राजा दशरथने यज्ञकी रक्षाके लिये अपने दोनों कुमारोंको विश्वामित्रके अर्पण कर दिया था । वे दोनों भाई जितेन्द्रिय, धनुर्धर और वीर थे । मार्गमें जाते समय उन्हें भयङ्कर वनके भीतर ताङ्का नामकी राक्षसी मिली । उसने उनके रास्तेमें विघ्न डाला । तब महर्षि विश्वामित्रकी आज्ञासे रघुकुलभूषण श्रीरामचन्द्रजीने ताङ्काको परलोक भेज दिया । गौतम-पत्नी अहल्या, जो इन्द्रके साथ सम्पर्क करनेके कारण पत्थर हो गयी थी, श्रीरामके चरण-स्पर्शसे पुनः अपने स्वरूपको प्राप्त हो गयी । विश्वामित्रका यज्ञ प्रारम्भ होनेपर श्रीरघुनाथजीने अपने श्रेष्ठ बाणोंसे मारीचको घायल किया और सुबाहुको मार डाला । तदनन्तर राजा जनकके भवनमें रखे हुए शङ्खरजीके धनुषको तोड़ा । उस समय श्रीरामचन्द्रजीकी अवस्था पंद्रह वर्षकी थी । उन्होंने छः वर्षकी अवस्थावाली मिथिलेशकुमारी सीताको, जो परम सुन्दरी और अयोनिजा थी, वैवाहिक विधिके अनुसार ग्रहण

महामरकतस्वर्णनीलरलादिशोभितम् ॥

सिंहासनं चित्तहरं कान्त्या तामिस्त्राशनम् । तत्रोपरि समासीनं रघुराजं मनोरमम् ॥
दूर्वादलश्यामतनुं देवं देवेन्द्रपूजितम् । राकायां पूर्णशीतांशुकान्तिधिकारिविवित्रणम् ॥
अष्टमीचन्द्रशकलसम्भालाधिधारिणम् । नीलकुन्तलशोभाद्यं किरीटमणिरञ्जितम् ॥

मकरकारसौन्दर्यकुण्डलाभ्यां विराजितम् ॥

विद्वमप्रभसत्कान्तिरदच्छदविरण्जितम् ॥

तारापतिकरकारद्विजराजिसुशोभितम् । जपापुष्पाभया माध्या जिह्वा शोभिताननम् ॥

यस्यां वसन्ति निगमा ऋगाद्याः । साक्षसंयुताः । कम्बुकन्तिधरप्रीवाशोभया समलङ्घतम् ॥

सिंहवदुच्चकौ स्कन्धौ मांसलौ विप्रतं वरम् । बाहू दधानं दीर्घज्ञौ केयूरकटकाङ्क्षतौ ॥

मुद्रिकाहीरशोभाभिर्भूषितौ जानुलम्बिनौ । वक्षो दधानं विपुलं लक्ष्मीवासेन शोभितम् ॥

श्रीवत्सादिविचित्राङ्करङ्कितं सुमनोहरम् । महोदरं महानाभिं शुभकट्या विराजितम् ॥

काञ्छिया वै मणिमय्या च विशेषेण श्रियान्वितम् । ऊर्ध्यां विमलाभ्यां च जानुर्यां शोभितं श्रिया ॥

चरणाभ्यां वज्रेरखायवाङ्मुक्तासुरेखया । युताभ्यां योगिध्येयाभ्यां कोमलाभ्यां विराजितम् ॥ (३५ । ५७—६८)

किया। इसके बाद श्रीरामचन्द्रजी बारह वर्षोंतक सीताके साथ रहे। सत्ताईसवें वर्षकी उम्रमें उन्हें युवराज बनानेकी तैयारी हुई। इसी बीचमें रानी कैकेयीने राजा दशरथसे दो वर माँगे। उनमेंसे एकके द्वारा उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि 'श्रीराम मस्तकपर जटा धारण करके चौदह वर्षोंतक बनमें रहें।' तथा दूसरे वरके द्वारा यह माँगा कि 'मेरे पुत्र भरत युवराज बनाये जायें', राजा दशरथने श्रीरामको वनवास दे दिया। श्रीरामचन्द्रजी तीन रात्रितक केवल जल पीकर रहे, चौथे दिन उन्होंने फलाहार किया और पाँचवें दिन चित्रकूटपर पहुँचकर अपने लिये रहनेका स्थान बनाया। [इस प्रकार वहाँ बारह वर्ष बीत गये।] तदनन्तर तेरहवें वर्षके आरम्भमें वे पञ्चवटीमें जाकर रहने लगे। महामुने ! वहाँ श्रीरामने [लक्ष्मणके द्वारा] शूर्पणखा नामकी राक्षसीको [उसकी नाक कटाकर] कुरुप बना दिया। तत्पश्चात् वे जानकीके साथ वनमें विचरण करने लगे। इसी बीचमें अपने पापोंका फल उदय होनेपर दस मस्तकोंवाला राक्षसराज रावण सीताको हर ले जानेके लिये वहाँ आया और माघ कृष्णा अष्टमीको वृन्द नामक मुहूर्तमें, जब कि श्रीराम और लक्ष्मण आश्रमपर नहीं थे, उन्हें हर ले गया। उसके द्वारा अपहरण होनेपर देवी सीता कुररीकी भाँति विलाप करने लगी—'हा राम ! हा राम ! मुझे राक्षस हरकर लिये जा रहा है, मेरी रक्षा करो, रक्षा करो।' रावणं कामके अधीन होकर जनककिशोरी सीताको ज़िये जा रहा था। इतनेहीमें पक्षिराज जटायु वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने राक्षसराज रावणके साथ युद्ध किया, किन्तु स्वयं ही उसके हाथसे मारे जाकर धरतीपर गिर पड़े। इसके बाद दसवें महीनेमें अगहन^१ शुक्ला नवमीके दिन सम्पादिने वानरोंको इस बातकी सूचना दी कि 'सीता देवी रावणके भवनमें निवास कर रही है।'

'फिर एकादशीको हनुमानजी महेन्द्र पर्वतसे उछलकर सौ योजन चौड़ा समुद्र लौंघ गये। उस रातमें

वे लङ्घापुरीके भीतर सीताकी खोज करते रहे। रात्रिके अन्तिम भागमें हनुमानजीको सीताका दर्शन हुआ। द्वादशीके दिन वे शिंशापा नामक वृक्षपर बैठे रहे। उसी दिन रातमें जानकीजीको विश्वास दिलानेके लिये उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीकी कथा सुनायी। फिर त्रयोदशीको अक्ष आदिके साथ उनका युद्ध हुआ। चतुर्दशीके दिन इन्द्रजितने आकर ब्रह्मास्त्रसे उन्हें बाँध लिया। इसके बाद उनकी पूँछमें आग लगा दी गयी और उसी आगके द्वारा उन्होंने लङ्घापुरीको जला डाला। पूर्णिमाको वे पुनः महेन्द्र पर्वतपर आ गये। फिर मार्गशीर्ष कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे लेकर पाँच दिन उन्होंने मार्गमें बिताये। छठे दिन मधुवनमें पहुँचकर उसका विध्वंस किया और सप्तमीको श्रीरामचन्द्रजीके पास पहुँचकर सीताजीका दिया हुआ चिह्न उन्हें अर्पण किया तथा वहाँका सारा समाचार कह सुनाया। तत्पश्चात् अष्टमीको उत्तरफालुनी नक्षत्र और विजय नामक मुहूर्तमें दोपहरके समय श्रीरघुनाथजीका लङ्घाके लिये प्रस्थान हुआ। श्रीरामचन्द्रजी यह प्रतिज्ञा करके कि 'मैं समुद्रको लौंघकर राक्षसराज रावणका वध करूँगा', दक्षिण दिशाकी ओर चले। उस समय सुग्रीव उनके सहायक हुए। सात दिनोंके बाद समुद्रके तटपर पहुँचकर उन्होंने सेनाको ठहराया। पौष-शुक्ला प्रतिपदासे लेकर तृतीयातक श्रीरघुनाथजी सेनासहित समुद्र-तटपर टिके रहे। चतुर्थीको विभीषण आकर उनसे मिले। फिर पञ्चमीको समुद्र पार करनेके विषयमें विचार हुआ। इसके बाद श्रीरामने चार दिनोंतक अनशन किया। फिर समुद्रसे वर मिला और उसने पार जानेका उपाय भी दिखा दिया। तदनन्तर दशमीको सेतु बाँधनेका कार्य आरम्भ होकर त्रयोदशीको समाप्त हुआ। चतुर्दशीको श्रीरामने सुवेल पर्वतपर अपनी सेनाको ठहराया। पूर्णिमासे द्वितीयातक तीन दिनोंमें सारी सेना समुद्रके पार हुई। समुद्र पार करके लक्ष्मणसहित श्रीरामने वानरराजकी

^१-यह गणना शुक्लपक्षसे महीनेका आरम्भ मानकर की गयी है; अतः यहाँ अगहन शुक्लाका अर्थ यहाँकी प्रचलित गणनाके अनुसार कार्तिक शुक्लपक्ष समझना चाहिये। तथा इसी प्रकार आगे बतायी जानेवाली अन्य तिथियोंको भी जानना चाहिये।

सेना साथ ले सीताके लिये लङ्घापुरीको चारों ओरसे घेर लिया। तृतीयासे दशमीपर्यन्त आठ दिनोंतक सेनाका घेरा पड़ा रहा। एकादशीके दिन शुक और सारण सेनामें घुस आये थे। पौष-कृष्ण द्वादशीको शार्दूलके द्वारा वानर-सेनाकी गणना हुई। साथ ही उसने प्रधान-प्रधान वानरोंकी शक्तिका भी वर्णन किया। शत्रुसेनाकी संख्या जानकर रावणने त्रयोदशीसे अमावास्यापर्यन्त तीन दिनोंतक लङ्घापुरीमें अपने सैनिकोंको युद्धके लिये उत्साहित किया। माघ-शुक्र प्रतिपदाको अङ्गद दूत बनकर रावणके दरबारमें गये। उधर रावणने मायाके द्वारा सीताको, उनके पतिके कटे हुए मस्तक आदिका दर्शन कराया। माघकी द्वितीयासे लेकर अष्टमीपर्यन्त सात दिनोंतक राक्षसों और वानरोंमें घमासान युद्ध होता रहा। माघ शुक्र नवमीको रात्रिके समय इन्द्रजितने युद्धमें श्रीराम और लक्ष्मणको नाग-पाशसे बाँध लिया। इससे प्रधान-प्रधान वानर जब सब ओरसे व्याकुल और उत्साहीन हो गये तो दशमीको नाग-पाशका नाश करनेके लिये वायुदेवने श्रीरामचन्द्रजीके कानमें गरुड़के मन्त्रका जप और उनके स्वरूपका ध्यान बता दिया। ऐसा करनेसे एकादशीको गरुड़जीका आगमन हुआ। फिर द्वादशीको श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे धूम्राक्षका वध हुआ। त्रयोदशीको भी उन्हींके द्वारा कप्पन नामका राक्षस युद्धमें मारा गया। माघ शुक्र चतुर्दशीसे कृष्ण पक्षकी प्रतिपदातक तीन दिनमें नीलके द्वारा प्रहस्तका वध हुआ। माघ कृष्ण द्वितीयासे चतुर्थीपर्यन्त तीन दिनोंतक तुम्रु युद्ध करके श्रीरामने रावणको रणभूमिसे भगा दिया। पञ्चमीसे अष्टमीतक चार दिनोंमें रावणने कुम्भकर्णको जगाया और जागनेपर उसने आहार ग्रहण किया। फिर नवमीसे चतुर्दशीपर्यन्त छः दिनोंतक युद्ध करके श्रीरामने कुम्भकर्णका वध किया। उसने बहुत-से वानरोंको भक्षण कर लिया था। अमावास्याके दिन कुम्भकर्णकी मृत्युके शोकसे रावणने युद्धको बंद रखा। उसने अपनी सेना पीछे हटा ली। फाल्गुन शुक्र प्रतिपदासे चतुर्थीतक चार दिनोंके भीतर विस्तर्नु आदि पाँच राक्षस मारे गये। पञ्चमीसे सप्तमीतकके युद्धमें

अतिकायका वध हुआ। अष्टमीसे द्वादशीतक पाँच दिनोंमें निकुञ्ज और कुञ्ज मौतके घाट उतारे गये। उसके बाद तीन दिनोंमें मकराक्षका वध हुआ। फाल्गुन कृष्ण द्वितीयाके दिन इन्द्रजितने लक्ष्मणपर विजय पायी। फिर तृतीयासे सप्तमीतक पाँच दिन लक्ष्मणके लिये दवा आदिके प्रबन्धमें व्यग्र रहनेके कारण श्रीरामने युद्धको बंद रखा। तदनन्तर त्रयोदशीपर्यन्त पाँच दिनोंतक युद्ध करके लक्ष्मणने विख्यात बलशाली इन्द्रजितको युद्धमें मार डाला। चतुर्दशीको दशग्रीव रावणने यज्ञकी दीक्षा ली और युद्धको स्थगित रखा। फिर अमावास्याके दिन वह युद्धके लिये प्रस्थित हुआ। चैत्र शुक्र प्रतिपदासे लेकर पञ्चमीतक रावण युद्ध करता रहा; उसमें पाँच दिनोंके भीतर बहुत-से राक्षसोंका विनाश हुआ। षष्ठीसे अष्टमीतक महापार्श्व आदि राक्षस मारे गये। चैत्र शुक्र नवमीके दिन लक्ष्मणजीको शक्ति लगी। तब श्रीरामने क्रोधमें भरकर दशशीशको मार भगाया। फिर अङ्गना-नन्दन हनुमानजी लक्ष्मणकी चिकित्साके लिये द्रोण पर्वत उठा लाये। दशमीके दिन श्रीरामचन्द्रजीने भयङ्कर युद्ध किया, जिसमें असंख्य राक्षसोंका संहार हुआ। एकादशीके दिन इन्द्रके भेजे हुए मातलि नामक सारथि श्रीरामचन्द्रजीके लिये रथ ले आये और उसे युद्धक्षेत्रमें भक्तिपूर्वक उन्होंने श्रीरघुनाथजीको अर्पण किया। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी चैत्र शुक्र द्वादशीसे कृष्णपक्षकी चतुर्दशीतक अठारह दिन रोषपूर्वक युद्ध करते रहे। अन्ततोगत्वा उस द्वैरथयुद्धमें रामने रावणका वध किया। उस तुमुल संग्राममें श्रीरघुनाथजीने ही विजय प्राप्त की। माघ शुक्र द्वितीयासे लेकर चैत्रकृष्ण चतुर्दशीतक सतासी दिन होते हैं, इनके भीतर केवल पंद्रह दिन युद्ध बंद रहा। रोष बहतर दिनोंतक संग्राम चलता रहा। रावण आदि राक्षसोंका दाहसंस्कार अमावास्याके दिन हुआ। वैशाख शुक्र प्रतिपदाको श्रीरामचन्द्रजी युद्धभूमिमें ही ठहरे रहे। द्वितीयाको लङ्घाके राज्यपर विभीषणका अभिषेक किया गया। तृतीयाको सीताजीकी अग्निपरीक्षा हुई और देवताओंसे वर मिला। इस प्रकार लक्ष्मणके बड़े भाई श्रीरामने लङ्घापति रावणको थोड़े ही दिनोंमें

मारकर परमपवित्र जनककिशोरी सीताको ग्रहण किया, जिन्हें राक्षसने बहुत कष्ट पहुँचाया था। जानकीजीको पाकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे लङ्घासे लौटे। वैशाख शुक्ल चतुर्थीको पुष्पकविमानपर आरूढ़ होकर वे आकाशमार्गसे पुनः अयोध्यापुरीकी ओर चले। वैशाख शुक्ल पञ्चमीको भगवान् श्रीराम अपने दल-बलके साथ भरद्वाजमुनिके आश्रमपर आये और चौदहवाँ वर्ष पूर्ण होनेपर षष्ठीको नन्दिग्राममें जाकर भरतसे मिले। फिर सप्तमीको अयोध्यापुरीमें श्रीरघुनाथजीका राज्याभिषेक हुआ। मिथिलेशकुमारी सीताको अधिक दिनोंतक रामसे अलग होकर रावणके यहाँ रहना पड़ा था। बयालिसवें वर्षकी उम्रमें श्रीरामचन्द्रजीने राज्य ग्रहण किया, उस समय सीताकी अवस्था तैतीस वर्षकी थी। रावणका संहार करनेवाले भगवान् श्रीराम चौदह वर्षोंके बाद पुनः अपनी पुरी अयोध्यामें प्रविष्ट होकर बड़े प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् वे भाइयोंके साथ राज्यकार्य देखने लगे। श्रीरघुनाथजीके राज्य करते समय ही अगस्त्यजी, जो एक अच्छे वक्ता हैं तथा जिनकी उत्पत्ति कुम्भसे हुई है, उनके पास पथारेंगे। उनके कहनेसे श्रीरघुनाथजी अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करेंगे। सुन्रत ! भगवान्का वह यज्ञसम्बन्धी अश्व तुम्हारे आश्रमपर आवेगा तथा उसकी रक्षा करनेवाले योद्धा भी बड़े हर्षके साथ तुम्हारे आश्रमपर पथारेंगे। उनके सामने तुम श्रीरामचन्द्रजीकी मनोहर कथा सुनाओगे तथा उन्हीं लोगोंके साथ अयोध्यापुरीको भी जाओगे। द्विजश्रेष्ठ ! अयोध्यामें कमलनयन श्रीरामका दर्शन करके तुम तत्काल ही संसारसागरसे पार हो जाओगे।'

मुनिश्रेष्ठ लोमश सर्वज्ञ हैं; उन्होंने मुझसे उपर्युक्त बातें कहकर पूछा—'आरण्यक ! तुम्हें अपने कल्याणके लिये और क्या पूछना है ?' तब मैंने उनसे कहा—'महर्षे ! आपकी कृपासे मुझे भगवान् श्रीरामके अनुष्ठान चरित्रिका पूर्ण ज्ञान हो गया। अब आपहीके

प्रसादसे मैं उनके चरणकमलोंको भी प्राप्त करूँगा। ऐसा कहकर मैंने मुनीश्वरको प्रणाम किया। तत्पश्चात् वे चले गये। उन्हींकी कृपासे मुझे श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी पूजन-विधि भी प्राप्त हुई है। तबसे मैं सदा ही श्रीरामके चरणोंका चिन्तन करता हूँ तथा आलस्य छोड़कर बारम्बार उन्हींके चरित्रिका गान करता रहता हूँ। उनके गुणोंका गान मेरे चित्तको लुभाये रहता है। मैं उसके द्वारा दूसरे लोगोंको भी पवित्र किया करता हूँ तथा मुनिके वचनोंका बारम्बार स्मरण करके भगवत्-दर्शनकी उत्कण्ठासे पुलकित हो उठता हूँ। इस पृथ्वीपर मैं धन्य हूँ; कृतकृत्य हूँ और परम सौभाग्यशाली हूँ; क्योंकि मेरे हृदयमें श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंको देखनेकी जो अधिलाष्ठा है, वह निश्चय ही पूर्ण होगी। अतः सब प्रकारसे परम मनोहर श्रीरामचन्द्रजीका ही भजन करना चाहिये। संसार-समुद्रके पार जानेकी इच्छासे सब लोगोंको श्रीरघुनाथजीकी ही वन्दना करनी चाहिये।*



* धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सभाग्योऽहं महीतले। रामचन्द्रपदाभ्योजदिवृक्षा मे भविष्यति॥
तस्मात्सर्वात्मना रामो भजनीयो मनोहरः। वन्दनीयो हि सर्वेषां संसाराभ्युतीर्षया॥ (३६। ८९-९०)

अच्छा, अब तुमलोग बताओ, किसलिये यहाँ आये हो ? कौन धर्मात्मा राजा अश्वमेध नामक महान् यज्ञका अनुष्ठान कर रहा है ? ये सब बातें यहाँ बतलाकर अश्वकी रक्षाके लिये जाओ और श्रीरघुनाथजीके चरणोंका निरन्तर स्मरण करते रहो ।

आरण्यक मुनिके ये वचन सुनकर सब लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ । वे श्रीरघुनाथजीका स्मरण करते हुए उनसे बोले—‘ब्रह्मर्षिवर ! इस समय आपका दर्शन पाकर हम सब लोग पवित्र हो गये; क्योंकि आप श्रीरामचन्द्रजीकी कथा सुनाकर यहाँ सब लोगोंको पवित्र करते रहते हैं । आपने हमलोगोंसे जो कुछ पूछा है, वह सब हम बता रहे हैं । आप हमारे यथार्थ वचनको श्रवण करें । महर्षि अगस्त्यजीके कहनेसे भगवान् श्रीराम ही सब सामग्री एकत्रित करके अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान कर रहे हैं । उन्हींका यज्ञसम्बन्धी अश्व यहाँ आया है और उसीकी रक्षा करते हुए हम सब लोग भी अश्वके साथ ही आपके आश्रमपर आ पहुँचे हैं । महामते ! यही हमारा वृत्तान्त है; आप इसे हृदयङ्गम करें ।’

रसायनके समान मनको प्रिय लगनेवाला यह उत्तम वचन सुनकर राम-भक्त ब्राह्मण आरण्यक मुनिको बड़ा हर्ष हुआ । वे कहने लगे—‘आज मेरे मनोरथरूपी वृक्षमें फल आ गया, वह उत्तम शोभासे सम्पन्न हो गया । मेरी माताने जिसके लिये मुझे उत्पन्न किया था, वह शुभ उद्देश्य आज पूरा हो गया । आजतक हविष्यके द्वारा मैंने जो हवन किया है, उस अग्निहोत्रका फल आज मुझे मिल गया; क्योंकि अब मैं श्रीरामचन्द्रजीके युगल-चरणारविन्दोंका दर्शन करूँगा । अहा ! जिनका मैं प्रतिदिन अपने हृदयमें ध्यान करता था, वे मनोहर रूपधारी अयोध्यानाथ भगवान् श्रीराम निश्चय ही मेरे नेत्रोंके समक्ष होकर दर्शन देंगे । हनुमान्जी मुझे हृदयसे लगाकर मेरी कुशल पूछेंगे । वे संतोंके शिरोमणि हैं; मेरी भक्ति देखकर उन्हें बड़ा सन्तोष होगा ।’ आरण्यक मुनिके ये वचन सुनकर कपिश्रेष्ठ हनुमान्जीने उनके दोनों चरण पकड़ लिये और कहा—‘ब्रह्मर्षे ! मैं ही हनुमान् हूँ स्वामिन् । मैं आपका सेवक हूँ और आपके सामने

खड़ा हूँ । मुझे श्रीरघुनाथजीके दासकी चरण-धूलि समझिये ।’ हनुमान्जी श्रीरामभक्त होनेके कारण अत्यन्त शोभा पा रहे थे । उनकी उपर्युक्त बातें सुनकर आरण्यक मुनिको बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने हनुमान्जीको हृदयसे लगा लिया । दोनोंके हृदयसे प्रेमकी धारा फूटकर बह रही थी । दोनों ही आनन्द-सुधामें निमग्र होकर शिथिल एवं चित्रलिखित-से प्रतीत हो रहे थे । श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंके प्रेमसे दोनोंका ही मानस भरा हुआ था । अतः दोनों ही बैठकर आपसमें भगवान् की मनोहारिणी कथाएँ कहने लगे । मुनिश्रेष्ठ आरण्यक श्रीरामके चरणोंका ध्यान कर रहे थे । हनुमान्जीने उनसे यह मनोहर वचन कहा—‘महर्षे ! ये श्रीरघुनाथजीके भ्राता महावीर शत्रुघ्न आपको प्रणाम कर रहे हैं । ये उद्धट वीरोंसे सेवित भरतकुमार पुष्कल भी आपके चरणोंमें शीश झुकाते हैं तथा इधरकी ओर जो ये महान् बली और अनेक गुणोंसे विभूषित सज्जन खड़े हैं, इन्हें श्रीरघुनाथजीके मन्त्री समझिये । अत्यन्त भयङ्कर योद्धा महायशस्वी राजा सुबाहु भी आपको प्रणाम करते हैं । ये श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंका मकरन्द पान करनेवाले मधुकर हैं । ये राजा सुमद हैं, जिन्हें पार्वतीजीने श्रीरघुनाथजीके चरणोंकी भक्ति प्रदान की है, जिससे ये संसार-समुद्रके पार हो चुके हैं; ये भी आपके चरणोंमें नमस्कार करते हैं । जिन्होंने अपने सेवकके मुखसे श्रीरामचन्द्रजीके अश्वको आया हुआ सुनकर अपना सारा राज्य ही भगवान् को समर्पण कर दिया है, वे राजा सत्यवान् भी पृथ्वीपर माथा टेककर आपके चरणोंमें प्रणाम करते हैं ।’

हनुमान्जीके ये वचन सुनकर आरण्यक मुनिने बड़े आदरके साथ सबको हृदयसे लगाया और फल-मूल आदिके द्वारा सबका स्वागत-सत्कार किया । फिर शत्रुघ्न आदि सब लोगोंने बड़ी प्रसन्नताके साथ महर्षिके आश्रमपर निवास किया । प्रातःकाल नर्मदामें नित्यकर्म करके वे महान् उद्योगी सैनिक आगे जानेको उद्यत हुए । शत्रुघ्न आरण्यक मुनिको पालकीपर बिठाकर अपने सेवकोंद्वारा उन्हें श्रीरघुनाथजीकी निवासभूत अयोध्या-

पुरीको पहुँचवा दिया। सूर्यवंशी राजाओंने जिसे अपना निवास-स्थान बनाया था, उस अवधिपुरीको दूरसे ही देखकर आरण्यक मुनि सवारीसे उत्तर पड़े और श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनकी इच्छासे पैदल ही चलने लगे। जन-समुदायसे शोभा पानेवाली उस रमणीय नगरीमें पहुँचकर उनके मनमें श्रीरामको देखनेके लिये हजार-हजार अभिलाषाएँ उत्पन्न हुईं। थोड़ी ही देरमें वहाँ यज्ञमण्डपसे सुशोभित सरयूके पावन तटपर उन्हें श्रीरामचन्द्रजीकी झाँकी हुई। भगवान्‌का श्रीविग्रह दूरीदलके समान श्यामसुन्दर दिखायी देता था। उनके नेत्र खिले हुए कमलके समान शोभा पा रहे थे। वे अपने कटिभागमें मृगशृङ्खि धारण किये हुए थे। व्यास^१ आदि महर्षि उन्हें घेरकर विराजमान थे और बहुत-से शूरवीर उनकी सेवामें उपस्थित थे। उनके दोनों पार्श्वभागोंमें भरत और सुमित्रानन्दन लक्ष्मण खड़े थे तथा श्रीरघुनाथजी दीनजनोंको मुँहमाँगा दान दे रहे थे।

भगवान्‌का दर्शन करके आरण्यक मुनिने अपनेको कृतार्थ माना। वे कहने लगे—‘आज मेरे नेत्र सफल हो गये, क्योंकि ये श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन कर रहे हैं। मैंने जो सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया था, वह आज सार्थक हो गया; क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीकी महिमाको जानकर इस समय मैं अयोध्यापुरीमें आ पहुँचा हूँ।’ इस प्रकार हर्षमें भरकर उन्होंने बहुत-सी बातें कहीं। श्रीरघुनाथजीके चरणोंका दर्शन करके उनके समस्त शरीरमें रोमाञ्च हो आया था। इस अवस्थामें वे रमानाथ भगवान् श्रीरामके समीप गये, जो दूसरोंके लिये अगम्य हैं तथा विचारपरायण योगेश्वरोंसे भी जो बहुत दूर हैं। भगवान्‌के निकट पहुँचकर वे बोल उठे—‘अहा ! आज मैं धन्य हो गया; क्योंकि श्रीरघुनाथजीके चरण मेरे नेत्रोंके समक्ष विराजमान हैं। अब मैं श्रीरामचन्द्रजीको देखकर इनसे वार्तालाप करके अपनी वाणीको पवित्र बनाऊँगा।’

श्रीरामचन्द्रजी भी अपने तेजसे जाज्वल्यमान तपोमूर्ति विप्रवर आरण्यक मुनिको आया देख उनके स्वागतके लिये उठकर खड़े हो गये। वे बड़ी देरतक उनके चरणोंमें मस्तक झुकाये रहे। देवता और असुर अपनी मुकुट-मणियोंसे जिनके युगल-चरणोंकी आत्मा उतारते हैं, वे ही प्रभु श्रीरघुनाथजी मुनिके पैरोंपर पड़कर कहने लगे—‘ब्राह्मणदेव ! आज आपने मेरे शरीरको पवित्र कर दिया।’ ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ महातपस्वी आरण्यक मुनिने राजाओंके शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीको चरणोंमें पड़ा देख उनका हाथ पकड़कर उठाया और अपने प्रियतम प्रभुको छातीसे लगा लिया। कौसल्यानन्दन श्रीरामने ब्राह्मणको मणिनिर्मित ऊँचे आसनपर बिठाया और स्वयं ही जल लेकर उनके दोनों पैर धोये। फिर चरणोदक लेकर भगवान्‌ने उसे अपने मस्तकपर चढ़ाया और कहा—‘आज मैं अपने कुटुम्ब और सेवकोंसहित पवित्र हो गया।’ तत्पश्चात् देवाधिदेवोंसे सेवित श्रीरघुनाथजीने मुनिके ललाटमें चन्दन लगाया और उन्हें दूध देनेवाली गौ दान की। फिर मनोहर वचनोंमें कहा—‘स्वामिन् ! मैं अश्वमेधयज्ञ कर रहा हूँ। आपके चरण यहाँ आ गये, इससे अब यह यज्ञ पूर्ण हो जायगा। मेरे अश्वमेध-यज्ञको आपने चरणोंसे पवित्र कर दिया।’ राजाधिराजोंसे सेवित श्रीरघुनाथजीके ये वचन सुनकर आरण्यक मुनिने हँसते हुए मधुर वाणीमें कहा—‘स्वामिन् ! आप ब्राह्मणोंके हितैषी और इस पृथ्वीके रक्षक हैं; अतः यह वचन आपहीके योग्य है। महाराज ! वेदोंके पारगामी ब्राह्मण आपके ही विग्रह हैं। यदि आप ब्राह्मणोंकी पूजा आदि कर्तव्य-कर्मोंका आचरण करेंगे तो अन्य सब राजा भी ब्राह्मणोंका आदर करेंगे। शास्त्रोंके ज्ञानसे रहित मूढ़ मनुष्य भी यदि आपके नामका स्मरण करता है तो वह सम्पूर्ण पापोंके महासागरको पार करके परम पदको प्राप्त होता है। सभी

१—यहाँ ‘व्यास’ शब्दका अर्थ शास्त्रकी व्याख्या करनेवाले विद्वान् महर्षि वसिष्ठ या अगस्त्य आदिका वाचक है, श्रीकृष्णद्वैपायनका नहीं; क्योंकि उस समयतक उनका प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। ‘विस्तारो विग्रहो व्यासः’ इस कोषके अनुसार ‘व्याख्याकारक’ अर्थ मानना सुसंगत है। पुराण आदि कथा वाचनेवाले ब्राह्मणको भी ‘व्यास’ कहते हैं; ‘य एवं वाचयेद् विग्रः स ब्रह्मन् व्यास उच्यते।’ इस पौराणिक वचनसे इसका समर्थन होता है।

वेदों और इतिहासोंका यह स्पष्ट सिद्धान्त है कि राम-नामका जो स्मरण किया जाता है, वह पापोंसे उद्धार करनेवाला है। श्रीरघुनाथजी ! ब्रह्महत्या-जैसे पाप भी तभीतक गर्जना करते हैं, जबतक आपके नामोंका स्पष्टरूपसे उच्चारण नहीं किया जाता। महाराज ! आपके नामोंकी गर्जना सुनकर महापातकरूपी गजराज कहीं छिपनेके लिये स्थान ढूँढ़ते हुए भाग खड़े होते हैं। * श्रीराम ! आपकी कथा सुनकर सब लोग पवित्र हो जायेंगे। पूर्वकालमें जब कि सत्ययुग चल रहा था, मैंने गङ्गातीरपर निवास करनेवाले पुराणवेत्ता ऋषियोंके मुखसे यह बात सुनी थी—‘महान् पाप करनेके कारण कातर हृदयवाले पुरुषोंको तभीतक पापका भय बना रहता है जबतक वे अपनी जिह्वासे परम मनोहर राम-नामका उच्चारण नहीं करते।’ † अतः श्रीरामचन्द्रजी ! इस समय मैं धन्य हो गया। आपके दर्शनसे मेरे संसार-बन्धनका नाश सुलभ हो गया।

मुनिके ऐसा कहनेपर श्रीरघुनाथजीने उनका पूजन किया। उस समय सभी महर्षि उन्हें साधुवाद देने लगे। इसी बीचमें वहाँ जो अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना घटी, उसे मैं बतला रहा हूँ। मुनिश्रेष्ठ वात्स्यायन ! तुम श्रीरामके भजनमें तत्पर रहनेवाले हो; मेरी बातोंको ध्यान देकर सुनो। आरण्यक मुनिको ध्यानमें श्रीरघुनाथजीका जैसा स्वरूप दिखायी देता था; उसी रूपमें महाराज श्रीरामचन्द्रजीको प्रत्यक्ष देखकर उन्हें अत्यन्त हर्ष हुआ। वे वहाँ बैठे हुए महर्षियोंसे बोले—‘मुनीश्वरो ! आपलोग मेरे मनोहर वचन सुनें। भला, इस भूमण्डलमें मेरे-जैसा सौभाग्यशाली मनुष्य कौन होगा ? श्रीरामचन्द्रजीने मुझे नमस्कार करके अपने श्रीमुखसे मेरा स्वागत एवं कुशल-समाचार पूछा है। अतः आज मेरी समानता करनेवाला न कोई है न हुआ है और न होगा।

श्रुतियाँ भी जिनके चरणकमलोंकी रजको सदा ही ढूँढ़ा करती हैं, उन्हीं भगवान्ने आज मेरे चरणोंका जल पीकर अपनेको पवित्र माना है !’

ऐसा कहते-कहते उनका ब्रह्मरन्ध फूट गया तथा उससे जो तेज निकला वह श्रीरघुनाथजीमें समा गया। इस प्रकार सरयूके तटवर्ती यज्ञ-मण्डपमें सब लोगोंके देखते-देखते आरण्यक मुनिको सायुज्यमुक्ति प्राप्त हुई, जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है। उस समय आकाशमें तूर्य और बीणा आदि बाजे बजने लगे। भगवान्के आगे फूलोंकी वर्षा हुई। दर्शकोंके लिये यह विचित्र एवं अद्भुत घटना थी। मुनियोंने भी यह दृश्य देखकर मुनीश्वर आरण्यककी प्रशंसा करते हुए कहा—‘ये मुनिश्रेष्ठ कृतार्थ हो गये ! क्योंकि श्रीरघुनाथजीके स्वरूपमें मिल गये हैं।’



* त्वत्रामस्मरणान्मूढः सर्वशास्त्रविवर्जितः । सर्वपापाद्विमुर्तीर्थं स गच्छेत्परमं पदम् ॥

सर्ववेदेतिहासानां सारार्थेऽयमिति स्फुटम् । यद्रामनामस्मरणं क्रियते पापतारकम् ॥

तावदराजन्ति पापानि ब्रह्महत्यासमानि च । न यावत्प्रोच्यते नाम रामचन्द्र तत्र स्फुटम् ॥

त्वत्रामगर्जनं श्रुत्वा महापातककुञ्जराः । पलायन्ते महाराज कुत्रचित्स्थानलिप्सया ॥ (३७ । ५०—५३)

† तावत्पापभियः पुंसां कातराणां सुपापिनाम् । यावत्र वदते वाचा रामनाम मनोहरम् ॥ (३७ । ५६)

देवपुरके राजकुमार रुक्माङ्गदद्वारा अश्वका अपहरण, दोनों ओरकी सेनाओंमें युद्ध और पुष्कलके बाणसे राजा वीरमणिका मूर्छित होना

वात्स्यायन बोले—फणीश्वर ! जो भक्तोंकी पीड़ा दूर करनेके लिये नाना प्रकारकी कीर्ति किया करते हैं, उन श्रीरघुनाथजीकी कथा सुननेसे मुझे तृप्ति नहीं होती—अधिकाधिक सुननेकी इच्छा बढ़ती जाती है। वेदोंको धारण करनेवाले आरण्यक मुनि धन्य थे, जिन्होंने श्रीरघुनाथजीका दर्शन करके उनके सामने ही अपने नश्वर शरीरका परित्याग किया था। शेषजी ! अब यह बताइये कि महाराजका वह यज्ञ-सम्बन्धी अश्व वहाँसे किस ओर गया, किसने उसे पकड़ा तथा वहाँ रमानाथ श्रीरघुनाथजीकी कीर्तिका किस प्रकार विस्तार हुआ ?

शेषजीने कहा—ब्रह्मर्खें ! आपका प्रश्न बड़ा सुन्दर है। आप श्रीरघुनाथजीके सुने हुए गुणोंको भी नहीं सुने हुएके समान मानकर उनके प्रति अपना लोभ प्रकट करते हैं और बारम्बार उन्हें पूछते हैं। अच्छा, अब आगेकी कथा सुनिये। बहुतेरे सैनिकोंसे घिरा हुआ वह घोड़ा आरण्यक मुनिके आश्रमसे बाहर निकला और नर्मदाके मनोहर तटपर श्रमण करता हुआ देवनिर्मित देवपुर नामक नगरमें जा पहुँचा। जहाँ मनुष्योंके घरोंकी दीवारें स्फटिक मणिकी बनी हुई थीं तथा वे गृह अपनी ऊँचाईके कारण हाथियोंसे भरे हुए विन्ध्याचल पर्वतका उपहास करते थे। वहाँकी प्रजाके घर भी चाँदीके बने हुए दिखायी देते थे तथा उनके गोपुर नाना प्रकारके मणिक्योंद्वारा बने हुए थे; जिनमें भाँति-भाँतिकी विचित्र मणियाँ जड़ी हुई थीं। उस नगरमें महाराज वीरमणि राज्य करते थे, जो धर्मात्माओंमें अग्रगण्य थे। उनका विशाल राज्य सब प्रकारके भोगोंसे सम्पन्न था। राजाके पुत्रका नाम था रुक्माङ्गद। वह महान् शूरवीर और बलवान् था। एक दिन वह सुन्दर शरीरवाली रमणियोंके साथ विहार करनेके लिये वनमें गया और वहाँ प्रसन्नचित्त होकर मधुर वाणीमें मनोहर गान करता हुआ विचरने लगा। इसी समय परम बुद्धिमान् राजाधिराज

श्रीरामचन्द्रजीका वह शोभाशाली अश्व उस वनमें आ पहुँचा। उसके ललाटमें स्वर्णपत्र बँधा हुआ था। शरीरका रंग गङ्गाजलके समान स्वच्छ था। परन्तु केस और कुङ्कमसे चर्चित होनेके कारण कुछ पीला दिखायी देता था। वह अपनी तीव्र गतिसे वायुके वेगको भी तिरस्कृत कर रहा था। उसका स्वरूप अत्यन्त कौतूहलमें भरा हुआ था। उसे देखकर राजकुमारकी स्त्रियोंने कहा—‘प्रियतम ! स्वर्णपत्रसे शोभा पानेवाला यह महान् अश्व किसका है ? यह देखनेमें बड़ा सुन्दर है। आप इसे बलपूर्वक पकड़ लें।’

राजकुमारके नेत्र लीलायुक्त चितवनके कारण बड़े सुन्दर जान पड़ते थे। उसने स्त्रियोंकी बातें सुनकर खेल-सा करते हुए एक ही हाथसे घोड़ेको पकड़ लिया। उसके भाल्पत्रपर स्पष्ट अक्षर लिखे हुए थे। राजकुमार उसे बाँचकर हँसा और उस महिला-मण्डलमें इस प्रकार बोला—‘अहो ! शौर्य और सम्पत्तिमें मेरे पिता महाराज वीरमणिकी समानता करनेवाला इस पृथ्वीपर दूसरा कोई नहीं है, तथापि उनके जीते-जी ये राजा रामचन्द्र इतना अहङ्कार, कैसे धारण करते हैं ? पिनाकधारी भगवान् शङ्कर जिनकी सदा रक्षा करते रहते हैं तथा देवता, दानव और यक्ष—अपने मणिमय मुकुटोंद्वारा जिनके चरणोंकी वन्दना किया करते हैं, वे महाबली मेरे पिताजी ही इस घोड़ेके द्वारा अश्वमेध यज्ञ करें। इस समय यह घुड़सालमें जाय और मेरे सैनिक इसे ले जाकर वहाँ बाँध दें।’ इस प्रकार उस घोड़ेको पकड़कर राजा वीरमणिका ज्येष्ठ पुत्र रुक्माङ्गद अपनी पत्नियोंके साथ नगरमें आया। उस समय उसके मनमें बड़ा उत्साह भरा हुआ था। उसने पितासे जाकर कहा—‘मैं रघुकुलके स्वामी श्रीरामचन्द्रका घोड़ा ले आया हूँ। यह इच्छानुसार चलनेवाला अद्भुत अश्व अश्वमेध यज्ञके लिये छोड़ गया था। रामके भाई शत्रुघ्न अपनी विशाल सेनाके साथ इसकी रक्षाके लिये आये हैं।’ महाराज वीरमणि बड़े

बुद्धिमान् थे । पुत्रकी बात सुनकर उन्होंने उसके कार्यकी प्रशंसा नहीं की । सोचा कि 'यह घोड़ा लेकर चुपकेसे चला आया है । इसका यह कार्य तो चोरके समान है ।' अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् शङ्कर राजके इष्टदेव थे । उनसे राजाने सारा हाल कह सुनाया ।

तब भगवान् शिवने कहा—राजन् ! तुम्हरे पुत्रने बड़ा अद्भुत काम किया है । यह परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामचन्द्रके महान् अश्वको हर लाया है, जिनका मैं अपने हृदयमें ध्यान करता हूँ, जिन्हासे जिनके नामका उच्चारण करता हूँ, उन्हीं श्रीरामके यज्ञ-सम्बन्धी अश्वका तुम्हारे पुत्रने अपहरण किया है । परन्तु इस युद्धक्षेत्रमें एक बहुत बड़ा लाभ यह होगा कि हमलोग भक्तोंद्वारा सेवित श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंका दर्शन कर सकेंगे । परन्तु अब हमें अश्वकी रक्षाके लिये महान् प्रयत्न करना होगा । इतनेपर भी मुझे संदेह है कि शत्रुघ्नके सैनिक मेरे द्वारा रक्षा किये जानेपर भी इसे बलपूर्वक पकड़ ले जायेंगे । इसलिये महाराज [मैं तो यही सलाह दूँगा कि] तुम विनीत होकर जाओ और राज्यसहित इस सुन्दर अश्वको भगवान्की सेवामें अर्पण करके उनके चरणोंका दर्शन करो ।

वीरमणि बोले—भगवन् ! क्षत्रियोंका यह धर्म है कि वे अपने प्रतापकी रक्षा करें, अतः हर एक मानी पुरुषके लिये अपने प्रतापकी रक्षा करना कर्तव्य है; इसके लिये उसे अपनी शक्तिभर पराक्रम करना चाहिये । आवश्यकता हो तो शरीरको भी होम देना चाहिये । सहसा किसीकी शरणमें जानेसे शत्रु उपहास करते हैं । वे कहते हैं—'यह कायर है, राजाओंमें अधम है, क्षुद्र है । इस नीचने भयसे विहळ होकर अनार्थपुरुषोंकी भाँति शत्रुके चरणोंमें मस्तक झुकाया है ।' अतः अब युद्धका अवसर उपस्थित हो गया है । इस समय जैसा उचित हो, वही आप करें । कर्तव्यका विचार करके आपको अपने इस भक्तकी रक्षा करनी चाहिये ।

शेषजी कहते हैं—राजाकी बात सुनकर भगवान् चन्द्रमौलि अपनी मेघके समान गम्भीर वाणीसे उनका मन लुभाते हुए हँसकर बोले—'राजन् ! यदि तैंतीस

करोड़ देवता भी आ जायें तो भी किसमें इतनी शक्ति है जो मेरे द्वारा रक्षित रहनेपर तुमसे घोड़ा ले सके । यदि साक्षात् भगवान् यहाँ आकर अपने स्वरूपकी झाँकी करायेंगे तो मैं उनके कोमल चरणोंमें मस्तक झुकाऊँगा; क्योंकि सेवकका स्वामीके साथ युद्ध करना बहुत बड़ा अन्याय बताया गया है । शेष जितने वीर हैं, वे मेरे लिये तिनकेके समान हैं—कुछ भी नहीं कर सकते । अतः राजेन्द्र ! तुम युद्ध करो, मैं तुम्हारा रक्षक हूँ । मेरे रहते कौन ऐसा वीर है जो बलपूर्वक घोड़ा ले जा सके ? यदि त्रिलोकी भी संगठित होकर आ जाय तो मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती ।'

इधर श्रीरघुनाथजीके जितने सैनिक थे, वे अश्वका मार्ग ढूँढ़ रहे थे । इतनेहीमें महाराज शत्रुघ्न भी अपनी विशाल सेनाके साथ आ पहुँचे । आते ही उन्होंने सभी सेवकोंसे प्रश्न किया—'कहाँ है मेरा अश्व ? स्वर्णपत्रसे सुशोभित वह यज्ञ-सम्बन्धी घोड़ा इस समय दिखायी क्यों नहीं देता ?' उनकी बात सुनकर अश्वके पीछे चलनेवाले सेवकोंने कहा—'नाथ ! उस मनके समान तीव्रगामी अश्वको इस जंगलमें किसीने हर लिया । हमें भी वह कहाँ दिखायी नहीं देता ।' सेवकोंके वचन सुनकर राजा शत्रुघ्नने सुमतिसे पूछा—'मन्त्रिवर ! यहाँ कौन राजा निवास करता है ? हमें अंश्वकी प्राप्ति कैसे होगी ? जिसने आज हमारे अश्वका अपहरण किया है, उस राजके पास कितनी सेना है ?' इस प्रकार शत्रुघ्नजी मन्त्रीके साथ परामर्श कर रहे थे, इतनेहीमें देवर्षि नारद युद्ध देखनेके लिये उत्सुक होकर वहाँ आये । शत्रुघ्नने उन्हें स्वागत-सत्कारसे सन्तुष्ट किया । वे बातचीत करनेमें बड़े चतुर थे; अतः अपनी वाणीसे नारदजीको प्रसन्न करते हुए बोले—'महामते ! बताइये, मेरा अश्व कहाँ है ? उसका कुछ पता नहीं चलता । मेरे कार्य-कुशल अनुचर भी उसके मार्गका अनुसन्धान नहीं कर पाते ।'

नारदजी बीणा बजाते और श्रीराम-कथाका बारम्बार गान करते हुए बोले—'राजन् ! यहाँ देवपुर नामका नगर है उसमें वीरमणि नामसे विख्यात एक बहुत बड़े राजा रहते हैं । उनका पुत्र इस वनमें आया था, उसीने

अश्वको पकड़ लिया है। आज उस राजाके साथ तुमलोगोंका बड़ा भयङ्कर युद्ध होगा। उसमें बड़े-बड़े



बलवान् और शूरवीर मारे जायेंगे। इसलिये तुम पूरी तैयारीके साथ यहाँ स्थिरतापूर्वक खड़े रहो तथा सेनाका ऐसा व्यूह बनाओ; जिसमें शत्रुके सैनिकोंका प्रवेश करना अत्यन्त कठिन हो। श्रेष्ठ राजा वीरमणिसे युद्ध करते समय तुम्हें बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा; तथापि अन्तमें विजय तुम्हारी ही होगी। भला, सम्पूर्ण जगत्‌में कौन ऐसा वीर है, जो भगवान् श्रीरामको पराजित कर सके।' ऐसा कहकर नारदजी वहाँसे अन्तर्धान हो गये और देवता तथा दानवोंके समान उन दोनों पक्षोंका भयङ्कर युद्ध देखनेके लिये आकाशमें ठहर गये।

उधर शूरशिरोमणि राजा वीरमणिने रिपुवार नामक सेनापतिको बुलाया और उसे अपने नगरमें ढिंढोरा पिटवानेका आदेश दिया। सेनापतिने राजाकी आज्ञाका पालन किया। प्रत्येक घर, गली और सड़कपर डंकेकी आवाज सुनायी देने लगी। लोगोंको जो घोषणा सुनायी गयी, वह इस प्रकार थी— 'राजधानीमें जो-जो वीर उपस्थित हैं, वे सभी शत्रुघ्नपर चढ़ाई करें। जो लोग

वीरताके अभिमानमें आकर राजाज्ञाका उल्लङ्घन करें, वे महाराजके पुत्र या भाई ही क्यों न हों, वधके योग्य समझे जायेंगे। फिरसे डंका बजाकर उपर्युक्त घोषणा दुहराई जाती है—सभी वीर सुन लें और सुनकर शीघ्र ही अपने कर्तव्यका पालन करें। विलम्ब नहीं होना चाहिये।' नरश्रेष्ठ वीरमणिके सैनिक श्रेष्ठ योद्धा थे। उन्होंने यह घोषणा अपने कानों सुनी और कवच आदिसे सुसज्जित होकर वे महाराजके पास गये। उनकी दृष्टिये युद्ध एक महान् उत्सवके समान था; उसका अवसर पाकर उनका हृदय हर्ष और उत्साहसे भर गया था। राजकुमार रुक्माङ्गन्द भी अपने मनके समान वेगशाली रथपर सवार होकर आये। उनके छोटे भाई शुभाङ्गन्द भी अपने सुन्दर शरीरपर बहुमूल्य रत्नमय कवच धारण करके रणोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये प्रस्थित हुए। महाराजके भाईका नाम था वीरसिंह। वे सब प्रकारके अख्ख-शब्दोंकी विद्यामें प्रवीण थे। राजाज्ञाके अनुसार वे भी दरबारमें गये; क्योंकि महाराजका शासन कोई लंब नहीं सकता था। राजाका भानजा बलमित्र भी उपस्थित हुआ तथा सेनापति रिपुवारने भी चतुरज्जिणी सेना तैयार करके महाराजको इसकी सूचना दी।

तदनन्तर राजा वीरमणि सब प्रकारके अख्ख-शब्दोंसे भरे हुए अपने श्रेष्ठ रथपर सवार हुए। वह रथ बहुत ऊँचा था और उसके ऊँचे-ऊँचे पहिये मणियोंके बने हुए थे। चारों ओरसे भेरियाँ बज उठीं। उनके बजानेवाले बहुत अच्छे थे। भेरी बजते ही राजाकी सेना संग्रामके लिये प्रस्थित हुई। सर्वत्र कोलाहल छा गया। महाराज वीरमणि युद्धके उत्साहसे युक्त होकर रणक्षेत्रकी ओर गये। राजाकी सेना आ पहुँची। शख्ख-सञ्चालनमें चतुर रथियोंके द्वारा समूची सेनामें महान् कोलाहल छा रहा है, यह देखकर शत्रुघ्नने सुमतिसे कहा— 'मन्त्रिवर ! मेरे अश्वको पकड़नेवाले बलवान् राजा वीरमणि मुझसे युद्ध करनेके लिये विशाल चतुरज्जिणी सेनाके साथ आ गये; अब किस तरह युद्ध आरम्भ करना चाहिये। कौन-कौन महाबली योद्धा इस समय युद्ध करेंगे ? उन सबको आदेश दो; जिससे इस संग्राममें हमें मनोवाज्ज्ञत विजय प्राप्त हो।'

सुमतिने कहा—स्वामिन् ! वीर पुष्कल श्रेष्ठ अस्त्रोंके ज्ञाता हैं; इस समय ये ही युद्ध करें। नीलरल आदि दूसरे योद्धा भी संग्राममें कुशल हैं; अतः वे भी लड़ सकते हैं। आपको तो भगवान् शङ्कर अथवा राजा वीरमणिके साथ ही युद्ध करना चाहिये। वे राजा बड़े बलवान् और पराक्रमी हैं; उन्हें द्वन्द्ययुद्धके द्वारा जीतना चाहिये। इस उपायसे काम लेनेपर आपकी विजय होगी। इसके बाद आपको जैसा जँचे, वैसा ही कीजिये; क्योंकि आप तो स्वयं ही परम बुद्धिमान् हैं।

मन्त्रीकी यह बात सुनकर शत्रुवीरोंका दमन करनेवाले शत्रुघ्नने युद्धके लिये निश्चय किया और श्रेष्ठ योद्धाओंको लड़नेकी आज्ञा दी। संग्रामके लिये उनकी आज्ञा सुनकर युद्ध-कुशल वीर अत्यन्त उत्साहसे भर गये और शत्रुसैनिकोंके साथ युद्ध करनेके लिये चले। वे हाथोंमें धनुष धारण किये युद्धके मैदानमें दिखायी दिये और बाणोंकी बौछार करके बहुतेरे विपक्षी योद्धाओंको विंदीर्ण करने लगे। उनके द्वारा अपने सैनिकोंका संहार सुनकर मणिमय रथपर बैठा हुआ बलवान् राजकुमार रुक्माङ्गद उनका सामना करनेके लिये आगे बढ़ा। उसने अपने अनेकों बाणोंकी मारसे शत्रुपक्षके हजारों वीरोंको उद्विग्न कर दिया। उनमें हाहाकार मच गया। राजकुमार बलवान् था; उसने बल, यश और सम्पत्तिमें अपनी समानता रखनेवाले शत्रुघ्न तथा भरत-कुमार पुष्कलको युद्धके लिये ललकारा—‘वीरस्त ! मुझसे युद्ध करनेके लिये आओ। इन करोड़ों मनुष्योंको डराने या मारनेसे क्या लाभ ? मेरे साथ घोर संग्राम करके विजय प्राप्त करो।’

रुक्माङ्गदके ऐसा कहनेपर बलवान् वीर पुष्कल हँस पड़े। उन्होंने अपने तीखे बाणोंसे राजकुमारकी छातीमें बड़े वेगसे प्रहार किया। राजकुमार शत्रुके इस पराक्रमको नहीं सह सका। उसने अपने महान् धनुषपर बाणोंका सञ्चान किया और दस सायकोंसे वीर पुष्कलकी छातीको बींध डाला। दोनों ही युद्धमें एक दूसरेपर कुपित थे। दोनोंहीके हृदयमें विजयकी अभिलाषा थी। रुक्माङ्गदने पुष्कलसे कहा—‘वीर !

अब तुम बलपूर्वक किया हुआ मेरा पराक्रम देखो। सम्भलकर बैठ जाओ, मैं तुम्हारे रथको आकाशमें उड़ाता हूँ।’ ऐसा कहकर उसने मन्त्र पढ़ा और पुष्कलके रथपर श्रामकास्त्रका प्रयोग किया। उस बाणसे आहत होकर पुष्कलका रथ चक्कर काटता हुआ एक योजन दूर जा पड़ा। सारथिने बड़ी कठिनाईसे रथको रोका तो भी वह पृथ्वीपर ही चक्कर लगाता रहा। किसी तरह पूर्वस्थानपर रथको ले जाकर उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता पुष्कलने कहा—‘राजकुमार ! तुम्हारे जैसे वीर पृथ्वीपर रहनेके योग्य नहीं हैं। तुम्हें तो इन्द्रकी सभामें रहना चाहिये; इसलिये अब देवलोकको ही चले जाओ।’ ऐसा कहकर उन्होंने आकाशमें उड़ देनेवाले महान् अस्त्रका प्रयोग किया। उस बाणकी चोटसे रुक्माङ्गदका रथ सीधे आकाशमें उड़ चला और समस्त लोकोंको लाँঠता हुआ सूर्यमण्डलतक जा पहुँचा। वहाँकी प्रचण्ड ज्वालासे राजकुमारका रथ घोड़े और सारथिसहित दग्ध हो गया तथा वह स्वयं भी सूर्यकी किरणोंसे झुल्स जानेके कारण बहुत दुःखी हो गया। अन्तमें वह दग्ध होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उस समय युद्धके अग्रभागमें महान् हाहाकार मचा। राजा वीरमणि अपने पुत्रको मूर्च्छित देखकर क्रोधमें भर गये और रणभूमिके मध्यभागमें खड़े हुए पुष्कलकी ओर चले।

इधर कपिवर हनुमान्-जीने जब देखा कि समुद्रके समान विशाल सेनाके भीतर स्थित हुए राजा वीरमणि भरतकुमार पुष्कलको ललकार रहे हैं तब वे उनकी ओर दौड़े। उन्हें आते देख पुष्कलने कहा—‘महाकपे ! आप क्यों युद्धभूमिमें लड़नेके लिये आ रहे हैं ? राजा वीरमणिकी यह सेना हैं ही कितनी ! मैं तो इसे बहुत थोड़ी—अत्यन्त तुच्छ समझता हूँ। जिस प्रकार आपने भगवान् श्रीरामकी कृपासे राक्षस-सेनारूपी समुद्रको पार किया था, उसी प्रकार मैं भी श्रीरघुनाथजीका स्मरण करके इस दुस्तर संकटके पार हो जाऊँगा। जो लोग दुस्तर अवस्थामें पड़कर श्रीरघुनाथजीका स्मरण करते हैं, उनका दुःखरूपी समुद्र सूख जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है; इसलिये महाकपे ! आप चाचा शत्रुघ्नके

पास जाइये। मैं अभी एक क्षणमें राजा वीरमणिको जीतकर आ रहा हूँ।'

हनुमानजी बोले—बेटा ! राजा वीरमणिसे भिड़नेका साहस न करो। ये दानी, शरणागतकी रक्षामें कुशल, बलवान् और शौर्यसे शोभा पानेवाले हैं। तुम अभी बालक हो और राजा वृद्ध। ये सम्पूर्ण अस्त्र-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। इन्होंने युद्धमें अनेकों शूरवीरोंको परास्त किया है। तुम्हें मालूम होना चाहिये कि भगवान् सदाशिव इनके रक्षक हैं और सदा इनके पास रहते हैं। वे राजाकी भक्तिके वशीभूत होकर इनके नगरमें पार्वती-सहित निवास करते हैं।

पुष्कलने कहा—कपिश्रेष्ठ ! माना कि राजाने भगवान् शङ्करको भक्तिसे वशमें करके अपने नगरमें स्थापित कर रखा है; परन्तु भगवान् शङ्कर स्वयं जिनकी आराधना करके सर्वोत्कृष्ट स्थानको प्राप्त हुए हैं, वे श्रीरघुनाथजी मेरा हृदय छोड़कर कहीं नहीं जाते। जहाँ श्रीरघुनाथजी हैं, वहीं सम्पूर्ण चराचर जगत् है; अतः मैं राजा वीरमणिको युद्धमें जीत लूँगा।

धीरतापूर्वक कही हुई पुष्कलकी ऐसी वाणी सुनकर हनुमानजी राजाके छोटे भाई वीरसिंहसे युद्ध करनेके लिये चले गये। पुष्कल द्वैरथ-युद्धमें कुशल थे और सुवर्णजटित रथपर विराजमान थे। वे राजाको ललकारते देख उनका सामना करनेके लिये गये। उन्हें आया देखकर राजा वीरमणिने कहा—‘बालक ! मेरे सामने न आओ, मैं इस समय क्रोधमें भरा हूँ; युद्धमें मेरा क्रोध और भी बढ़ जाता है; यदि प्राण बचानेकी इच्छा हो तो लौट जाओ। मेरे साथ युद्ध मत करो।’ राजाका यह वचन सुनकर पुष्कलने कहा—‘राजन् ! आप युद्धके मुझे कोई युद्धमें जीत नहीं सकता, चाहे वह इन्द्र-पदका ही अधिकारी बयो न हो।’ पुष्कलका ऐसा वचन सुनकर राजाओंमें अग्रगण्य वीरमणि उन्हें निरा बालक समझकर हँसने लगे, तत्पश्चात् उन्होंने अपना क्रोध प्रकट किया। राजाको कुपित जानकर रणोन्नत वीर भरतकुमारने उनकी छातीमें बीस तीखे बाणोंका प्रहार किया। उन बाणोंको

आते देख राजाने अत्यन्त कुपित होकर अपने तीक्ष्ण सायकोंसे उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। बाणोंका काट जाना देख शत्रु-वीरोंका विनाश करनेवाले भरतकुमारके हृदयमें बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने तीन बाणोंसे राजाके ललटको बींध डाला। उन बाणोंकी चोटसे राजाको बड़ी व्यथा हुई। वे प्रचण्ड क्रोधमें भर गये और वीर पुष्कलकी छातीमें उन्होंने नौ बाण मारे। तब तो पुष्कलका क्रोध भी बड़ा। उन्होंने तीखे पर्ववाले साँ बाण मारकर तुरंत ही राजाको घायल कर दिया। उन बाणोंके प्रहारसे राजाका कवच, किरीट, शिरस्त्राण तथा रथ—सभी छिन्न-भिन्न हो गये। तब वीरमणि दूसरे रथपर सवार होकर भरत-कुमारके सामने आये और बोले—‘श्रीरामचन्द्रजीके चरण-कमलोंमें भ्रमरके समान अनुराग रखनेवाले वीर पुष्कल ! तुम धन्य हो !’ ऐसा कहकर अस्त्र-विद्यामें कुशल राजाने उनपर असंख्य बाणोंका प्रहार किया। वहाँ पृथ्वीपर और दिशाओंमें उनके बाणोंके सिवा दूसरा कुछ नहीं दिखायी देता था। अपनी सेनाका यह संहार देखकर रथियोंमें अग्रगण्य पुष्कलने भी शत्रुपक्षके योद्धाओंका विनाश आरम्भ किया। हाथियोंके मस्तक विदीर्ण होने लगे, उनके मोती बिखर-बिखरकर गिरने लगे। उस समय क्रोधमें भरे हुए पुष्कलने राजा वीरमणिको सम्बोधित करके शहू बजाकर निर्भयतापूर्वक कहा—‘राजन् ! आप वृद्ध होनेके कारण मेरे मान्य हैं, तथापि इस समय युद्धमें मेरा महान् पराक्रम देखिये। वीरवर ! यदि तीन बाणोंसे मैं आपको मूर्च्छित न कर दूँ तो जो महापापी मनुष्य पापहारिणी गङ्गाजीके तटपर जाकर भी उनकी निन्दा करके उनके जलमें डुबकी नहीं लगाता, उसको लगनेवाला पाप मुझे ही लगे।’

यह कहकर पुष्कलने राजाके महान् वक्षःस्थलको, जो किवाड़ोंके समान विस्तृत था निशाना बनाया और एक अग्निके समान तेजस्वी एवं तीक्ष्ण बाण छोड़ा। किन्तु राजाने अपने बाणसे पुष्कलके उस बाणके दो टुकड़े कर डाले। उनमेंसे एक टुकड़ा तो भूमण्डलको प्रकाशित करता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा और दूसरा



COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

I creator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

I creator of
hinduism
server!

राजाके रथपर गिरा। तब पुष्कलने अपना मातृ-भक्तिजनित पुण्य अर्पण करके दूसरा बाण चलाया; किन्तु राजाने अपने महान् बाणसे उसको भी काट दिया। इससे पुष्कलके मनमें बड़ा खेद हुआ। वे सोचने लगे—‘अब क्या करना चाहिये?’ इतनेहीमें उन्हें एक उपाय सूझ गया। वे श्रेष्ठ अस्त्रोंके ज्ञाता तो थे ही, अपनी पीड़ा दूर

करनेवाले श्रीरघुनाथजीका उन्होंने मन-ही-मन स्मरण किया और तीसरा बाण छोड़ दिया। वह बाण सर्पके समान विषेला और सूर्यके समान प्रज्वलित था। उसने राजाकी छातीमें चोट पहुँचाकर उन्हें मूर्च्छित कर दिया। राजाके मूर्च्छित होते ही उनकी सारी सेना हाहाकार मचाती हुई भाग चली और पुष्कल विजयी हुए।



हनुमानजीके द्वारा वीरसिंहकी पराजय, वीरभद्रके हाथसे पुष्कलका वध, शङ्करजीके द्वारा शत्रुघ्नका मूर्च्छित होना, हनुमानके पराक्रमसे शिवका संतोष, हनुमानजीके उद्योगसे मरे हुए वीरोंका जीवित होना, श्रीरामका प्रादुर्भाव और वीरमणिका आत्मसमर्पण

शेषजी कहते हैं—मुने ! हनुमानजीने वीरसिंहके पास जाकर कहा—‘वीरवर ! ठहरो, कहाँ जाते हो ? मैं एक ही क्षणमें तुम्हें परास्त करूँगा।’ वानरके मुखसे ऐसी बढ़ी-चढ़ी बात सुनकर वीरसिंह क्रोधमें भर गये और मेघके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाले धनुषको खींचकर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे। उस समय रणभूमिमें उनकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो आषाढ़के मरीनेमें धारावाहिक वृष्टि करनेवाला मनोहर मेघ शोभा पा रहा हो। उन तीखे बाणोंको अपने शरीरपर लगते देख हनुमानजीने वज्रके समान मुका वीरसिंहकी छातीमें मारा। मुष्टिका-प्रहार होते ही वे मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़े। अपने चाचाको मूर्च्छित देख राजकुमार शुभाङ्ग वहाँ आ पहुँचा। रुक्माङ्गदकी भी मूर्च्छा दूर हो चुकी थी; अतः वह भी युद्ध क्षेत्रमें आ धमका। वे दोनों भाई भयङ्कर संग्राम करते हुए हनुमानजीके पास गये। उन दोनों वीरोंको समर-भूमिमें आया देख हनुमानजीने उन्हें रथ और धनुषसहित अपनी पूँछमें लपेट लिया और पृथ्वीपर बड़े वेगसे पटका। इससे वे दोनों राजकुमार तल्काल मूर्च्छित हो गये। इसी प्रकार बलमित्र भी सुमदके साथ बहुत देरतक युद्ध करके अन्तमें मूर्च्छाको प्राप्त हुए।

तदनन्तर, अपने आत्मीय जनोंको मूर्च्छित देख भक्तोंकी पीड़ा दूर करनेवाले भगवान् महेश्वर स्वयं ही

उस विशाल सेनामें शत्रुघ्नके सैनिकोंके साथ युद्ध करनेके लिये गये। उनका उद्देश्य था भक्तोंकी रक्षा करना। वे पूर्वकालमें जैसे त्रिपुरसे युद्ध करनेके लिये गये थे, उसी प्रकार वहाँ भी अपने पार्षदों और प्रमथ-गणोंसहित पृथ्वीतलको कँपाते हुए जा पहुँचे। महाबली शत्रुघ्ने जब देखा कि संविदेवशिरोमणि साक्षात् महेश्वर पधारे हैं, तब वे भी उनका सामना करनेके लिये रणभूमिमें गये। शत्रुघ्नको आया देख पिनाकधारी रुद्रने वीरभद्रसे कहा—‘तुम मेरे भक्तको पीड़ा देनेवाले पुष्कलसे युद्ध करो।’ फिर नन्दीको उन्होंने महाबली हनुमानसे लड़नेके लिये भेजा। तदनन्तर कुशध्वजके पास प्रचण्डको, सुबाहुके पास भृङ्गीको और सुमदके पास चण्डनामक अपने गणको भेजकर युद्धके लिये आदेश दिया। महारुद्रके प्रधान गण वीरभद्रको आया देख पुष्कल अत्यन्त उत्साहपूर्वक उनसे युद्ध करनेको आगे बढ़े। उन्होंने पाँच बाणोंसे वीरभद्रको घायल किया। उनके बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर वीरभद्रने त्रिशूल हाथमें लिया; किन्तु महाबली पुष्कलने एक ही क्षणमें उस त्रिशूलको काटकर विकट गर्जना की। अपने त्रिशूलको कटा देख रुद्रके अनुगामी महाबली वीरभद्रको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने महारथी पुष्कलके रथको तोड़ डाला। वीरभद्रके वेगसे चक्कनाचूर हुए रथको त्याग कर महाबली पुष्कल पैदल हो गये